श्री रामचरित मानस

बाल-काण्ड

(मूल व्याख्या एवं आलोचनात्मक प्रश्नोत्तर सहीत)

टीकाकार,
श्रीमती गायत्रीदेवी ... जुगल किशोर

प्रमुख विशेषतायें

महाकवि तुलसी का व्यक्तित्व और कवित्व परिचय

मूल एवं टीका सर्गों मे विभक्त

- शब्दार्थ, भावार्थ, एव छंद अलंकार की पूर्ण व्याख्या सहित
- महत्वपूर्ण परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तर
- सरल शुद्ध भाषा एव प्रभावपूर्ण शैली में
- प्रसिद्ध अनुभवी लेखकों द्वारा लिखित

एज्यूकेशनल पब्लिशर्स
चौड़ा रास्ता, जयपुर

नवीन सस्करण

मूल्य २ ५०

❁ अनुक्रमणिका ❁

रामचरित मानस

[बाल काण्ड]

संक्षिप्त कथा—

वन्दना :—'रामचरित मानस' गोस्वामी तुलसीदास की प्रमुख और प्रसिद्ध रचना है। इस रचना को हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा जा सकता है। इसमे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र का सविस्तार वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ सात काण्डो मे विभाजित है। प्रत्येक काण्ड की कथा अपने पूर्वापर काण्डो से सम्बद्ध है। बालकाण्ड इसका प्रारम्भिक अश है। इसमे कवि ने मगलाचरण किया है। सर्वप्रथम सरस्वती की वन्दना की गयी है, इसके बाद क्रमश गणेशजी, शिव-पार्वती, वाल्मीकि, हनुमानजी, सीताजी और श्रीराम को प्रणाम किया गया है। अपनी रचना के उद्देश्य को कवि ने प्रारम्भ के एक श्लोक से स्पष्ट कर दिया है—

"नाना पुराण निगमागम समत यद्रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि,
स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा, भाषा निबध अति मजुल मातनोति।"

रचना स्वान्तः सुखाय :—अनेक पुराणो, वेदो, शास्त्रो आदि से सम्मत, जो कुछ वाल्मीकि रामायण मे वर्णित है, अन्यत्र भी कई स्थानो पर जिसका वर्णन मिलता है, उस राम कथा को तुलसी अपने अन्त करण के सुख के लिये अति सुन्दर भाषा मे रचकर विस्तृत करता है। इससे यह स्पष्ट है कि तुलसी ने रामचरित मानस की रचना 'स्वान्त सुखाय' की है। तुलसी सभी देवो की स्तुति करते हुये कहते है कि वे उन पर प्रसन्न हो तथा श्रीराम के चरणो मे अनुरक्ति उत्पन्न करें। कवि ने अपने गुरुजन को प्रणाम करके भूसुरो (ब्राह्मणो) के चरणो की वन्दना की है। उसकी दृष्टि मे सत समाज तीर्थ राज के समान होता है, उसकी सगति या सत्सगति से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। बिना सत्संग के ज्ञानोदय नही हो सकता।

राम से राम नाम बड़ा :—तुलसी ने रामचरित मानस में सभी देवताओं को पुनः प्रणाम किया है, कौशल्या आदि को प्रणाम किया है राजा दशरथ और रानियों को प्रणाम करके उन्होंने राजा दशरथ के चारों राजकुमारों की वन्दना की है। साथ ही उन्होंने श्रीराम के परम भक्त हनुमान, जाम्बवन्त आदि को प्रणाम किया है। 'रामनाम' की वन्दना करके वे नाम को राम से अधिक मानते हैं। तुलसी के विचार से राम के नाम का बहुत महत्त्व है, उसमें ईश्वर के निर्गुण और सगुण दोनों स्वरूप सन्निहित हैं। भगवान् के नाम ने करोड़ों जनों का उद्धार किया है जबकि स्वयं श्रीराम ने सौ-पचास भक्तों का उद्धार किया होगा। इसी प्रकार के महिमामय श्रीराम के सगुण रूप का गान तुलसी ने किया है।

चार संवाद :—तुलसी के रामचरित मानस की कथा अनेक ग्रन्थों और लोक कथाओं के आधार पर बनी हुई है। इस कथा को सर्व प्रथम शिवजी ने पार्वती जी से कहा था तत्पश्चात गरुड़ जी ने काक भुशुण्डी को उस कथा का अधिकारी समझ कर यह कथा कही। काक भुशुण्डी से यह कथा याज्ञवल्क्य ने तथा उनसे भरद्वाज ने सुनी। इस प्रकार यह कथा क्रमशः शिव-पार्वती, याज्ञवल्क्य भरद्वाज काक भुशुण्डी-गरुड और अन्त में तुलसी-भक्तों की कथा के रूप में प्रचलित हुयी। 'रामचरित मानस' में ली गयी यह कथा

कलिमल-विध्वंसिनी है। भगवान् शंकर ने श्रीराम की इस कथा को पहले सती को और बाद मे पार्वती के लिये कहा। उन्होने ही इसका नाम 'मानस' रखा।

मानस-रूपक —'मानस' का एक अर्थ होता है-मानसरोवर और दूसरा अर्थ होता है-मन। शिवजी ने इस कथा को अपने मन मे सोचा और बाद मे कहा-इस कारण यह 'राम-चरित मानस' के नाम से प्रसिद्ध हुई। तुलसी ने अपने 'मानस-रूपक' मे इस कथा का विश्लेषण किया है।

रूपक बाधते हुये उन्होने लिखा है कि उपर्युक्त चारो संवाद ही इस मानस (मानसरोवर) के चार मनोहर घाट हैं, सात काण्ड इसकी सात सीढियाँ है। श्रीराम और सीता का यश ही इसका सुधोपम जल है, इसकी उपमायें ही इसकी तरंगें है, आदि। तुलसी की बुद्धि इसके निर्मल जल मे स्नान करने से पावन हो गयी है। इसमे रामचरित रूपी जो निर्मल जल भरा है वह सासारिक आशा और तृष्णा को नष्ट करने वाला है। जो व्यक्ति इसमे अवगाहन करता है या इसका पान करता है, वह ससार की सभी व्यथाओ से मुक्त हो जाता है।

शिव के आराध्य राम —तुलसी ने इस पवित्र जल मे अपने मन को स्नान कराया है और पश्चात कथा का आरम्भ करते हुए लिखा है कि प्रसिद्ध तपस्वी भरद्वाज तीर्थराज प्रयाग मे निवास करते थे। वहाँ मकरसक्रान्ति के दिन अनेक ऋषि मुनि आते थे, स्नान करते थे। और कुछ समय तक विश्राम करके चले जाते थे। एक वार भारद्वज ने याज्ञवल्क्य नामक ऋषि को रोक लिया और श्रीराम के बारे मे उनसे पूछने लगे। याज्ञवल्क्य ने उन्हे शिव पार्वती सवाद कह सुनाया। उन्होंने कहाकि त्रेतायुग मे एक वार शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये। वहाँ कुछ समय तक ठहर कर उन्होने उन्हे रामकथा सुनायी। शिवजी ने उस कथा को प्रेम पूर्वक सुना। विष्णु ने उस समय पृथ्वी का उद्धार करने के लिये राम का अवतार लिया। वे अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्र थे। शिवजी ने श्रीराम के दर्शन उनके वनवास काल मे किये थे। जब सीताहरण हो चुका था, श्रीराम और लक्ष्मण व्याकुलता से उनकी खोज करके लौट रहे थे तभी सती सहित शिव ने उनके दर्शन किये। सती के पूछने पर उन्होंने कहा कि ये ही मेरे आराध्य श्रीराम हैं। जब सती को यह विश्वास न हुआ तो उसने

सीता का वेश बनाकर उनकी परीक्षा ली, किन्तु श्रीराम उसे तुरन्त पहचान गये। उनके यह पूछने पर कि शिव को कहाँ छोड़ा, सती लज्जित हुई। श्रीराम ने उन्हें अपना परिचय दिया और उनके भ्रम को दूर कर दिया।

शिव ने समाधि लगायी।—शिवजी ने सती के रूप बदलने की बात को ध्यान लगाकर समझ लिया था। उन्होंने श्रीराम की उस माया को प्रणाम किया जिसके कारण सती ने मिथ्या आचरण किया था और शिवजी के सामने आकर मिथ्या वचन कहे थे। उन्होंने इसी कारण यह निश्चय किया कि वे सती के शरीर से भेंट नही करेंगे। शवजी के इस निश्चय का आभास सती को मिल गया था। शिवजी ने कैलाश में जाकर वट वृक्ष के नीचे समाधि लगाली। सती बहुत दुखी रहने लगी और वह भगवान् से अपनी मृत्यु मागने लगी। सत्तासी हजार वर्ष के बाद शिवजी ने अपनी समाधि छोडी इसके बाद उन्होंने सती को अर्धांगिनी न मानकर अपने सामने आसन दिया और श्रीराम की कथा कहने लगे।

दक्ष द्वारा यज्ञ—सती के पिता प्रजापति दक्ष थे, उन्होंने एक बहुत बड़ा यज्ञ करना प्रारम्भ किया। उस समय तक दक्ष प्रजापति एक अभिमानी शासक हो चुके थे। उन्होंने यज्ञ के भागी सभी देवताओ को बुलाया, अपनी पुत्रियों को भी आमन्त्रित किया। किन्तु सती को नहीं बुलाया। इसका कारण यह था कि वे शिवजी से शत्रुता रखते थे। सती बिना बुलाये ही शिवजी से आज्ञा लेकर यज्ञ में सम्मिलित होने चली गयी। जाते समय उसे अच्छे शकुन नहीं हुये, फ्लस्वरुप वहाँ भी सती का कोई आदर नहीं हुआ। यज्ञ में शिवजी का भाग नही रखा गया। इससे सती को बहुत बुरा लगा। इस आचरण को उसने अपना अपमान समझा। वहा उपस्थित सभी ऋषि मुनियो को फटकार कर उसने योग विद्या से अपने शरीर को भस्म कर दिया। उधर जब शिवजी को यह सूचना मिली तो उन्होंने अपने एक सेवक वीर भद्र को भेजकर यज्ञ का विध्वंस कराया। सती ने मरते मरते ईश्वर से यह वरदान मागा कि जन्म-जन्म में मुझे शिवजी के चरणो मे आश्रय मिले। सती ने दूसरे जन्म में इसी कारण हिमालय के यहाँ मैना के गर्भ से जन्म लिया। नारद मुनि ने इस नवजात कन्या का भविष्य बताया और कहा कि अन्य सभी लक्षण शुभ हैं किन्तु इसको जो पति मिलेगा वह पागल सा तथा अमगल वेशवाला होगा।

उमा की तपस्या —हिमालय को भी इससे चिन्ता हुई। उसने इसका उपाय पूछा। नारदऋषि ने कहा कि यदि इसका विवाह शंकर के साथ हो जाय तो इसके सभी दोष दूर हो जाँय। उमा ने शिव की प्राप्ति के लिये घोर तप किया। उनके मन में शिव के प्रति स्वभाविक प्रेम था। तप यहाँ तक बढ़ा कि उसने पत्ते खाना भी छोड़ दिया। इसलिये उमा को 'अपर्णा' भी कहते हैं। जब आकाशवाणी से यह ज्ञात हुआ कि उमा की सभी कामना पूर्ण होगी, तब उसे सन्तोष प्राप्त हुआ। श्रीराम ने प्रकट होकर शिवजी से प्रार्थना की कि वे उमा से विवाह करलें। शिव ने उमा के प्रेम की परीक्षा ली और जब उन्हें उसके अचल प्रेम का आभास मिल गया तो शिवजी ने पार्वती के साथ विवाह करने का निश्चय किया।

कामदेव को भस्म किया :—उन्हीं दिनों तारक नाम का एक भयंकर राक्षस उत्पन्न हुआ। सभी देवता उसके आतंक से दुःखी थे। जब वे ब्रह्मा के पास पहुँचे तो उन्होने बताया कि शिवजी का पुत्र ही इसे परास्त कर सकता है। सती ने हिमालय के यहाँ जन्म ले लिया है। यदि शिवजी उसके साथ विवाह करलें तो इस राक्षस के मारे जाने का सुयोग मिल सकता है। देवताओं ने शिवजी को समाधि से विचलित करने के लिये कामदेव को भेजा। कामदेव का बाण लगते ही शिवजी की समाधि भंग हो गयी। उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला, जिससे कामदेव भस्म हो गया। शिवजी ने उसे 'अनंग' कर दिया और उसकी विलाप करती हुई पत्नी रति को विश्वास दिलाया कि तुम्हारा पति द्वापर में श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में जन्म-लेगा।

शिव पार्वती विवाह —कामदेव के भस्म हो जाने के बाद सभी देवता शिव के पास गये और पार्वती के साथ विवाह करने की प्रार्थना की उन्होंने देवताओं के प्रस्ताव को मान लिया। हिमालय ने पार्वती के विवाह का लग्न पत्र ब्रह्मा जी से लिखवा कर भेजा। शिवजी की बारात में सभी देवता गये उनके गण भी गये। देवताओं ने अपने दल को अलग कर लिया। अब शिवजी अपने कुरूप और डरावने गणों सहित व्याहने चले। जैसा दूल्हा वैसी ही बरात बन गयी। हिमालय ने बरात के स्वागत की बहुत अच्छी व्यवस्था की थी। किन्तु शिवजी के दल को देख कर सभी पुरवासी स्त्री पुरुष डर गये, सर्वत्र खलबली मच गयी। मैना को बहुत बुरा लगा। किन्तु पार्वती ने समझाया

ह भाग्य मे लिखे हुए को कौन मिटा सकता है। ऋषियो ने भी समझाया कि र्वती जन्म जन्मान्तर मे ही शिव की अर्धांगिनी है। हिमालय ने ऋषियो ा बहुत सत्कार किया। ऋषियो ने शुभ लग्न मे पाणिग्रहण संस्कार कराया। ना ने पार्वती को कई प्रकार की उत्तम शिक्षाये दी। शिव गिरिजा सहित ैलाश पर्वत पर निवास करने लगे। उनके स्वामी कार्तिकेय नामक एक ुत्र की उत्पत्ति हुई। उनने युद्ध में तारक नामक राक्षस को मार कर देवताओ े दुख को मिटाया।

नर शरीर क्यो धारण किया :—याज्ञवल्क्य के द्वारा कहे गये शिवजी े चरित्र को सुनकर भरद्वाज बहुत प्रसन्न हुये। इस प्रकार पहले तो याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज को शिव चरित्र सुनाया और बाद मे वे श्रीराम कथा कहने लगे। कैलास पर्वत पर पार्वती ने शिवजी से प्रश्न किया कि ये राम कौन है तो उन्होंने प्रसन्न होकर राम कथा कहना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि हे देवि! श्रीराम अनादि और अनन्त है। पार्वती ने पुन. प्रश्न किया कि यदि वे परमात्मा हैं तो उन्होने नर शरीर क्यो धारण किया। तब शिवजी कहने लगे कि जो कथा गरुडजी ने काकभुशुण्डी से कही थी, वही मैं तुम्हे सुनाता हूँ। जब-जब धर्म की हानि हुई है या होती है तो भगवान् नर शरीर धारण करते हैं और असुरो को मारकर राक्षसों का नाश करते हैं।

असुरो के तीन जन्म —असुरो को मारने की कथा भी विचित्र है। विष्णु भगवान् के यहाँ जय और विजय नाम के दो द्वारपाल थे। सनक सनन्द-नादि ऋषियों के शाप से वे राक्षस बन गये। उन्होंने कश्यप और दिति के यहाँ जन्म लिया। एक का नाम हिरण्यकश्यप और दूसरे का नाम हिरण्यकश्यप था। भगवान् ने नृसिंह अवतार धारण करके हिरण्यकश्यप को और वराह अवतार लेकर हिरण्याक्ष को मारा। तीसरे जन्म मे उक्त दोनो राक्षसो ने रावण और कुम्भकरण के रूप मे जन्म लिया तो श्रीराम ने अवतार लेकर इन दोनो का संहार किया।

जलंधर और वृन्दा —इसी प्रकार एक कथा इस प्रकार है कि जलंधर नाम का एक भयंकर राक्षस था, जिसकी पत्नी वृन्दा सती थी, इसलिये उसे कोई देवता परास्त नहीं कर सका था यहाँ तक कि शिवजी भी उसे नही हरा सके थे। भगवान ने छल से वृन्दा के पतिव्रत को खण्डित कर दिया। उसे जब

यह ज्ञात हुआ तो उसने भगवान को शाप दिया कि तुम स्त्री के लिये वन-वन भटकते फिरोगे। जल्धर देवताओं से पराम्न होकर मारा गया। दूसरे जन्म में वह रावण बना। एक अन्य युग में भगवान को नारद जी के शाप के कारण अवतार लेना पड़ा। महर्षि नारद एक बार समाधिमग्न थे। उन्होंने अपने तपोबल से कामदेव को भी जीत लिया था। इस बात का उन्हे अहंकार था। उन्होंने शिवजी से भी कहा जब नारद के अहकार की बात विष्णु को ज्ञात हुई तो उन्होंने अपनी माया से एक सुन्दर नगरी का निर्माण किया और विश्व मोहिनी रूप को धारण किया। नारदजी उधर से निकल रहे थे, वे उसे देख कर मोहित हो गये और कामवश हो गये।

नारद मोह :—विश्वमोहिनी का स्वयवर रचा गया। उसमें अनेक राजा आये। नारदजी ने विष्णु से प्रार्थना की कि वे उन्हे बहुत सुन्दर रूप दें। किन्तु सुन्दर रूप देने के स्थान पर उन्हे वानर का रूप दे दिया। फल स्वरूप विश्वमोहिनी ने उनकी ओर देखा भी नही। नारदजी को जब वास्तविकता का ज्ञान हुआ तो वे बडे क्रुद्ध हुये। उन्होंने विष्णु को शाप दिया कि तुमने जिस रूप को धारण कर मुझे छला है उसी रूप का (स्त्री का) तुम्हे दु:ख हो, और मेरा यही रूप तुम्हारी सहायता करे। जब नारदजी शाप देकर लौट रहे थे तो मार्ग में उन्हे शिवजी मिल गये। उन्होने जब शाप मुक्ति के लिये प्रार्थना की तो नारद जी से कहा कि तुम दोनो राक्षस बनोगे और नरशरीर धारी भगवान के हाथो से तुम्हारी मोक्ष होगी।

मनु और शतरूपा —शिवजी ने कहा कि हे पार्वती ! भगवान की माया प्रबल है, वे अनन्त हैं। उनकी माया के वश में बडे-बडे ऋषि मुनी भी हो सकते हैं। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज से कहा कि शिव ने पार्वती को भगवान के अवतार का एक और भी कारण बताया है। वह इस प्रकार है कि सृष्टि के कारण स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा एक बार धर्माचरण करते हुये जा रहे थे। उनके उत्तानपाद नामक एक पुत्र हुआ जिनके पुत्र का नाम ध्रुव है, जिसने भगवद्भक्ति से परम पद की प्राप्ति की थी। दूसरे पुत्र प्रिय व्रत थे जिनकी पुत्री का नाम देवदति था। देवदति का विवाह कर्दम ऋषि के साथ हुआ। उनके कपिल नामक पुत्र हुआ जो आगे जाकर कपिल मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्वायम्भुव मनु अपने पुत्र पर राज्य भार छोडकर पत्नी सहित वन-

मे चले गये । वहाँ उन्होंने हजारो वर्षो तक तपस्या की । भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हे दर्शन दिये और वर मागने के लिये कहा । मनु और शतरूपा ने उनसे प्रार्थना की कि हमे आप जैसा पुत्र मिले । किन्तु भगवान ने कहा कि मुझ जैसा दूसरा व्यक्ति कहाँ से दू इसलिये मैं स्वय ही तुम्हारा पुत्र बनूगा तुम अमरावती मे जाकर निवास करो ।

प्रताप भानु और अरिमर्दन —श्री राम के अवतार लेने का अन्य कारण बताते हुये याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज से कहा कि जो कथा शिवजी ने पार्वती जी ने कही वही मैं तुम्हें कहता हू । कैकय देश मे सत्य केतु नामक एक प्रतापी राजा राज्य करता था । उसके दो पुत्र थे प्रताप भानु और अरिमर्दन । दोनो भाई बडे यशस्वी थे, दोनो मे परस्पर बहुत प्रेम था । राजा बडे पुत्र को राज्य देकर वन में चला गया था । प्रताप भानु एक यशस्वी और प्रतापी शासक था, धर्मरुचि उसका मत्री था जोकि अत्यधिक चतुर और बुद्धिमान् था, अरिमर्दन उसका वीर भाई था । इस कारण प्रतापभानु एक सम्राट बन गया । वह दानशील तथा प्रजा का सच्चा सेवक था और उसने प्रजा की सुख समृद्धि के लिये भरपूर प्रयत्न किये थे । वह धार्मिक तो ऐसा था कि जो कुछ भी करता था वह भगवान के चरणो मे अर्पित कर के करता था ।

कपटी मुनि :—एक बार राजाप्रताप भानु शिकार के उद्देश्य से विन्ध्याचल के घने जगलों मे चला गया । वहा वह एक सूअर को देखकर उसके पीछे हो लिया । सूअर भी घनी झाडियो मे चलागया और वहा से एक पहाडी की गुफा में चला गया । राजा उसका पीछा करते हुए एक ऐसे आश्रम मे पहुँच गया जहाँ उसका एक शत्रु राजा कपट मुनि का वेश बना कर रहता था । प्रतापभानु ने उस राजा के राज्य को छीन लिया था । वह राजा बडा ही स्वाभिमानी था इस कारण न तो उसेने प्रतापभानु से मिलना उचित समझा और न वह घर गया । क्रोध को दबा कर वह यहा कपट का वेश बना कर रहता था । उसने प्रतापभानु को तुरन्त पहचान लिया और कहा कि बन्धु ! अब रात हो चुकी है, अँधेरे मे कहाँ जाओगे, यहाँ ठहर जाओ । राजा इस आकस्मिक प्राप्त सुविधा के कारण बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने भाग्य की सराहना की ।

प्रतापभानु को ब्राह्मणों का श्राप :—राजा के पूछने पर कपट मुनि ने अपना परिचय देते हुए कहा कि मुझे एकतनु कहते हैं, सृष्टि के प्रारम्भ में

ही मेरी उत्पत्ति हुई थी, उस समय से अब तक मैं उसी शरीर में हूँ। राजा इस बात से बहुत प्रभावित हुआ और अपना परिचय देने लगा। परन्तु कपटी मुनी ने कहा कि मैं सब जानता हूँ। तुम प्रतापभानु हो, तुम्हारे पिता का नाम सत्यकेतु है। मैं प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ, मांगो। राजाने सौ कल्प तक अकंटक राज्य मांगा। कपटी मुनि ने कहा कि तुम सम्पूर्ण ब्राह्मण कुल को अपने वश में करलो। तुम्हें ब्राह्मण कुल के शाप के अलावा कोई नष्ट नहीं कर सकता। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना कि हमारे इस मिलन का प्रसंग गोपनीय रहे। अन्यथा तुम्हारा नाश हो जायगा। राजा ने पूछा कि ब्राह्मण कुल को वश में करने का क्या उपाय है। कपट मुनि ने कहा कि मेरी बनाई हुई रसोई को यदि तुम परोसो तो जो भी उसे खायेगा वही तुम्हारे वश मे हो जायगा। ध्यान रहे कि मेरा परिचय किसी को भी न मिले। तुम प्रतिदिन लाखों ब्राह्मणों को भोजन कराओ। मैं तुम्हारे पास पुरोहित का रूप बना कर आऊँगा, तुम्हारे पुरोहित को मैं हर लाऊँगा। इस प्रकार तुम्हारा उद्देश्य सफल हो जायगा। तुम्हें अभी घोड़े सहित घर पहुँचा दिया जायगा और मैं तुम्हारे पास आज से तीसरे दिन आऊँगा। जब मैं एकान्त मे बुला कर तुम से मिलूँ और कथा सुनाऊँ तो मुझे पहचान लेना। तुम थके हुये हो, अब विश्राम करो।

राजा के विश्राम करने पर वहाँ वही सूअर राक्षस बन कर आया। वह कालकेतु नामक राक्षस था और कपट मुनि का परम मित्र। कपट मुनि ने उसे सारा वृत्तान्त सुना दिया। राक्षस ने कपट मुनि को विश्वास दिलाया कि वह प्रतापभानु को सकुल नष्ट करके चौथे दिन तुम्हारे पास आ जायगा। उसने राजा को घोड़े सहित घर पहुँचा दिया और उसके पुरोहित को वह यहाँ ले आया। पुरोहित की बुद्धि मे भ्रम उत्पन्न करके उससे जो भोजन बनवाया गया उसमें ब्राह्मणों का मांस भी मिला दिया गया। जब राजा उसे परोसने लगा तो आकाशवाणी हुई की हे ब्राह्मणो! इस भोजन मे ब्राह्मणो का मांस मिला हुआ है, इसलिये इसे न खाना। ब्राह्मण उठ खड़े हुए और उन्होने राजा को शाप दिया कि तू जाकर परिवार सहित राक्षस हो। एक वर्ष भर मे तेरा कुल सहित नाश हो। किन्तु फिर आकाशवाणी हुई कि हे ब्राह्मणो! तुमने विचार करके शाप नही दिया। राजा ने जब वहाँ जाकर देखा तो न रसोइया था न सामान। किन्तु ब्राह्मणो का शाप टाले से कैसे टल सकता था?

कालकेतु ने यह सब कुछ करके पुरोहित को उसके घर पहुँचा दिया और कपट मुनि को सारा हाल कह सुनाया। कपट मुनि ने प्रतापभानु के शत्रुओं को सगठित करके उसे घेर लिया और युद्ध में उसको भाई सहित मार दिया। इस प्रकार सत्यकेतु का सारा कुल नष्ट हो गया। याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे भारद्वाज ! वही राजा परिवार सहित दूसरे जन्म मे रावण बना, उसका छोटा भाई अरिमर्दन कुभकरण बना, मत्री धर्मरुची विभीषण बना और परिवार के अन्य सदस्य भयकर राक्षस बने। यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषि के कुल मे जन्मे थे फिर भी ब्राह्मणों के शाप के कारण राक्षस बन गये थे। रावण कुभकरण और विभीषण ने घोर तपस्या करके भगवान् से अलग-अलग वरदान प्राप्त किये थे ? रावण ने मागा था कि वह किसी नर या वानर से न मारा जाय, कुभकरण ने छ महिने की निद्रा मागी थी और विभीषण ने भगवान् के चरणो मे भक्ति मागी थी।

लंका का राक्षस कुल :—रावण का विवाह मय नामक राक्षस की पुत्री मन्दोदरी के साथ हुआ था। उसने लका को राजधानी बनाकर राज्य करना प्रारम्भ किया था। उसने समस्त पृथ्वी को जीतकर देवताओ तक पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। रावण के पुत्र का नाम मेघनाथ था। वह इतना पराक्रमी था कि उसके भय से देवताओ तक मे खल-बली मच जाया करती थी। रावण का भारी आतक छाया हुआ रहता था। यज्ञ, ब्राह्मण, भोजन आदि धार्मिक कर्मकाण्डो मे वह और उसके साथी राक्षस बहुत विघ्न डालते रहते थे। रावण एक अद्वितीय वीर था। उसकी तुलना का वीर उसे कही भी नहीं मिला था। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वरुण, मरुत आदि देवो को उसने अपने वश मे कर लिया था। फिर पृथ्वी पर तो ऐसा कोई जीव नही बचा था जो उसके चरणो मे प्रणाम न करता हो। सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे।

रावण के राज्य मे अत्याचार —रावण के राज्य मे अत्याचार और पाप बहुत बढ़ गया था। पृथ्वी भी उसके पाप कर्मो से आतकित होगयी थी। इसलिये शकर कहने लगे कि हे उमा ! अत्याचारो से पीड़ित पृथ्वी, डर कर गाय का रूप धारण करके वहाँ पहुँच गयी जहाँ देवता और मुनि छिपे हुये थे। उसने उन सभी से अपना दु ख सुनाया। किन्तु वे कुछ न कर सके। तब सभी मिलकर ब्रह्मा जी के पास गये। बिचारे ब्रह्माजी का भी वश न चल सका। उन्होंने पृथ्वी से कहा कि हे पृथ्वी ! धैर्य धारण करो और श्री हरि का

स्मरण करो, उनके सिवाय तुम्हारी इस विपत्ति को कोई मिटा नही सकता। उस समय सबने मिलकर भगवान् की प्रार्थना की। उनको एक आकाशवाणी सुनाई पडी कि डरो मत मैं सूर्य वश मे अवतार लूगा। मैंने कश्यप और आदिति को वर दे दिया है कि मैं उनका पुत्र बनूगा। वे दशरथ और कौशल्या के रूप मे अयोध्या मे विराजमान है। मैं पृथ्वी का सारा भार हर लूगा। इस वाणी को सुनकर सब को भारी सन्तोष हुआ। पृथ्वी भी बहुत सुखी हुई। भगवान् ने सभी देवताओ से कहा कि तुम पृथ्वी पर जाकर वानरो का रूप धारण कर लो और वहाँ भगवान् के चरणो की सेवा करो। ब्रह्मा जी भी अपने लोक मे चले गये।

बालकाण्ड

मंगलाचरण

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि ।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ ॥ १ ॥

शब्दार्थ :—कर्तारौ = करने वाले, वन्दे = प्रणाम करता हूँ, विनायक = गणेशजी । वाणी = सरस्वती ।

व्याख्या :—कवि तुलसी दास कहते हैं कि जो सरस्वती वर्णों और अर्थ-समूहों, रसों और छन्दों को बनाने वाली हैं, तथा जो विनायक (गणेश जी) मंगल के देने वाले हैं, उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ ।

भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ :—याभ्यां = जिन दोनों के, पश्यन्ति = देखते हैं, स्वान्तस्थम् = अपने में समाये हुए ।

व्याख्या :—मैं श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप शिव और पार्वती को प्रणाम करता हूँ जिनके बिना सिद्ध लोग अपने हृदय में बसे हुये ईश्वर के दर्शन नहीं कर पाते हैं ।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्र सर्वत्र वन्द्यते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ :—बोधमय = ज्ञान मय, नित्य = सदा रहने वाला, वक्र = टेढ़ा, अपि = भी, वन्द्यते पूजा जाता है ।

व्याख्या :—कवि तुलसी दास जी कहते हैं कि मैं ज्ञानमय और सदा रहने वाले श्रीशंकर रूपी गुरु को प्रणाम करता हूँ । जिनके आश्रय में रहकर टेढ़ा चन्द्रमा भी सबके द्वारा पूजा जाता है ।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :—गुणग्राम = गुणो के समूह, विशुद्ध विज्ञानौ = विशुद्ध ज्ञान से युक्त, कवीश्वर = वाल्मीकि, कपीश्वर = हनुमान ।

व्याख्या :—जो श्री सीता और राम के गुण समूह रूपी पवित्र वन में विहार करने वाले हैं, अर्थात् सीता और राम के गुणो में सदा अनुरक्त रहते हैं, जो विशुद्ध ज्ञान युक्त हैं, इस प्रकार के कवीश्वर वाल्मीकि तथा कपीश्वर श्री हनुमान को मैं प्रणाम करता हूँ ।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ :—उद्भव = उत्पत्ति, स्थिति = पालन, श्रेयस्करी = भला करने वाली, रामवल्लभा = सीता को ।

व्याख्या :—जो सीताजी इस संसार की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली हैं, तथा दुःखों को नष्ट करने वाली और संपूर्ण कल्याणों की करने वाली है, उन्हें मैं (तुलसीदास) प्रणाम करता हूँ ।

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥ ६ ॥

नानापुराणनिगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-
भाषा निबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥ ७ ॥

शब्दार्थ.—निगम = वेद, आगम = शास्त्र, सम्मत = प्रमाणित, यद् = जो निगदित = कथित, क्वचित् = कहीं, स्वान्तः सुखाय = अन्तःसुख के लिये, अति मंजुल = बहुत सुन्दर।

व्याख्या —जो विविध पुराणों, वेदों और शास्त्रों द्वारा प्रमाणित है तथा जो रामायण (वाल्मीकि) में वर्णित है, अन्यत्र भी उपलब्ध है, इस प्रकार की श्रीरामचन्द्र जी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिये अत्यन्त मनोहर भाषा में रचित करके विस्तृत करता है।

सोरठा— जो सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिवर बदन ।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन ॥ १ ॥

शब्दार्थ —सुमिरत = स्मरण करने से, सिधी = फलप्राप्ति, करिवरबदन = गजानन, करउ = करें, अनुग्रह = कृपा सोइ = वे ही, बुद्धिरासि = बुद्धि के भंडार, सदन = घर।

भावार्थ :—कवि तुलसीदास सर्व प्रथम सिद्धि दायक गणेशजी का स्मरण करते हुए कहते हैं कि जिन गजानन महाराज का स्मरण करने से सभी प्रकार की सिद्धि मिलजाती है, वे बुद्धि के भंडार तथा अच्छे गुणों के घर श्री विनायक मुझ पर कृपा करें।

मूक होइ बाचाल, पंगु चढइ गिरिवर गहन,
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन ॥ २ ॥

शब्दार्थ :—मूक = गूंगा, बाचाल = अधिक बोलने वाला, पंगु = लँगडा, गहन = दुर्गम, जासु = जिसकी, द्रवउ = नष्ट करें, कलिमल = कलियुग के पाप दहन = नष्ट करने वाले।

भावार्थ :—कवि तुलसी कहते हैं कि जिन प्रभु की दया से गूंगा अच्छी तरह बोलने की शक्ति और लँगडा दुर्गम पर्वत पर चढने की क्षमता प्राप्त कर लेता है, जो कलियुग के सम्पूर्ण दोषों को नष्ट करने वाले हैं, वे मुझ पर कृपा करें।

विशेष :—यह सोरठा निम्नांकित श्लोक का अक्षरश: अनुवाद है

मूकं करोति वाचालं, पंगुं लंघयते गिरिम्-

यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्"

नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन वारिज नयन।

करउ सो मम उरधाम, सदा छीर सागर सयन ॥ ३ ॥

शब्दार्थ :—सरोरुह = कमल, तरुन = ताजा, अरुन = लाल, वारिज = कमल, मम = मेरे, उर = हृदय, धाम = निवास, छीर सागर = दूध का समुद्र।

भावार्थ :—जिन प्रभु का शरीर नील कमल के समान श्याम है, जिनके नेत्र लाल एवं ताजा खिले कमल जैसे हैं। जो सदा क्षीर सागर में शयन करते हैं, वे मेरे हृदय में निवास करें।

विशेष :—लुप्तोपमा अलंकार।

कुंद इन्दु सम देह, उमा रमन करुणा अयन।

जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :—कुन्द = एक पुष्प, इन्दु = चन्द्रमा, सम = समान, उमा = पार्वती, अयन = घर, जाहि = जिनका, नेह = स्नेह, मर्दन = नष्ट करने वाले, मयन = काम देव (मदन)।

भावार्थ :—जिन शिवजी का शरीर कुंद के पुष्प और चन्द्रमा के समान सुन्दर है, जो पार्वती पति तथा दया के सागर हैं, जिनका दीनों पर अधिक स्नेह है, इस प्रकार के काम देव को नष्ट करने वाले वे शिव मुझ पर कृपा करें।

चौपाई– बंदउँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस-अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ॥
सुकृति संभुतन विमल विभूती । मंजुल मंगल मोद प्रसूती ॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी । किए तिलक गुन गन बस करनी ॥

शब्दार्थ —अमिय = अमृत, चारु = सुन्दर, समन = शान्त करने वाली (शमन), भवरुज = सांसारिक रोग, संभुतन = शिवजी का शरीर, विभूती = भस्म, मंजुल = कोमल, प्रसूती = जन्म देने वाली, मुकुर = दर्पण ।

भावार्थ :—कवि तुलसी दास अपने गुरु के चरण कमल की रज को प्रणाम करते हैं और कहते हैं कि वह रज अच्छी रुचि उत्पन्न करने वाली, सुगन्धित और प्रेम से पूर्ण है गुरु के चरणों की रज अमृत की जड़ों का चूर्ण है जो कि संसार की समस्त व्याधियों के समूह को नष्ट करने वाला है । वह शंभु के शरीर पर लगी हुई निर्मल भस्म के समान है, वह कल्याण और मंगल को देने वाली है । गुरु के चरणों की वह रज भक्तों के मन रूपी सुन्दर दर्पण के मैल को दूर करने वाली है और ललाट पर उसका तिलक लगाने से सम्पूर्ण गुणों को वश में करने वाली है ।

अलंकार —'पद-पदुम' तथा 'मन मंजु मुकुर' में रूपक तथा सर्वत्र अनुप्रास ।

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती । सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ॥
दलन मोह तम सो सुप्रकासू । बड़े भाग उर आवइ जासू ॥
उघरहिं विमल विलोचन ही के । मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक । गुपुत प्रकट जहँ जो जेहि खानिक ॥

शब्दार्थ —नख = नाखून, दिव्य दृष्टि – उज्ज्वल प्रकाश, हियँ = हृदय में, दलन = नष्ट करने वाला, = आवइ = आता है, विलोचन = नेत्र, ही = हृदय रजनी = रात्रि, गुपुत = गुप्त, छिपा हुआ ।

भावार्थ —श्री गुरु के चरणों के नखों का प्रकाश मणियों के प्रकाश के समान है, जिनका स्मरण करते ही हृदय में दिव्य ज्योति उत्पन्न हो जाती है । उस दिव्य प्रकाश से अज्ञान रूपी अँधेरा नष्ट हो जाता है । जिसके हृदय में वह दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाय उसे बड़ा ही भाग्यशाली समझना चाहिये । उस दिव्य दृष्टि से हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के सभी

दोष नष्ट हो जाते है। इसने राम चरित्र रूपी मणि माणिक जहाँ भी, जिस स्थान मे छिपे रहते हैं, वे सब प्रकाशित हो जाते है।

अलंकार —रूपक

दोहा— यथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान॥ १॥

शब्दार्थ :—दृग = नेत्र, कौतुक = खेल, भूरि = बहुत, निधान = खजाना।

भावार्थ :—[गुरु चरणो की रज का महत्व बताते हुये कवि तुलसी दास कहते हैं कि जिस प्रकार चतुर साधक और सिद्ध अच्छे अंजन को नेत्रो मे लगाकर कौतुक के साथ वन पर्वत और पृथ्वी के भीतर छिपे हुये खजानो को देख लेते हैं [उसी प्रकार गुरु चरणो की रज से भी सभी प्रकार का अज्ञान दूर हो जाता है।]

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहि करि बिमल बिवेक बिलोचन। बरनउँ रामचरित भव मोचन॥

शब्दार्थ —मंजुल = कोमल, बिभंजन = नष्ट करने वाला, तेहि = उसे, बरनऊ = वर्णन करता हू।

भावार्थ —श्री गुरु के चरणो की रज कोमल और सुन्दर अंजन है जो नेत्रो के लिये अमृत के समान है, दोषो को नष्ट करने वाली है। उस रज रूपी अंजन से मैं अपने ज्ञान रूपी नेत्रो को स्वच्छ करके मैं संसार के बन्धनो से छुटकारा देने वाले श्री रामचरित का वर्णन करता हूँ।

अलंकार —अनुप्रास एवं रूपक।

बन्दउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥
साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बन्दनीय जेहिं जग जस पावा॥

शब्दार्थ —महीसुर = ब्राह्मण, हरना = नष्ट करने वाले, सुबानी = अच्छी वाणी, जनित = उत्पन्न, कपासु=कपास, परछिद्र = दूसरो के दोष, दुरावा = छिपाते हैं, वन्दनीय = प्रणाम करने योग्य, जेहिं = जिसे।

भावार्थ —सर्व प्रथम मैं मोह से उत्पन्न संदेहो को नष्ट करने वाले ब्राह्मणो के चरणो को प्रणाम करता हूँ। तत्पश्चात गुणो की खान संत समाज

को प्रेमपूर्वक अच्छी वाणी से प्रणाम करता हूँ। सज्जनों का चरित्र कपास के चरित्र के समान शुभ्र है जिसका फल रस हीन, स्वच्छ तथा गुणहीन है। जो स्वयं कष्टों को सहन करता है तथा दूसरों के दोषों को छिपाने वाला है। इसी के कारण इसने संसार में वन्दनीय यश प्राप्त किया है।

अलंकार :—अनुप्रास, साधु चरित सुभचरित' में लाटानुप्रास, तीसरी पंक्ति में श्लेष।

विशेष —यहाँ साधुओं के चरित्र को कपास के समान बताया है। कपास का फल रस हीन होता है, कपास सफेद होता है, उसमें गुण, अर्थात् तन्तु होते हैं, वह कष्ट पाकर अर्थात् रुई के रूप में ओटा जाकर सभी के अंगों को ढकता है, सज्जन भी शुभ्र चरित्र वाले और निर्दोष होते हैं परोपकारी होते हैं। यहाँ 'महीसुर' शब्द का प्रयोग करके तुलसी ने समाज में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का वर्णन किया है।

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथराजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रवि नंदनि बरनी॥
हरिहर कथा विराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी॥
बटु विस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥
अकथ अलौकिक तीरथराऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥

शब्दार्थ :—जंगम = चर, चलने वाला, सुरसरि = गंगा, सरसइ = सरस्वती, रविनंदनि = यमुना, बेनी = त्रिवेणी, बटु = अक्षयवट, सद्य = तत्काल।

भावार्थ—कवि तुलसी ने संत समाज को तीर्थ राज प्रयाग के समान बताते हुए लिखा है कि प्रसन्नता और मंगल (शुभ) से पूर्ण यह जो संत समाज है वह इस संसार में चलता फिरता तीर्थराज है। राम भक्ति इसकी गंगधारा है, ब्रह्म विचार का प्रचार ही सरस्वती नदी है, करणीय और निषिद्ध व्यवस्था से पूर्ण कर्मों की कथा ही कलियुग के पापों को हरने वाली यमुना है। विष्णु और शिव की कथा ही जिसकी त्रिवेणी है जो आनन्द और मंगल को देने वाली है। अपने धर्म में अटल विश्वास ही उस तीर्थ राज का अक्षय वट है शुभ कर्म ही उस तीर्थ राज का समाज है। वह तीर्थ राज सभी को, सर्वदा, सर्वत्र, सुलभ है।

जो व्यक्ति इस तीर्थराज का आदर पूर्वक सेवन करता है अर्थात् सतसग करता है उसे वह सभी कष्टो से मुक्त कर देता । उस अलौकिक तीर्थराज का वर्णन नही किया जा सकता, वह तत्काल फल देने वाला है और उसका प्रभाव प्रत्यक्ष फल देने वाला है।

अलकार :—अनुप्रास से पुष्ट सग रूपक ।

दो०— सुनि समुझहि जन मुदित मन, मज्जहि अति अनुराग ।
लहहि चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ।। २ ।।

शब्दार्थ —मज्जहि = स्नान करते है, लहहि = पाते है, अछत = विना नष्ट हुये ।

भावार्थ —जो मनुष्य इस सत समाज रूपी तीर्थराज के प्रभाव को सुनते हैं। वे इसे समझ कर इसमें अत्यन्त प्रेम के साथ स्नान करते हैं। ऐसे लोग इस शरीर के रहते-रहते ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारो फल प्राप्त करते हैं।

मज्जन फल देखिहि ततकाला । काक होहिं पिक बकउ मराला ।।
सुनि आचरज करै जनि कोई । सत सगति महिमा नहि गोई ।।
बालमीक नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ।।
जलचर, थलचर, नभचर नाना । जे जड चेतन जीव जहाना ।।
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहि जतन जहां जेहि पाई ।।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहु बेद न आन उपाऊ ।।

शब्दार्थ —तत्काल = उसी समय, काक = कौआ' पिक = कोयल, वकउ = बगुला भी, मराला = हस, जनि = मत, गोई = छिपी हुई, घटजोनी = अगस्त्य, नाना = कई, जहाना = ससार मे, भूति = वैभव, आन = अन्य ।

भावार्थ —इस सत समाज रूपी तीर्थराज मे स्नान करने का फल तत्काल मिलता है। इससे कौआ (दुष्ट) कोयल (सज्जन) और बगुला (मूर्ख, धूर्त) हस (सरल) बन जाता है। तात्पर्य यह है कि जो सतसग करते हैं उनकी सभी बुराइया दूर हो जाती हैं। वाल्मीकि नारद और अगस्त्य जैसे ऋषियो ने अपने-अपने मुख से अपने जीवन के अनुभवो (सत सग के सुप्रभावो) का वर्णन किया है। इस ससार के जितने भी जड चेतन प्राणी हैं' चाहे वे जलचर हो' थलचर हो, या आकाश म उड़ने वाले पक्षी हो उनमे जो

अलंकार —अनुप्रास और उदाहरण प्रमाण।

विशेष—वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य की जन्मकथायें अगले प्रश्नों में देखिये।

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥

शब्दार्थ —बिबेक = ज्ञान, मूला = जड़, सठ = मूर्ख (शठ), कुधात = लोहा आदि-नामक धातुएं, फनि = सर्प (फणी) अनुसरहीं = अनुकरण करते हैं, कोबिद = पंडित, जैसें = जैसे. मोसन = मुझसे, साक बनिक = साग बेचने वाला।

भावार्थ —तुलसी दास कहते हैं कि सत्संग के बिना ज्ञान नहीं हो सकता और श्री राम की कृपा के बिना वह (सत्संग) प्राप्त नहीं होता। सत्संगति रूपी वृक्ष का मूल मंगलता और शुभ फलसिद्धि ही उसका फल है और जप तपादि साधन उसके पुष्प हैं। दुष्ट भी सत्संग को पाकर उसी प्रकार सुधर जाते हैं जैसे पारस का स्पर्श करते ही लोहा आदि धातु भी सुहावनी (सोना) बन जाती है। यदि दैव संयोग से कोई सज्जन कुसंगति में पड़ भी जाते हैं तो वे सर्प की मणि की भाँति अपने गुणों का ही अनुसरण करते हैं। आशय यह है जैसे साँप के पास रहकर भी मणि विष से प्रभावित नहीं होती वह अपने स्वाभाविक गुण (प्रकाश) को नहीं छोड़ती उसी प्रकार सज्जन दुष्टों के पास रहकर भी उनके अवगुणों को ग्रहण नहीं करते, अपितु दुष्टों को ही अपना ज्ञान रूपी प्रकाश देते रहते हैं।

सज्जनों की महिमा का वर्णन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कवि और विद्वान की वाणी भी नहीं कर सकती है, फिर मुझ जैसे अल्पज्ञ की वाणी में उसके

वर्णन की शक्ति कहाँ से आ सकती है ! भला सब्जी बेचने वाला सामान्य व्यापारी मणि के गुणों का वर्णन कर सकता है ! कदापि नहीं ।

अलंकार —अनुप्रास, सांग रूपक, अर्थान्तर न्यास, उदाहरण आदि ।

दो०— बन्दउँ सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोई ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोई ।। ३ ।। (क)
संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु ।
बाल बिनय सुनि करि कृपा, रामचरण रति देहु ।। ३ ।। (ख)

शब्दार्थ —अंजलिगत = हाथ में रखे हुए, सम = समान रूप से ।

भावार्थ —तुलसीदास कहते हैं कि मैं उन सज्जनों को प्रणाम करता हूँ जिनका चित्त सब के लिये समान है, न तो किसी से उनकी शत्रुता होती है न मित्रता । जो हित (भलाई) और अनहित (बुराई) की भी परवाह नहीं करते । अंजलि में रखे हुए पुष्प जिस प्रकार दोनों हाथों को सुगन्धित करते हैं उसी प्रकार वे भी शत्रु और मित्र दोनों का हित चाहते रहते हैं ।

संतों का हृदय सरल होता है, वे संसार की भलाई चाहते रहते हैं उनके ऐसे स्वभाव और स्नेह को जानकर मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ । वे मेरी बाल प्रार्थना को सुनकर मुझ पर कृपा करें और श्रीराम के चरणों में प्रेम दें ।

अलंकार —उदाहरण, अनुप्रास और पर्यायोक्ति ।

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ । जे बिनु काज दाहिनेहुँ बाएँ ।।
पर-हित हानि लाभ जिन्ह केरे । उजरें हरष बिषाद बसेरे ।।
हरिहर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ।।
जो पर दोष लखहिं सहसाखी । परहित घृत जिन्ह के मन माखी ।।
तेज कृसानु रोष महिषेसा । अघ अवगुन धन धनी धनेसा ।।
उदय केतु सम हित सबही के । कुंभकरन सम सोवत नीके ।।

शब्दार्थ —बहुरि = फिर, सतिभाएँ = सच्चे भाव से, दहिनेहुँ = अनुकूल, बाये = प्रतिकूल, जिन्ह केरे = जिन के, राकेस = चन्द्रमा, पर = दूसरे का, कृसानु = अग्नि, सह साखी = हजार आँखों वाले, महिषेसा = यमराज, धनेसा = कुबेर, केतु = केतु नामक ग्रह ।

भावार्थ —इसके बाद मैं सच्चे भाव से दुष्ट समूह की वन्दना करता हूँ जो कि अकारण ही हितकारी के भी प्रतिकूल हो जाते हैं । अर्थात् जो उनका

भला करता है उसके भी शत्रु बन जाते हैं। दूसरो की हानि हो जिनका लाभ है, दूसरो के घर उजडने से जो प्रसन्न होते हैं और उन्हे बसते देख कर जिन्हें अत्यधिक दु ख होता है। जो विष्णु और शिव के यश रूपी चन्द्रमा के लिये राहु के समान हैं अर्थात भगवान् की भक्ति के विरोधी हैं और दूसरो की बुराई करने मे जो सहस्त्र बाहु के समान वीर योद्धा हैं। जो दूसरो के दोषो को हजार आँखो से देखते हैं और दूसरो के हित रूपी घी के लिये जिनका मन मक्खी के समान होता है अर्थात् जो दूसरो के बने हुए कार्य को बिगाडने मे ही आनन्द का अनुभव करते है चाहे उन्हे कष्ट ही क्यो न हो।

जो तेज मे अग्नि क्रोध मे यमराज, पाप और अवगुण रूपी धन मे कुबेर के समान है। केतु के उदय के समान ये सब का हित करने वाले हैं, अर्थात् जिस प्रकार केतु कभी किसी का हित नहीं करता उसी प्रकार ये भी कभी किसी का हित नही करते। ऐसे दुष्ट तो कु भकर्ण के समान (छ महिने तक) सोते ही रहे तो भलाई है।

अलकार —रूपक से पुष्ट उपमा अनुप्रास।

विशेष—सहस्त्र बाहु और कु भकरण की अन्तंकथाये प्रश्नोत्तर भाग मे देखिये।

पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं॥
बन्दउ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥
पुनि प्रनवउ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउ तेही। सतत सुरानीक हित जेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस नयन पर दोष निहारा॥

शब्दार्थ —अकाजु = बुराई लगि = लिये, परिहरहिं = त्यागते हैं, हिम उपल = ओले, सक्र = इन्द्र, सुरानीक = अच्छी शराब (सुर+नीक), देवों की सेना (सुर+अनीक), पियारा = प्रिय।

मैं दुष्टो को राजा पृथु के समान समझकर प्रणाम करता हूँ जो हजार कानो से पराये दोषो या पापो को सुनते है। फिर मैं उन्हें इन्द्र के समान समझकर प्रणाम करता हूँ जिन्हे मदिरा अच्छी लगती है, इन्द्र को देवताओ की सेना अच्छी लगती है।

इन्द्र को वज्र प्रिय है, इन्हे वज्र के समान कठोर शब्द प्रिय लगते है, ये हजार नेत्रो से दूसरो के दोषो को देखते है।

अलंकार —उदाहरण, सभगपद श्लेप, अनुप्रास और लुप्तोपम।

विशेष —राजा पृथु की कथा प्रश्नोत्तर भाग में देखिये।

दोहा—उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहि खलरीति।
जानि पानि जुग जोरि जन, विनती करइ सप्रीति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ :—मीत = मित्र, जुग = दोनो।

भावार्थ :—दुष्ट लोगो का यह स्वभाव होता है कि वे उदासीन, मित्र और शत्रु किसी का भी हित सुनकर जलते हैं। इसलिये मैं उन्हे अच्छी तरह समझता हू और दोनो हाथ जोड़कर उसको प्रणाम करता हूँ।

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥
बायस पलिअहि अति अनुरागा। होहि निर मिप कबहुँ कि कागा ॥

शब्दार्थ :—दिसि = ओर से, निहोरा = प्रार्थना, भोरा = भूल, वायास = कौआ, निरामिप = मास न खाने वाला।

भावार्थ —तुलसीदास कहते हैं कि मैंने तो अपनी ओर से उन्हे सभी प्रकार से विनती की है, कोई बात बाकी नही छोडी हैं, किन्तु वे अपनी ओर से दुष्टता करने मे कोई कमी नही रखेंगे। कौओ को चाहे कितने ही प्रेम से पालिये किन्तु वे मासहार को कभी नही छोडेगे। दुष्टो का भी ऐसा ही स्वभाव है।

बन्दउ सत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥
उपजहि एक सग जग माहीं। जलज जोक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥

सुधा सुधाकर सुरसरि साधू । गरल अनल कलिमल सरि व्याधू ॥
गुन अवगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥

शब्दार्थ —बिछुरत = अलग होते ही, दारुन = कठोर, जलज = कमल, बिलगाहीं = भिन्न हो जाते हैं, जलधि = समुद्र, अपलोक = अपयश, सुरसरि = गंगा, गरल = विष, अनल = अग्नि, कलिमल सरि = कर्मनाश नदी, जिसमें नहाने से सभी सत्कर्म नष्ट हो जाते हैं, भाव = अच्छा लगता है, सोई = वही ।

भावार्थ —तुलसीदास कहते हैं कि मैं संतो और दुष्टो दोनों के चरणों को प्रणाम करता हूँ । यद्यपि ये दोनो ही दु ख देने वाले है, किन्तु दोनो के बीच कुछ भेद है । एक (सज्जन) बिछुड़ते ही प्राण हर लेता है. दूसरा (दुष्ट) मिलने पर कठोर दु ख देता है । यद्यपि कमल और जोंक दोनो जल से उत्पन्न होते हैं किन्तु दोनों के गुण भिन्न-भिन्न होते हैं, उसी प्रकार संत और खल एक साथ इस संसार में आते हैं किन्तु अपने स्वभाव के कारण भिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

सज्जन और दुष्ट क्रमश अमृत और शराब के समान होते हैं । जिस प्रकार सुधा और शराब दोनों एक ही स्थान (समुद्र) से उत्पन्न हुये है किन्तु दोनों के स्वभाव मे महान् अन्तर है उसी प्रकार सज्जन और दुष्ट में भ अन्तर होता है । जब कि दोनो इसी संसार के प्राणी होते हैं ।

सज्जन और दुष्ट अपनी-अपनी करनी के अनुसार सुन्दर यश औ अपयश की सम्पत्ति प्राप्त करते हैं । संत अमृत, चन्द्रमा और गंगा के समा होते हैं और दुष्ट, विष, अग्नि और कर्मनाश नदी के समान हैं । इनके गुण और अवगुणों को सब जानते हैं, किन्तु जिसे जो अच्छा लगता है, वह उसे ह ग्रहण करता है ।

अलंकार—अनुप्रास,

भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु ।
सुधा सराहिय अमरतां, गरल सराहिय मीचु ॥ ५ ॥

शब्दार्थ —लहइ = प्राप्त करेगा, मीचु = मृत्यु ।

भावार्थ :—भला मनुष्य भलाई को ही ग्रहण करता है । किन्तु नी चो नीचता को ही अपनाता है । अमृत की सराहना अमरता मे है ज दि विष मृत्यु को ही अपना धन मानता है ।

अलंकार—प्रतिवस्तूपमा ।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा । उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि ते कछु गुन दोष बखाने । संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए । गनि गुन दोष बेद बिलगाए ॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना । बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना ॥

शब्दार्थ —अघ = पाप, गाहा = ग्राहक उदधि = समुद्र, अवगाहा = अथाह, पोच = नीच ।

भावार्थ —कवि तुलसी कहते हैं कि दुष्टो के पापो और दुर्गुणो तथा साधुओ और सज्जनो के गुणो की गाथाएँ अमर और अथाह समुद्र के समान हैं । इसलिये मैं ने इनके कुछ गुण दोषो का वर्णन किया है, क्योकि गुण दोषो की पहचान के बिना लोग इनका संग्रह और त्याग नही कर सकते । भले और बुरे सभी ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न किये गये हैं, परन्तु वेदो ने उनके दोषो व गुणो का विवेचन कर उनको अलग-अलग कर दिया है । वेद, इतिहास और पुराण कहते है कि विधाता की यह सृष्टि गुणो और दोषो से सनी हुई है ।

अलंकार —अनुप्रास

दुख सुख पाप पुण्य दिन राती । साधु असाधु सुजाति कुजाती ।,
दानव देव ऊँच अरु नीचू । अमिय सुजीवनु माहुर मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा । मरु मारव महिदेव गवासा ॥
सरग नरक अनुराग बिरागा । निगमागम गुन दोष बिभागा ॥

शब्दार्थ —दानव = राक्षस, अमिय = अमृत, माहुर = विष, लच्छि = सम्पत्ति, अलच्छि = दरिद्रता, रंक = गरीब, अवनीसा = राजा, मरु = मारवाड, मारव = मालव, महिदेव = ब्राह्मण, गवासा = कसाई ।

भावार्थ —कवि कहता है कि विधाता की सृष्टि मे दुःख-सुख, पाप पुण्य, दिन-रात, साधु-असाधु, जाति-कुजाति, दानव-देव, ऊँच नीच, अमृत-विष, जीवन-मृत्यु, माया-ब्रह्म जीव-ईश्वर, सम्पत्ति-दरिद्रता, रंक-राजा काशी-मगध, गंगा-कर्मनाशा, मारवाड-मालवा, ब्राह्मण कसाई, स्वर्ग-नरक, अनुराग-वैराग्य सब कुछ है । किन्तु वेद शास्त्रो ने उनके विभाग कर दिये है ।

दोहा—जड चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार ।
संत-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ।। ६ ॥

शब्दार्थ —करतार = ईश्वर, पय = दूध विकार = दोष।

भावार्थ —इस जड़ चेतन मय संसार को गुण दोष मय बनाया है, आशय यह है गुणों के साथ दोषों को भी उत्पन्न किया है। परन्तु सज्जन रूपी हंस गुण रूपी दूध को ही ग्रहण करते हैं और अवगुण रूपी जल को छोड़ देते हैं।

अलंकार —सांग रूपक।

अस विवेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

शब्दार्थ —राता = अनुरक्त, बरिआईं = जबरन, जेऊ = जो, बंचक = ठग उघरहिं = भेद खुलजाने पर।

भावार्थ —जब विधाता हंस का सा विवेक देता है तब मन दोषों को छोड़ कर गुणों में अनुरक्त होता है। काल, स्वभाव और कर्म की प्रबलता से अच्छे लोग भी माया के वश में पड़कर भलाई करने में चूक जाते हैं, किन्तु जो भगवान् के भक्त होते हैं, वे उस भूल को सुधार लेते हैं। और दुःख-दोषों को मिटाकर निर्मल यश देते हैं। वैसे ही दुष्ट भी कभी अच्छी संगति पाकर भलाई करते हैं, परन्तु उनके क्रूर स्वभाव में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।

जो जग-वंचक हैं, वेषधारी ठग हैं उन्हें भी साधु वेष के कारण संसार के लोग पूजते हैं, किन्तु कभी न कभी जब उनकी वास्तविकता खुलती है तब उनका कपट नहीं चल सकता जैसे कि कालनेमि, रावण और राहु का कपट नहीं चला।

अलंकार —उदाहरण, अनुप्रास।

विशेष —कालनेमि और राहु की सम्बन्धित कथायें प्रश्नोत्तर भाग में देखिये।

कियेहु कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवन्त हनुमानू॥

हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू ॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन सुक सारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी ॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिय पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोई जल अनल अनिल संघाता। होई जलद जग जीवन दाता ॥

शब्दार्थ :— लाहू = लाभ, सबकाहू = सब किसी को, रज = मिट्टी, सदन = घर, सुक = तोता, सारी = मैना, कारिख = कालिमा, मंजु = सुन्दर, मसि = स्याही, संघाता = संसर्ग।

भावार्थ :— कवि तुलसी कहते हैं कि बुरा वेष धारण कर लेने पर भी सज्जन का सदा सम्मान होता है जैसे जाम्बवन्त का रीछ होने पर और हनुमान के वानर होने पर भी संसार में उनका सम्मान हुआ। कुसंगति से हानि होती है और सुसंगति से लाभ होता है, यह बात लोक और वेद में प्रसिद्ध है और सभी लोग इसे जानते हैं। उदाहरणार्थ मिट्टी हवा के संसर्ग से तो आकाश में चढ़ जाती है और वही मिट्टी नीचे की ओर बहने वाले जल के संसर्ग में आकर कीचड़ बन जाती है। साधु की कुटिया में पले तोता और मैना रामनाम जपते हैं और वही वे गिन-गिन कर गलियाँ भी देते हैं।

बुरी संगति के कारण धुआँ कालिख (कालिमा) कहलाती है और वही सुसंग से स्याही बनकर पुराण लिखने के काम आती है, धुआँ ही जल, वायु और अग्नि के संयोग से संसार को जीवन देने वाला बादल बन जाती है।

अलंकार :— अनुप्रास और उदाहरण।

दोहा—ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाइ, कुजोग, सुजोग।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ७ ॥ (क)
सम प्रकास तम पाख दुहु नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥ ७ ॥ (ख)

शब्दार्थ :—भेषज = औषध, पट = वस्त्र, सुलच्छन = चतुर, पाख = पक्ष, ससि = चन्द्रमा।

भावार्थ :—ग्रह, औषधि, जल, हवा और वस्त्र ये सुसंग और कुसंग

ते इस संसार में सुधर और बिगड जाते हैं। इस बात को चतुर और विचार शील लोग अच्छी तरह जानते हैं।

महिनो के दोनो पक्षो (शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष) मे प्रकाश और अँधेरा समान रूप से रहता है। फिर भी विधाता ने इनका नाम भेद कर दिया है। एक को चन्द्रमा का बढाने वाला और दूसरे को उसका घटाने वाला समझ कर संसारने एक को यश और दूसरे को अपयश दे दिया है।

अलंकार —यथासंख्य, छेकानुप्रास।

दोहा—जड़ चेतन जग जीव जत, सकल राममय जानि।
बंदउँ सबके पद-कमल, सदा जोरि जुग पानि ॥ ७ ॥ (ग)
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्ब।
बंदउँ किंनर रजनिचर कृपा करहु अब सर्ब ॥ ७ ॥ (घ)

सब प्रकार के जीवो से युक्त इस ससार को सियाराम मय समझकर मैं दोनो हाथो से प्रणाम करता हू । कवि तुलसीदास कहते हैं कि मैं इन सभी जीवो का सेवक हू, ये मुझ पर कृपा करे । और मेरे साथ छल कपट का व्यवहार न करें । मुझे अपने बुद्धिबल का भरोसा नहीं है, इसलिये मैं उन सब को प्रार्थना करता हू ।

मैं श्री रामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन करना चाहता हू परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और श्रीराम का चरित्र समुद्र के समान अथाह है । मुझे कई प्रकार के उपायो मे से कोई एक भी उपाय नहीं जानता हू, मेरा मन और बुद्धि असमर्थ है किन्तु मनोरथ राजा है ।

अलकार —अनुप्रास

मति अति नीच ऊ चि रुचि आछी । चहिअ अमिय जग जुरइ न छाछी ।।
छमिहहि सज्जन मोरि ढिठाई, । सुनिहहि बालबचन मन लाई ।।
जौं बालक कह तोतरि बाता । सुनहि मुदित मन पितु अरु माता ।।
हसिहहि कूर कुटिल कुबिचारी । जे पर दूषन भूषनधारी ।।

शब्दार्थ —अमिअ = अमृत, आछी = अच्छी, ढिठाई = मूर्खता ।

भावार्थ —तुलसीदास कहते है कि मेरी बुद्धि तो अति नीच है किन्तु रुचि ऊ ची और अच्छी है। इच्छा तो अमृत पाने की है, पर जगत मे छाछ का प्रबन्ध भी हो नही रहा है । इसलिये अपनी असमर्थता को देखते हुये मैं सज्जनो से निवेदन करता हू कि वे मेरी धृष्टता को क्षमा करें और मेरे बाल वचनो को ध्यान से सुनें । यदि कोई बालक तोतले वचन कहता है तो माता-पिता उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं किन्तु जो क्रूर और कुटिल विचार वाले होते है तथा जो सदैव दूसरो के दोषो को ही देखते है, उन्हे भूषण के रुप मे धारण करते हैं, वे हँसेगे ।

अलकार —अनुप्रास

निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ।
जे पर भनिति सुनत हरषाहीं । ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं ।।
जग बहु नर सर सरि सम भाई । जे निज बाढ़ि बढहि जल पाई ।।
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई । देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ।।

शब्दार्थ :—नीका = अच्छा, भनिति = रचना, सकृत = कोई, विरला। विधु = चन्द्रमा।

भावार्थ :—तुलसीदासजी कहते हैं कि अपनी कविता चाहे सरस हो या नीरस, किसे अच्छी नहीं लगती है? किन्तु ऐसी उत्तम प्रकृति के पुरुष संसार में बहुत कम हैं जो दूसरों की रचना को सुनकर प्रसन्न होते हैं। समुद्र के समान गंभीर व्यक्ति शायद ही कोई हो जो चन्द्रमा की पूर्णता (दूसरों का उत्कर्ष) देखकर प्रसन्न होते हैं।

अलंकार :—उपमा

दो० भाग छोट अभिलाषु बड़, करउ एक विस्वास।
पैहहि सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहिं उपहास॥ ८॥

शब्दार्थ :—पैहहि = पावेंगे, उपहास = हँसी।

भावार्थ :—तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरा भाग्य तो छोटा है किन्तु इच्छा बहुत बड़ी है मुझे विश्वास है कि जो सज्जन इसे सुनेंगे वे सुख पावेंगे और दुष्ट उपहास करेंगे।

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कल कंठ कठोरा॥
हंसहि बक दादुर चातकही। हंसहि मलिन खल विमल बतकहीं॥
कवित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हंसिबे जोग हँसे नहिं खोरी॥

शब्दार्थ :—कलकंठ = कोयल, बतकही = वाणी, दादुर = मेढक, एहू = यह भनिति = रचना, खोरी = दोष।

भावार्थ :—तुलसीदास कहते हैं कि दुष्ट लोगों के हँसने से मेरा भला ही होगा। कौए तो मधुर कंठवाली कोयल को कठोर कहते ही हैं। इसी प्रकार बगुले हंस को तथा मेंढक पपीहे की हँसी करते हैं। दूषित मनवाले भी इसी प्रकार निर्मल वाणी पर हँसते ही हैं। जो लोग न तो कविता के रस को जानते हैं और न जिनका प्रेम श्रीराम के चरणों में है उनके लिये मेरी रचना केवल हास्य रस प्रस्तुत करेगी। यह बात ठीक भी है क्योंकि मेरी यह रचना भाषा में है और बुद्धि भी भोली है अतएव हँसने योग्य रचना पर हँसना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, इसमें हँसने वाले का कोई दोष नहीं है।

अलकार :—अनुप्रास की छटा दर्शन योग्य है ।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी । तिन्हहिं कथा सुनि लागहि फीकी ॥
हरिहर पद रति मति न कुतरकी । तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की ॥
राम भगति भूषित जिय जानी । सुनहहिं सुजन सराहि सुबानी ॥

शब्दार्थ :—सामुझ = समझ, कुतरकी = कुतर्क करने वाली, सुबानी = अच्छी वाणी ।

भावार्थ —जिन लोगो का न तो प्रभु के चरणो मे प्रेम है, और न जो अच्छी समझ वाले हैं, उनको यह कथा फीकी लगेगी । जिनका प्रेम श्रीविष्णु और शकर के चरणो मे है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करने वाली नही है उन्हे भी श्रीराम की यह कथा अच्छी लगेगी । जो सज्जन हैं–वे श्रीराम-भक्ति से भूषित होकर इसकी सराहना करते हुए सुनेगे ।

अलंकार :—वृत्त्यनुप्रास ।

कवि न होउँ नहि वचन प्रवीनू । सकल कला सब विद्या हीनू ॥
आखर अरथ अलकृति नाना । छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोष गुन विविध प्रकारा ॥
कवित विवेक एक नहि मोरे । सत्य कहउ लिखि कागद कोरे ।

शब्दार्थ :—प्रवीनू = चतुर, आखर = अक्षर अलकृति = आकार ।

भावार्थ —कवि तुलसीदास कहते हैं कि मै न तो कोई कवि हू और न बात कहने मे ही चतुर हू , मै सब कलाओ और विद्याओ से शून्य हू । नाना प्रकार के अक्षर, अर्थ और अलकार, अनेक प्रकार की छन्द रचना, भावो और रसो के अपार भेद, तथा कविता के विभिन्न गुण दोष–इनमे से मुझे किसी एक भी बात का ज्ञान नही है, इस बात को मै कोरे कागज पर लिखता हू , अर्थात् सत्य कहता हू ।

दोहा–भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक ।
सो बिचारि सुनहहिं सुमति, जिन्ह के बिमल बिवेक ॥९॥

शब्दार्थ —भनिति = रचना मोरि = मेरी ।

भावार्थ —तुलसीदास कहते हैं कि मेरी रचना सब गुणो से रहित है । जो निर्मल ज्ञान वाले और अच्छी बुद्धि वाले सज्जन लोग हैं वे इनके केवल एक ही जग प्रसिद्ध गुण को देखकर इसे सुनेंगे ।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मंगल भवन अमंगलहारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥
भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ । राम नाम बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी । सोह न बसन बिना बर नारी ॥

शब्दार्थ —अतिपावन = बहुत पवित्र, पुरारी = शंकर, बिधुबदनी = चन्द्रमुखी ।

भावार्थ —मेरी इस रचना में श्रीराम का नाम उदार है जो अत्यन्त पवित्र है, वेद और पुराणों का जो सार है, कल्याण का घर है, अमंगलों को हरने वाला है और जिसको भगवान शंकर पार्वती सहित सदा जपते रहते हैं। चाहे कोई कविता कितनी भी सुन्दर हो, किसी भी अच्छे कवि द्वारा रची गयी हो, किन्तु उसमें यदि राम का नाम अंकित नहीं है तो उसकी शोभा वैसे ही नहीं होती जैसे चन्द्रमा के समान मुख वाली सुन्दर स्त्री सब प्रकार से सुसज्जित होकर भी वस्त्र के बिना शोभा नहीं देती ।

अलंकार —लाटानुप्रास और दृष्टान्त ।

सब गुन रहित कुकवि कृत बानी । राम नाम जस अंकित जानी ॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । मधुकर सरिस सन्त गुनग्राही ॥
जदपि कवित रस एकउ नाहीं । रामप्रताप प्रगट एहि माहीं ॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा । केहि न सुसंग बडप्पनु पावा ॥
धूमउ तजइ सहज करुआई । अगरु प्रसंग सुगन्ध बसाई ॥
भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी । राम कथा जग मंगल करनी ॥

शब्दार्थ —बुध = विद्वान, मधुकर = भौंरा, बडप्पनु = बडप्पन, करुआई = कड़वाहट, अगरु = चन्दन, भदेस = भद्दी ।

भावार्थ —जो कविता सब गुणों से रहित है, कुकवि द्वारा रचित है, किन्तु उसमें राम का नाम और यश अंकित है उसे बुद्धिमान लोग कहते हैं और सुनते हैं क्योंकि सन्त जन भौंरे के समान गुणग्राही होते हैं (वे अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देते हैं) यद्यपि मेरी इस रचना में कविता का एक भी रस नहीं है किन्तु इसमें श्रीराम का प्रताप प्रकट है । मेरे मन में यही एक भरोसा है, भला सुसंगति से बडप्पन किसने नहीं पाया ? धुआं स्वभाव से ही कड़वा होता है, किन्तु अगर के संग से उसमें सुगन्ध आ जाती है । मेरी कविता भद्दी

अवश्य है, किन्तु इसमे जन-कल्याण करने वाली रामकथा रूपी उत्तम वस्तु का वर्णन किया गया है। (इसलिये यह अच्छी है।)

अलंकार :—छेकानुप्रास।

छन्द—मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की।
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

शब्दार्थ —कूर = टेढी पाथ = जल, भव = शिवजी, भूति = राख, पावनी = पवित्र करने वाली।

भावार्थ —कवि तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजी की कथा मगल करने वाली तथा कलियुग के पापो को नष्ट करने वाली है। मेरी इस भद्दी कविता रूपी नदी की चाल पवित्र जल वाली नदी (गगा) की चाल के समान टेढी है, परन्तु श्रीराम के यश के सयोग से यह कविता सुन्दर बनकर उसी प्रकार सज्जनो के मन को अच्छी लगेगी, जिस प्रकार श्मसान की अपवित्र राख भी शिवजी के अग मे लगकर सुहावनी लगती है और स्मरण करते ही पवित्र करने वाली होती है।

विशेष —यह हरिगीति का छन्द है।

दो० प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम जस सग।
दारु विचारु कि करइ कोउ, बंदिअ मलय प्रसंग॥ १०॥ (क)
स्याम सुरभि पय बिसद अति, गुनद करहि सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहि सुनहि सुजान॥१०॥ (ख)

शब्दार्थ —दारु = लकडी, मलय = चन्दन, सुरभि = गाय, विसद = उज्वल, ग्राम्य = गवारु।

भावार्थ —तुलसीदासजी कहते है कि मेरी यह रामकथा श्रीराम के यश-वर्णन के कारण सबको अच्छी लगेगी, क्योकि, मलय पर्वत के सग से प्रत्येक काष्ठ चन्दन बनकर वन्दनीय बन जाता है। क्या उस काष्ठ का कोई विचार करता है।

यद्यपि गाय काली होती है, फिर भी उसका दूध उज्ज्वल होता है, गुणकारी होता है, इसलिए लोग उसका पान करते हैं। इसी प्रकार मेरी कविता की भाषा गवारू होने पर भी श्री सीतारामजी के यश वर्णन के प्रभाव से इसे ज्ञानी-जन गाते और सुनते हैं।

अलंकार —अर्थान्तरन्यास।

मनि मानिक मुकता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोहन तैसी।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेइ सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत-अनत छबि लहहीं।
भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई।

शब्दार्थ—अहि=सर्प, किरीट=मुकुट, लहहिं=प्राप्त करता है, तैसेइ=वैसेही, अनत=दूसरे स्थान पर सारद=सरस्वती, विधि भवन=ब्रह्मलोक।

भावार्थ—मणि, माणिक और मोती जैसी शोभा राजा के मुकुट और युवती के शरीर पर प्राप्त करते हैं वैसी शोभा सर्प, पर्वत और हाथी के सिर पर नहीं पाते। इसी प्रकार विद्वान लोगों का कथन है कि अच्छे कवियों की रचना एक जगह बनती है और दूसरी जगह शोभा प्राप्त करती है। सरस्वती भक्ति के कारण ब्रह्मलोक को छोड़कर दौड़ आती है।

अलंकार :—यथासंख्य।

रामचरित सर बिनु अन्हवाये। सो श्रम जाइ न कोटि उपाये।
कबि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरिजस कलिमल हारी।
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना॥
हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना॥
जो बरषइ बर बारि बिचारू। होहिं कवित मुकुतामनि चारू॥

शब्दार्थ —श्रम=परिश्रम, कोबिद=पंडित, प्राकृत=साधारण, गिरा=सरस्वती।

भावार्थ —शारदा ब्रह्मलोक से दौड़कर आती है तो उसको थकान का अनुभव होता है। इसको रामचरितरूपी सरोवर में उन्हें स्नान कराये बिना

अन्य करोड़ों उपायों से भी दूर नहीं होती। कवि और पण्डित अपने हृदय मे ऐसा विचार करके कलियुग के पापो को नष्ट करने वाले श्रीहरि के यश का ही गान करते है। ससारी मनुष्यो का गुणगान करने से सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती है। ज्ञानी लोग कहते हैं कि हृदयरूपी जो समुद्र है जिसमे बुद्धि सीप के रूप मे स्थित है और सरस्वती स्वाति नक्षत्र है। यदि श्रेष्ठ विचार रूपी जल की वर्षा हो तो उस सीप से उत्तम कविता रूपी सुन्दर मुक्ता मणि उत्पन्न होती है।

अलंकार :—सागरूपक।

दो० जुगुति बेधि पुनि पोहिअहि, रामचरित बर ताग।
पहरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥

शब्दार्थ—जुगुति = युक्ति, पोहिअहिं = पिरोयेंगे, बरताग = श्रेष्ठ धागा, पहिरहि = पहिनेंगे।

भावार्थ :—उन कविता रुपो मुक्तामणियो की युक्ति से बेधकर तथा रामनाम रुपी धागे मे पिरोकर सज्जन लोग अपने निर्मल हृदय में बड़े प्रेम से धारण करते हैं और शोभित होते है।

अलंकार—रूपक।

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस बेष मराला॥
चलत कुपंथ बेद मग छाँडे। कपट कलेवर कलिमल भाँडे॥
बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के।
तिन्ह महँ प्रथम रेख जगमोरी। धींग धरमध्वज धंधक धोरी॥
जो अपने अवगुन सब कहऊं। बाढ़ई कथा पार नहिं लहऊं॥
ताते मै अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥

शब्दार्थ —कराला = भयकर, मराला = हंस, कलेवर = शरीर, बंचक = ठग, प्रथमरेख = पहला नाम, धींग = धींगा–मस्ती, धन्धक धोरी = कपट के धन्धो का बोझा ढोने वाले, बाढहि = बढ़ेगी।

भावार्थ —जो इस भयकर कलिकाल मे पैदा हुए हैं जिनकी करनी कौए जैसी और वेष हंस जैसा है, जो वेद के मार्ग को छोडकर कुमार्ग पर चलते हैं, जो कपटी हैं और कलियुग के पापो के पात्र हैं (भरे हैं), महापापी

हैं, ऐसे लोग अपने आपको राम या भक्त बताते हैं परन्तु वे वस्तुत ठग हैं। वे लोग स्वर्ण क्रोध और काम के दास हैं, वे धींगा मस्ती (उचित, अनुचित सभी प्रकार के कार्य) करने वाले हैं धर्मध्वजी बनकर धोखा देने वाले हैं तथा जो कपट के धंन्धों का बोझ ले जाने वाले हैं, ऐसे लोगों में मेरा नाम सर्वप्रथम है।

तुलसीदास कहते हैं कि यदि मैं अपनी सभी बुराइयों का वर्णन करने लगू तो कथा बहुत बढ़ जायगी और मैं पार नही पाऊंगा। इसलिये मैंने अपने बहुत कम अवगुणों का वर्णन किया है, जो समझदार हैं वे इस अल्प वर्णन में ही समझ जायेंगे।

अलकार —वृत्यनुप्रास ।

समुझि विविध विधि विनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहिं खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे असका। मोहि ते अधिक ते जड मति रंका॥
कवि न होउं नहिं चतुर कहावउं। मति अनुरूप राम गुन गावउं॥
कहं रघुपति के चरित अपारा। कहं मति मोरि निरत ससारा॥
जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥

शब्दार्थ—अनुरूप = अनुसार, निरत = तल्लीन, मारुत = वायु, तूल = रूई, अमित = अपार, कदराई = हिचकिचाता है।

भावार्थ – तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरी अनेक प्रकार की प्रार्थना को सुन कर भी दोष नही देगा। इतने पर भी जो शका करेंगे वे तो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धि के दरिद्र हैं। मैं न तो कवि हू न चतुर हू, मैं तो अपनी बुद्धि के अनुसार रामगुण गाता हू। कहा तो श्रीराम का अपार चरित्र और कहा सासारिक विषयो मे फसी मेरी बुद्धि? जिस हवा मे सुमेरु जैसे पहाड़ उड जाते हैं, भला उसके सामने रूई की क्या गिनती है? जब मेरा ध्यान श्री रामचन्द्रजी की असीम प्रभुता की ओर जाता है तो मेरा मन उनकी कथा लिखने मे हिचकिचाता है।

अलकार–निदर्शना।

सारद सेस महेस विधि, आगम, निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरन्तर गान॥

शब्दार्थ—नेति = उसका अन्त नहीं है।

भावार्थ – सरस्वती, शेष, शिव और ब्रह्मा, शास्त्र, वेद और पुराण ये सब 'नेति नेति' कहकर सदा जिनका गुणगान किया करते है। (भला ऐसे प्रभु का गुणगान मैं कैसे कर सकता हू)

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई ।।
तहा वेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाति बहु भाषा ।।
एक अनीह अरूप अनामा । अज सच्चिदानन्द परधामा ।।
व्यापक विश्व रूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना ।।
सो केवल भगवत हित लागी । परम कृपाल प्रनत अनुरागी ।।

शब्दार्थ—तदपि = फिर भी, भाखा = कहा है, अनीह – इच्छा रहित, प्रनत = भक्त ।

भावार्थ—प्रभु की ऐसी प्रभुता को सब जानते हैं फिर भी उसे कहे बिना कोई नही रहा । इसमे वेद ने यह कारण बताया है कि भजन का प्रभाव कई तरह मे कहा गया है। आशय यह है कि भगवान की अपार महिमा का वर्णन यथाशक्ति करना चाहिये। जो प्रभु एक है, इच्छा रहित है, जिसका कोई रूप व नाम नही है, जो अजन्मा है, सत चित और आनन्द स्वरूप है। जो परम धाम है और सर्व व्यापक तथा विश्वरूप है उसी भगवान ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीला की है। उसकी यह लीला केवल भक्तो के लिए ही है क्योकि भगवान परम कृपालु हैं और अपने भक्त पर बहुत कृपा करने वाले हैं।

अलकार – अनुप्रास

जेहि जन पर ममता अति छोहू । जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू ।
गई बहोर गरीब नेवाजू । सरल सबल साहिब रघुराजू ।
बुध बरनहि हरि जस अस जानी । करहि पुनीत सुफल निज बानी ।।
तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा । कहिहउ नाइ राम पद माथा ।।
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई । तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ।।

शब्दार्थ—कोहू = क्रोध, बहोर = फिर से प्राप्त करने वाले, गरीब नेवाजू = दीन दयालु ।

भावार्थ—जिनकी भक्तो पर बडी ममता है और कृपा है और जिन्होंने

कृपा करके फिर किसी पर क्रोध नही किया ऐसे प्रभु श्री राम हैं जो गई हुई वस्तु को फिर से लौटा देते हैं जो दीनो का पालन करने वाले हैं, जो सरल स्वभाव वाले, सर्व शक्तिमान और सबके स्वामी हैं। यह समझकर ही बुद्धिमान लोग भगवान के यश का वर्णन करके अपनी वाणी को पवित्र और उत्तम फल देने वाली बनाते हैं। उन्ही भगवान की कृपा के बल पर मैं श्रीराम के चरणों मे सिर झुकाकर श्री रघुपति के गुणो की कथा कहूंगा। मुनियो ने पहले जिस प्रकार श्रीराम का यश गाया है, हे भाई! मुझे उसी मार्ग पर चलना सुगम प्रतीत होता है।

अलंकार—अनुप्रास।

अति अपार जे सरित बर, जौनृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रमु पारहि जाहिं॥

शब्दार्थ—बर = श्रेष्ठ, सरित = नदी, सेतु = पुल, पिपीलिकउ = चींटी भी।

भावार्थ—जो नदिया बहुत अच्छी है किन्तु दुर्गम हैं, जिनके पार जाना सम्भव नही है, ऐसी नदियो पर यदि राजा पुल बना देते है तो चीटियाँ भी उसे बिना किसी विशेष कठिनाई के पार कर सकती है। आशय यह है कि जिस प्रकार पहले के मुनियों ने श्रीराम के यश का वर्णन किया है उसी के सहारे मैं भी उस चरित्र का वर्णन कर सकूंगा।

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई।
ब्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना।
चरन कमल बन्दउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे॥
कलि के कबिन्ह करउँ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुनग्रामा॥
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवउ सबहि कपट सब त्यागे॥

शब्दार्थ—कवि पुंगव = कवि श्रेष्ठ, पुरवहु = पूर्ण करें ग्रामा = समूह।

भावार्थ—इस प्रकार मैं मनोबल प्राप्त करके (कि मैं श्रीराम के

चरित्र का वर्णन कर सकता हू) श्री रघुपति की सुहावनी कथा को कहूंगा। व्यास आदि जिन श्रेष्ठ कवियो ने वडे आदर के साथ भगवान के गुणो का वर्णन किया है, मैं उनके चरण कमलो को प्रणाम करता हू, वे मेरे सव मनोरथो को पूरे करें।

मैं कलियुग के भी उन सव कवियो को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने श्री राम के गुण-समूह का वर्णन किया है। जो वडे वुद्धिमान प्रकृत कवि है जिन्होंने भाषा मे श्री हरि के चरित्र का ही वर्णन किया है। ऐसे कवि जो मौजूद हैं, हो चुके हैं तथा जो होगे, उन सव को मैं सभी प्रकार का कपट त्याग कर प्रणाम करता हूँ।

अलकार :—रूपक

होहु प्रसन्न देहु वरदानू। साधु समाज भनिति सनमानू॥
जो प्रवन्ध वुध नाहि आदरहीं। सो श्रम वादि बाल कवि करहीं॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सव कहँ हित होई॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमजस अस मोहि अँदेसा॥
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मारे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे॥

शब्दार्थ :—वादि = व्यर्थ, भूति = ऐश्वर्य, सुरसरि = गगा, अँदेसा = आशका, सदेह। टाटपटोरे = रेशम के डोरे।

भावार्थ —तुल्सी दास प्रार्थना करते हैं कि मुझे प्रसन्न होकर आप सभी प्रकार के कवि वरदान दीजिये कि सज्जनो मे मेरी कविता का सम्मान हो। क्योंकि जिस रचना का वुद्धिमान् लोग आदर नही करते, मूर्ख कवि उसकी रचना का श्रम मूर्ख कवि व्यर्थ ही करते हैं। कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही अच्छी होती है जो गगा जी के समान सवका हित करने वाली हो। श्री राम की कीर्ति तो वहुत अच्छी है किन्तु मेरी कविता वहुत भद्दी है, इसी से मुझे चिन्ता है। परन्तु हे कवियो आपकी कृपा से यह वात भी मेरे लिये सुलभ हो सकती है यदि आपकी कृपा हो। जैसे भी टाटपर भी रेशम की सिलाई अच्छी लगती है।

अलंकार —अनुप्रास

सरल कवित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान,
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान ॥ १४ ॥ (क)

भावार्थ :—सज्जन लोग सरल कविता का ही आदर करते हैं जो सरल हो और जिसमें निर्मल चरित्र का वर्णन हो। वह इतनी अच्छी हो कि शत्रु भी स्वभाविक वैर विरोध को छोडकर उसकी सराहना करने लगें।

सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि मति बल अति थोर,
करहु कृपा हरि जस कहउं, पुनि पुनि करउं निहोर ॥ १४ ॥ (ख)

भावार्थ :—ऐसी कविता बिना निर्मल बुद्धि के नहीं हो सकती और मुझमें बुद्धिबल कम है। इसलिये मैं बार-बार आप लोगों से साग्रह निवेदन करता हूँ कि हे कवियों आप लोग मुझ पर कृपा करें जिससे मैं प्रभु के निर्मल यश का वर्णन कर सकूं।

कवि कोविद रघुबर चरित, मानस मंजु मराल
बालविनय सुनि सुरुचि लखि, मो पर होहु कृपाल ॥ १४ ॥ (ग)

भावार्थ —हे कवियो और विद्वानों आप श्री राम चरित्र रुपी मान सरोवर के सुन्दर हंस है। आप मुझ बालक की विनती सुनकर और मेरी अच्छी रुचि को देखकर मुझ पर कृपा करें।

अलंकार :—रूपक

सोरठा—बन्दउं मुनिपद कंजु, रामायन जेहिं निरमयउ
सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित ॥ १४ ॥ (घ)

शब्दार्थ —कंजु=कमल, सखर=खर नामक राक्षस के सहित, कठोर होने पर भी। दूषन=एक राक्षस, दोष।

भावार्थ —कवि कहता है कि मैं उन वाल्मीकि मुनि के चरणों में प्रणाम करता हूँ जिन्होंने रामायण की रचना की जो खर (राक्षस की कथा) सहित होने पर भी कठोर नहीं है, प्रत्युत कोमल और सुन्दर है तथा जो दूषण (राक्षस की कथा) होने पर भी दोष युक्त नहीं है।

अलंकार :—श्लेष से पुष्ट विरोधाभास।

बन्दउँ चारिउ बेद, भव वारिधि बोहित सरिस,
जिन्हहि न सपनेहु खेद, बरनत रघुवर विसद जसु ॥ १४ ॥ (ङ)

शब्दार्थ :—वारिधि = समुद्र, बोहित = जहाज।

भावार्थ —मैं चारो वेदो को प्रणाम करता हूँ जो कि ससार रूपी समुद्र को पार करने के लिये जहाज के समान हैं। जिन्हे श्री राम के विमल यश का वर्णन करने मे स्वप्न में भी खेद नही होता।

अलकार —रूपक और उपमा।

बन्दउँ विधि पद रेनु, भव सागर जेहिं कीन्ह जहँ,
सत सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल, बिष बारुनी ॥ १४ ॥ (च)

शब्दार्थ =सत = सज्जन, ससि = चन्द्रमा, रेनु = मिट्टी, बारुनी = शराब।

भावार्थ —मैं ब्रह्मा जी के चरणों की रज को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने इस भव सागर को बनाया है। जिसमे से एक ओर तो सज्जन रूपी अमृत और चन्द्रमा तथा कामधेनु प्रकट हुये हैं तथा दूसरी ओर दुष्ट रूपी विष और मदिरा प्रकट हुये हैं।

विशेष :—रूपक अलकार

विबुध बिप्र बुध ग्रह चरन, बंदि कहउँ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल, मजु मनोरथ मोरि ॥ १४ ॥ (छ)

शब्दार्थ —विबुध = देवता बुध = पडित, पुरवहु = पूर्ण करे।

भावार्थ ;—देवता, ब्राह्मण और पडित तथा ग्रहो की चरण वन्दना करके मैं हाथ जोडकर कहता हूँ कि आप सब मुझ पर प्रसन्न हो तथा मेरे सम्पूर्ण सुन्दर मनोरथो को पूर्ण करे।

अलंकार :—अनुप्रास।

आदर

पुनि बदउँ सादर सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता ॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका ॥
गुर पितु मातु महेस भवानी। प्ररवउँ दीनबन्धु दिन दानी ॥
सेवक स्वामि सखा सिय पी के। हित निरुपधि सब विधि तुलसी के ॥

शब्दार्थ :—जुगल=दोनों, मज्जन=स्नान, पान=पीना, पुनीत=पवित्र, सियपीके=सीता जी के पति श्रीराम के, निरूपधि=कपट रहित।

भावार्थ —इसके बाद मैं सरस्वती जी और गंगा जी की वन्दना करता हूं। दोनों ही पवित्र और मनोहर चरित्र वाली हैं। गंगाजी में स्नान करने और उसका जल पीने से पाप नष्ट होते हैं और सरस्वती जी कहने तथा सुनने से अज्ञान का नाश करती है। मैं अपने गुरु और माता पिता स्वरूप जो शिव और पार्वती हैं उन्हें प्रणाम करता हूँ। ये दीनबन्धु तथा नित्य दान करने वाले हैं। ये सीतापति श्री राम के सेवक, सखा और स्वामी हैं तथा तुलसी दास के सभी प्रकार से हित करने वाले हैं।

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा। सावर मंत्र जाल जिन्ह सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥
सो उमेस मोहि पर अनुकूला। करिहिं कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥

शब्दार्थ —गिरिजा=पार्वती, सावर=शावर, सिरिजा=रचा, उमेस=शिव, पसाउ=प्रसाद।

भावार्थ —शिव और पार्वती ने कलियुग को देखकर संसार के हित के लिये शावर मन्त्रों की रचना की है। उन मन्त्रों के अक्षर बेमेल हैं न उनका कोई अर्थ है न जप ही होता है फिर भी शिव जी के प्रताप से उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है। वे ही उमापति शिव मुझ पर कृपा करें, प्रसन्न हों और मेरी इस कथा को प्रसन्नता और कल्याण का मूल बनावें। इस प्रकार मैं पार्वती और शिव दोनों का स्मरण करके और उनका प्रसाद पाकर उत्कण्ठा के साथ श्रीराम के चरित्र का वर्णन करता हूँ।

अलंकार :—अनुप्रास

भनिति मोरि सिव कृपा बिभाती। ससि समाज मिलि मनहुँ सुराती॥
जो एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥

शब्दार्थ :—बिभाती=सोभित होती है, समेता=ध्यान से।

भावार्थ :—तुलसी दास जी कहते हैं कि शिव जी की कृपा से मेरी कविता वैसी ही अच्छी लगेगी जैसे चन्द्रमा और तारागो सहित रात्रि लगती है। जो इस कथा को प्रेम सहित एव सचेत होकर समझबूझ के साथ कहे और सुनेगें वे कलियुग के पापों से रहित तथा सुन्दर कल्याण के भागी बनकर श्री राम के चरणो के प्रेमी बन जायेंगे।

अलंकार —उत्प्रेक्षा

सपनेहुँ सांचेहुँ मोहि पर जो हर गौरि पसाउ।
तो फुर होउ जो कहेउँ सब, भाषा भनिति प्रभाउ॥ १५॥

शब्दार्थ – पसाउ = (प्रसाद) प्रसन्नता, फुरि = सच।

भावार्थ – यदि शिव और पार्वती मुझ पर स्वप्न मे भी सचमुच प्रसन हो तो मैंने इस भाषा कविता का जो प्रभाव कहा है वह सब सत्य हो।

बंदउँ अवधपुरी अतिपावनि। सरजू सरि कलि कलुष नसावनि॥
प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी। ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी॥
सिय निंदक अघ ओघ नसाये। लोक बिसोक बनाई बसाये॥
बन्दउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥
प्रगटेउ जँह रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सुकृत सुमंगल मूरति मानी।
करउँ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिन्हहि बिरचि बड भयउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥

शब्दार्थ – पावनि = पवित्र; कलुष = पाप, बहोरी = फिर, अघ = पाप, ओघ = समूह, प्राची = पूर्व दिश, माची = फैली हुई है, तुसारू (तुषार) = बर्फ।

भावार्थ – कवि तुलसीदास कहते हैं कि मैं अत्यन्त पवित्र अयोध्या-पुरी को प्रणाम करता हूँ और कलियुग के पापो को नष्ट करने वाली सरयू नदी की वन्दना करता हूँ। पुन मैं अयोध्या पुरी के उन नर नारियो को प्रणाम करता हूँ जिन पर श्री राम की असीम कृपा है। जिन्होने सीता जी निन्दा करने वाले धोबी के पापो को नष्ट करके इस ससार के सभी कष्टो से उसे मुक्त करके अपने लोक मे बसा लिया।

मैं कौशल्या रूपी पूर्व दिशा को प्रणाम करता हूँ जिसकी कीर्ति सर्वत्र फैल रही है, जहाँ विश्व को सुख देने वाले तथा दुष्ट रूपी कमल समूह के लिये पाले के समान श्री रामचन्द्र जी रूपी सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुये। मैं सभी रानियों सहित राजा दशरथ को मन क्रम और वाणी से प्रणाम करता हूँ जो पुण्यात्मा है और कल्याण की मूर्ति हैं। वे मुझे अपने पुत्र का सेवक जानकर कृपा करें। श्रीराम के माता पिता महिमा की सीमा हैं। जिन्हें रचकर ब्रह्माजी ने भी बड़ाई प्राप्त की।

अलंकार – अनुप्रास और रूपक

दो० बन्दउँ अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥ १६॥

शब्दार्थ – भुआल = राजा (भूपाल), परिहरेउ = छोड़दिया।

भावार्थ – मैं अवध के राजा श्री दशरथ की वन्दना करता हूँ जिनका श्री राम के चरणो में सच्चा प्रेम था, जिन्होंने दीनो पर दया करने वाले श्री राम के बिछुड़ते ही अपने प्रिय शरीर को तिनके के समान त्याग दिया।

अलंकार – उपमा।

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥
प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

शब्दार्थ – परिजन = कुटुम्बी, बिदेहू = जनक, गोई = छिपाकर लुबुध = लुभाया हुआ (लुब्ध)।

भावार्थ – मैं परिवार सहित राजा जनक को प्रणाम करता हूँ जिनका श्री राम के चरणों पर गुप्त प्रेम था। उन प्रेम को उन्होंने योग और भोग में छिपा रखा था, परन्तु वह श्री राम को देखते ही प्रकट हो गया। सर्व प्रथम मैं श्री भरत के चरणों को प्रणाम करता हूँ जिनके नियम और व्रत का वर्णन नहीं किया जा सकता तथा जिनका मन श्रीराम के चरणों में भौरे की तरह लुब्ध हो रहा है और उनके पास से कभी हटना नहीं चाहता।

अलंकार :— रूपक, उपमा

बन्दउँ लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥
सेष सहस्त्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर। कृपा सिंधु सौमित्रि गुनाकर॥
रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महावीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥

शब्दार्थ :—जलजाता = कमल, सुभग = सुन्दर, पताका = ध्वजा, सहस्त्रसीस = हजार सिर वाले, सौमित्रि = लक्ष्मण, रिपुसूदन = शत्रुघ्न, नमामी = प्रणाम करता हू।

भावार्थ :—मैं श्री लक्ष्मण जी के उन चरण कमलो को प्रणाम करता हू जो शीतल, सुन्दर और भक्तो को सुख देने वाले हैं जिनका यश श्री रामचन्द्र जी की कीर्ति रुपी विमल ध्वजा मे दण्ड के समान है। जो हजार सिर वाले और जगत के कारण शेषनाग है जिन्होने पृथ्वी का भय दूर करने के लिये अवतार लिया, वे गुणो की खान, कृपा के समुद्र, सुमित्रा के पुत्र श्री लक्ष्मण जी मुझ पर प्रसन्न रहें।

अब मैं शत्रुघ्न जी के चरणो को प्रणाम करता हूँ जो बड़े वीर सुशील और भरत जी के अनुगामी हैं। तत्पश्चात् मैं महावीर श्री हनुमान जी को प्रणाम करता हूँ जिनके यश का वर्णन श्री रामचन्द्रजी ने अपने मुख से किया है।

अलंकार :—रूपक

दो० प्रनवउँ पवनकुमार, खल बन पावक ग्यानघन,
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर॥ १७॥

शब्दार्थ —पावक = अग्नि, आगार = भंडार

भावार्थ :—मैं पवन पुत्र श्री हनुमान जी को प्रणाम करता हूँ जो दुष्ट रूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि के समान हैं और ज्ञान के बादल हैं। जिनके हृदय रुपी भवन मे धनुष बाण धारण किये रामचन्द्र जी निवास करते हैं।

अलंकार :—रूपक

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा॥
बन्दउँ सब के चरन सुहाये। अधम सरीर राम जिन्ह पाए॥
रघुपति चरन उपासक जेते। खग मृग सुर, नर असुर समेते॥
बन्दउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥

शब्दार्थ :—कपिपति = वानर राज सुग्रीव, कीस = वानर, केरे = के।

भावार्थ – वानर राज सुग्रीव, रीछो के राजा जामवन्त निसाचर राजा विभीषण, और अंगद आदि वानर समूह की मैं वन्दना करता हूँ जिन्होंने अधम शरीर मे भी श्री राम को प्राप्त कर लिया। पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य और असुर आदि जितने भी श्री राम के चरणो के भक्त हैं, मैं उन सब के चरण कमलों की वन्दना करता हूं जो अकारण ही श्री राम के दास हैं।

सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर विग्यान बिसारद॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥
जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपा निरमल मति पावउँ॥
पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बन्दउँ सब लायक॥
राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुखदायक॥

शब्दार्थ :– सुक = शुकदेव, धरनि = पृथ्वी, सनकादि = सनक सानन्दन, सनत्कुमार और सनातन ब्रह्मा के चार मानस पुत्र, धरनि = पृथ्वी राजिव नयन = कमल नेत्र, भंजन = नष्ट करने वाले।

भावार्थ :—तुलसी दास जी कहते हैं कि मै शुक्देव, सनकादि, नारद मुनि तथा अन्य जितने भी भक्त और ज्ञानी श्रेष्ठ मुनि हैं, मै पृथ्वी पर सिर झुकाकर उन सब को प्रणाम करता हूँ। हे मुनिश्वरों! आप सब मुझे अपना दास जानकर मुझपर कृपा करो। राजा जनक की पुत्री और जगत् की माता करुणानिधान श्री राम की अतीव प्रिया हैं उन सीता जी के चरण कमलों को मैं मनाता हूँ जिनकी कृपा से मुझे निर्मल बुद्धि प्राप्त हो। इसके बाद मैं सर्व समर्थ श्री रामचन्द्र जी को मन, वाणी और कर्म से प्रणाम करता हूँ जो कमल

नेत्र, धनुष बाणधारी भक्तो की विपत्ति का विनाश करने वाले और उन्हे सुख देने वाले हैं।

अलंकार :– अनुप्रास और रूपक।

दो० गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न
बन्दउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥ १८

शब्दार्थ :– बीचि = लहर, खिन्न दुःखी।

भावार्थ :– जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहर के समान रहने वाले हैं, कहने मे ही भिन्न-भिन्न हैं, वैसे एक ही हैं। उन श्री राम के चरणो को मैं प्रणाम करता हूँ जिन्हे दीन दुःखी भी बहुत प्रिय हैं।

अलंकार :—दृष्टान्त, लाटानुप्रास।

बन्दउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु, भानु हिमकर को ॥
बिधि हरि हरमय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥
महामन्त्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गन राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ।
जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी ॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को ॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

शब्दार्थ —कृसानु = अग्नि, हिमकर = चन्द्रमा, अगुन = निर्गुण, हेतु = कारण, गनराऊ = गणेशजी, सहस = हजार, जेईं = भोजन करते बैठी, भूषन = गहने, कालकू = विष, अमी = अमृत। Mahavir

भावार्थ —कवि तुलसी दास जी कहते हैं कि मैं श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा का हेतु है। वह राम ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूप है, वेदो का प्राण, निर्गुण, उपमा रहित और गुणों का निधान है। जिस राम के नाम को शिव सदा जपते रहते हैं और जिनके उपदेश के प्रभाव से काशी मे मोक्ष होती है, जिसकी महिमा को गणेशजी भी जानते

हैं और वे इस राम नाम के प्रभाव से ही सर्व प्रथम पूजे जाते हैं। श्रीराम के नाम के प्रभाव को आदि कवि वाल्मीकि भी जानते हैं जो उल्टा नाम जपकर पवित्र हो गये। यह एक नाम सहस्त्र नामो के समान हैं शिवजी के मुख से यह सुनकर और इस नाम का जप कर के पार्वती शिवजीके साथ भोजन करने बैठी। शिवजी भी पार्वती जी के हृदय में नाम के प्रति ऐसा प्रेम देखकर प्रसन्न होगये, उन्होंने स्त्रियो की आभूषण स्वरुप पार्वती जी को आभूषण के रूप मे धारण कर लिया अर्थात् उन्होंने पार्वती जी को अपनी अर्धांगिनी बनालिया।

रामनाम के प्रभाव को शिवजी अच्छी तरह जानते है, क्योंकि इसी के प्रभाव से वे विष को भी अमृत के समान पी गये।

अलंकार :—अनुप्रास, उल्लेख

विशेष – गणेशजी की प्रथम पूजा की शिवपार्वती के एक साथ भोजन करने की समुद्र मथन और वाल्मीकि की अन्तर्कथा प्रश्नोत्तर भाग में देखिये।

दो० – बरसा रितु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
रामनाम बर बरन जुग, सावन भादव मास ॥१९॥

शब्दार्थ – सालि – धान, बरन – अक्षर, जुग – दो।

भावार्थ – श्रीरामचन्द्र की भक्ति वर्षा ऋतु है उनके उत्तम सेवक ही धान हैं, कवि तुलसी दास कहते हैं कि राम के नाम के दो सुन्दर अक्षर (रा और म) सावन और भादो के महिने हैं

अलंकार – साग रुपक, अनुप्रास

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥
नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिय कल करन बिभूषन। जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन॥
स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के॥

जन मन मंजु कंज मधुकर से । जीह जसोमति हरि हलधर से ।।

शब्दार्थ —आखर = अक्षर, बरन = वर्ण, विलोचन = नीला, जोऊ = जो, लाहु = लाभ, बिलगाती = भिन्न प्रतीत होती है, सघाती = साथी, कल = सुन्दर, करनविभूषन = कानों का गहना, पूषन = सूर्य, कमठ = कछुआ, कंज = कमल, जीह = जीभ, हलधर = बलराम ।

भावार्थ :—तुलसीदासजी कहते है कि रामनाम के दो अक्षर 'रा' और 'म' मधुर और मनोहर हैं । ये सब वर्णों के नेत्र हैं और भक्तो के जीवन है । ये स्मरण करने मे सबके लिये सुलभ हैं। सुख देने वाले है और जो इस लोक मे लाभ और परलोक मे निर्वाह करते हैं अर्थात् मोक्ष देने वाले हैं । ये कहने, सुनने और स्मरण करने मे अच्छे लगते हैं । तुलसीदास को ये अक्षर राम और लक्ष्मण के समान प्रिय है, इन वर्णो का वर्णन करने मे भिन्नता दीख पड़ती है, किन्तु ये जीव और ब्रह्म के समान स्वभाव से ही पास रहने वाले है, एक रस तथा एक रूप है ।

ये दोनो अक्षर नर और नारायण के समान सुन्दर भाई है, ये ससार का पालन करने वाले और विशेष रूप से भक्तो की रक्षा करने वाले हैं। ये भक्ति रूपिणी सुन्दरी के कर्णाभरण हैं और ससार की भलाई करने में ये सूर्य और चन्द्रमा के समान हैं। ये सुन्दर मुक्ति रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान हैं, कच्छप और शेषजी के समान पृथ्वी को धारण करने वाले है। ये भक्तो के मन रूपी सुन्दर कमल में विहार करने वाले भौंरे के समान हैं और जीभ रूपी यशोदाजी के लिये श्रीकृष्ण और बलराम के समान आनन्द देने वाले हैं।

अलंकार :—अनुप्रास, रूपक और उपमा

दो —एकु छत्रु एकु मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

भावार्थ :—कवि तुलसीदासजी कहते है कि इन अक्षरो मे एक 'र' छत्र के रूप मे और दूसरा मुकुटमणी के रूप मे सब अक्षरो के ऊपर विराजते हैं।

समुझत सरिस नाम अरु नामी । प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी । अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥
को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें । करतल गत न परहिं पहिचानें ॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें । आवत हृदय सनेह बिसेषें ॥
नाम रूप गति अकथ कहानी । समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ॥

शब्दार्थ —दुइ = दो, प्रभु = स्वामी, अनुगामी = सेवक, उपाधी = उपाधि, सुसामुझि साधी = शुद्ध भक्ति से युक्त बुद्धि से ही इनका स्वरूप समझ मे आता है,

भावार्थ —कवि कहता है कि समझने मे तो नाम और नामी एक से ही है, परन्तु दोनो मे परस्पर स्वामी और सेवक का सम्बन्ध है, अर्थात् जैसे सेवक स्वामी के पीछे चलता है वैसे ही नाम के पीछे नामी चलता है। राम स्वय अपने नाम का (राम का) अनुकरण करते हैं, नाम लेने ही वे उपस्थित हो जाते हैं। नाम और रूप ये ईश्वर की दो उपाधि है, ये दोनो अकथ और अनादि हैं तथा सुन्दर बुद्धि से ही इनका दिव्य रूप समझ मे आता है। नाम और रूप मे कौन बड़ा है और कौन छोटा है, यह कहना अपराध है अत गुण भेद के अनुसार साधुजन स्वय इसे समझ लेंगे। रूप नाम के अधीन देखा जाता है, नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं होता। बिना नाम को जाने रूप की विशेषता कोई मूल्य नहीं रखती, बिना नाम का परिचय हुये कोई भी वस्तु नहीं पहचानी जा सकती। किन्तु रूप को बिना देखे भी नाम का स्मरण करने से विशेष प्रेम के साथ वह रूप हृदय मे आजाता है।

इस प्रकार नाम और रूप की गति की कहानी अकथनीय है। वह समझने मे सुखदायक है, परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ईश्वर के दोनों रूपों—निर्गुण और सगुण के बीच मे नाम सुन्दर साक्षी है और नाम ही दोनो का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है।

विशेष—(i) प्रस्तुत पक्तियो मे तुलसीदास जी ने नाम और रूप दोनो का महत्व स्वीकार करके रूप को नाम के अधीन बताया है।

(ii) अनुप्रास अलकार।

मूल—राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥२१॥

भावार्थ —तुलसीदास जी कहते हैं अगर तू भीतर और बाहर उजाला चाहता है तो रामनाम रूपी मणी-दीपक को (शरीर रूपी घर के मुख रूपी) द्वारा की जीभ देहली पर धर (जैसे मणी का प्रकाश रहता है वैसे ही राम-नाम जपने से निर्गुण ब्रह्म के दर्शन होगें और बाहर सगुण रूप के चारित्र दीखेगे।

विशेष —रूपक अलकार

नाम जीहं जपि जागहिं जोगि। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥

भावार्थ —इस नाम को जीभ से जपते हुए योगी (तत्वज्ञान रूपी दिन मे) जागते है और वैराग्य के द्वारा ब्रह्मा के बन ये हुये इस संसारी-जजाल से अपने को पृथक् रखते हैं और अनुपम ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं, जो नाम और रूप से रहित, अनिर्वचनीय और अनामय है।

विशेष :—असगति एव अनुप्रास अलकार।

जाना चहहिं गूढ गति जेऊ। नाम जीहं जपि जानहि तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएं। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएं॥

शब्दार्थ —लय लाएं=लौ लगाकर। अनिमादिक=अणिमा आदि आठो सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

भावार्थ —जो (जिज्ञासु) परमात्मा के गूढ तत्व को जानना चाहते हैं वे जीभ से नाम जपकर उसे जान लेते हैं। जो साधक (अर्थात् सिद्धियों की कामना वाले) लौ लगाकर नाम जपते हैं वे अणिमा आदि सिद्धियाँ पाकर सिद्ध हो जाते है।

जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥

शब्दार्थ :—आरत = आर्त, दुःखी। सुकृती = पुण्यात्मा। अनघ = पाप-रहित।

भावार्थ :—जो आर्त (दुखी) जन नाम जपते हैं उनके बड़े-बड़े भारी संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। संसार में श्रीरामजी के भक्त चार प्रकार के हैं (अर्थात् ज्ञानी, जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्त) और चारों ही पुण्यात्मा, पापरहित और उदार हैं।

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

शब्दार्थ :—बिसेषि = विशेष रूप से। जुग = युग, काल। श्रुति = वेद

भावार्थ :—इन चारों ही चतुर भक्तों को राम नाम का आधार है, पर प्रभु को इनमें ज्ञानी भक्त ही विशेष रूप से प्रिय हैं। यों तो चारों ही युगों और चारों ही वेदों में नाम का प्रभाव है, पर कलियुग में विशेषकर नाम को छोड़ कर अन्य उपाय नहीं है।

मूल—सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिन्हहुँ किए मन मीन॥२२॥

शब्दार्थ—पियूष = अमृत। ह्रद = सरोवर।

भावार्थ :—जो लोग सब प्रकार की कामनाओं से रहित हैं और राम की भक्ति के रस में डूबे हुए हैं, उन्होंने भी नाम के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है अर्थात् वे नाम रूपी सुधा का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं।

विशेष—परम्परित रूपक अलंकार।

मूल—अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥

एकु दारुगत देखिअ एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें । कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें ॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी । सत चेतन घन आनँद रासी ॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
नाम निरूपन नाम जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥४॥

शब्दार्थ—जुग = दोनो को । बूतें = बल । प्रौढ़ि = धृष्टता, साहस । दारुगत = काठ के भीतर । अछत = रहते हुए ।

भावार्थ—ब्रह्म के दो स्वरुप हैं—निर्गुण और सगुण । ये दोनो ही अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं किन्तु तुलसीदासजी कहते है कि मेरी सम्मति मे नाम इन दोनो मे बडा है जिसने अपने बल से दोनो को अपने वश मे कर रखा है ।

जो सज्जन है, वे इस बात को मुझ दास की धृष्टता न समझे । मैं अपने मन के विश्वास, प्रेम और रुचि की बात कहता हूँ । दोनो ही प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है-निर्गुण ब्रह्म उस अग्नि के समान है जो काठ के भीतर है और दिखाई नही देती, और सगुण ब्रह्म उस प्रकट अग्नि के समान है जो प्रत्यक्ष दीखती है । (इसी तरह दोनो ब्रह्म तत्वत एक ही हैं) । दोनों ही जानने मे अगम हैं, किन्तु नाम से दोनों ही सुगम हो जाते हैं । इसीलिए मैंने नाम को ब्रह्म (निर्गुण) और राम (सगुण) दोनो से बड़ा कहा है । ब्रह्म एक है, सर्वव्यापक है, अविनाशी है, सच्चिदानन्द है । ऐसे विकार-रहित प्रभु के हृदय मे रहते हुए भी संसार के सब जीव दीन और दुखी हैं नाम का निरूपण करने पर और यत्न करने से उसका वास्तविक रूप वैसे ही प्रकट हो जाता है जैसे रत्न के जानने से उसका मूल्य ।

विशेष—लाटानुप्रास, वृत्यानुप्रास, उपमा, उल्लेख, उदाहरण अलंकार ।

मूल—निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम तें, निज बिचार अनुसार । २३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस प्रकार निर्गुण से नाम का प्रभाव बड़ा है और मेरे विचारो के अनुसार नाम सगुण राम से भी बड़ा है । (आगे की पंक्तियों मे कारणों का उल्लेख किया गया है) ।

मूल—राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥
सहित दोष दुखदास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥
भंजेउ राम आप भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥
दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनन्दन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥

दोहा—सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ॥

शब्दार्थ— अनयासा = सहज ही में, बिना प्रयास के ही। बासा = घर। तापस तिय = अहल्या–गौतम ऋषि की पत्नी जो शाप से पत्थर की शिला हो गई थी और जिसने राम के चरण–स्पर्श से पुनः पूर्व रूप प्राप्त कर लिया था। ऋषि (यहाँ विश्वामित्र से तात्पर्य है)। सुकेतु सुता = सुकेतु यक्ष की पुत्री ताड़का जो अपने पुत्र सुबाहु सहित राम से मारी गई। बिबाकी = समाप्त। भव चापू = शिव-धनुष। निकर = समूह। कलुष = पाप। निकंदन = नाश करना। सबरी = शबरी एक भीलनी जो राम भक्त थी, राम ने जिसके जूठे बेर खाये थे। गीध = जटायु एक पक्षी (गिद्ध) जिसने सीता को हर कर ले जाते हुए रावण से सीता को छुड़ाने के लिए युद्ध किया था। सुगति = मुक्ति। उधारे = उद्धार किया। गाथ = कथा। बिदित = प्रसिद्ध।

भावार्थ— श्री राम ने भक्तों के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण किया एवं स्वयं अनेक कष्ट सहकर साधुओं को सुखी बनाया, किन्तु भक्तगण प्रेम के साथ नाम का जप करते हुए सहज ही में आनन्द और मंगल के घर बन जाते हैं।

श्री राम ने तो एक तपस्वी की स्त्री (गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या) को ही तारा, परन्तु नाम ने करोड़ों दुष्टों की बिगड़ी बुद्धि को सुधार दिया। श्री राम ने विश्वामित्र ऋषि के हित के लिए एक राक्षसी ताड़का को उसकी सेना और उसके पुत्र सुबाहु के सहित समाप्त किया, परन्तु नाम अपने भक्तों

के दोष, दु ख और दुराशाओ को इस तरह नष्ट कर देता है जिस तरह सूर्य रात्री को। श्रीराम ने तो स्वय केवल शिवजी के धनुष को ही तोडा, परन्तु उनके नाम का प्रताप ससार के सब प्रकार के भयो का नाश करने वाला है।

श्री राम ने तो केवल भयानक दण्डक बन को ही सुहावना बनाया, परन्तु नाम ने असख्य मनुष्यो के मनो को पवित्र कर दिया। श्री राम ने राक्षसो के समूह को मारा, परन्तु उनका नाम तो कलियुग के सारे पापो की जड उखाडने वाला है।

श्री राम ने तो शबरी, जटायु आदि अच्छे सेवको को ही मुक्ति दी, परन्तु नाम ने अगणित दुष्टो का उद्धार किया। नाम के गुणो की गाथा वेदो मे भी प्रकट है।

विशेष—अनुप्रास, सहोक्ति, उदाहरण आदि अलकार।

मूल—राम सुकठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥
राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नामु लेत भव सिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥
राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥

शब्दार्थ —सुकठ=सुग्रीव। नेवाजे=कृपा की। बिरिद=यश। कटुक=सेना। बटोरा=एकत्र की।

भावार्थ —इस बात को सब कोई जानते हैं कि राम ने सुग्रीव और विभीषण, दो को ही अपनी शरण में रखा, परन्तु नाम ने अनेक गरीबो पर कृपा की है। नाम का सुन्दर यश लोक और वेद मे विशेष रूप से प्रकाशित है।

श्री राम ने तो भालू और बन्दरो की सेना इकट्ठी की और समुद्र पर पुल बाँधने के लिए थोडा श्रम नही किया और अर्थात् उन्हे बहुत श्रम करना पडा। परन्तु नाम की यह विशेषता है कि नाम लेते ही ससार रूपी समुद्र सूख

जाता है अर्थात् उनका नाम संसार रूपी समुद्र से पार कर देता है। हे सज्जनो! मन में विचार कीजिए कि दोनों में कौन बड़ा है।

श्री राम ने कुटुम्ब सहित रावण को मारा, तदनन्तर सीता सहित उन्होंने अपने नगर अयोध्या में प्रवेश किया। राम राजा हुए, अयोध्या उनकी राजधानी बनी, देवता और मुनि सुन्दर वाणी से उनके गुण गाते हैं।

किन्तु जो राम के दास हैं, वे प्रेम पूर्वक नाम के स्मरण मात्र से बिना परिश्रम मोह की प्रबल सेना को जीत कर प्रेम में मग्न हुए अपने ही सुख में विचरते हैं। नाम के प्रसाद से उन्हें स्वप्न में भी चिन्ता नहीं सताती।

विशेष --पद-मैत्री और रूपक अलंकार।

मूल--ब्रह्म राम तें नामु बड़, बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि ॥२५॥

भावार्थ—ब्रह्म (निर्गुण) और राम (सगुण) दोनों से नाम बड़ा है। यह नाम (ब्रह्मा आदि) वर देने वालों को भी वर देने वाला है। इस 'राम-नाम' को शत कोटि रामायणों का सार जानकर महादेवजी ने ग्रहण किया है।

विशेष--'वर' शब्द की इसी अर्थ में आवृत्ति होने से लाटानुप्रास अलंकार।

मूल :-नाम प्रसाद संभु अविनासी। साजु अमंगल मंगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥
नारद जानेउ नाम प्रतापू। जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

दोहा- नामु राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदासु॥ २६॥

शब्दार्थ—साजु=वेश-भूषा। प्रसादु=कृपा। सगलानि=ग्लानि के

साथ । ठाऊँ = स्थान । अपतु = प्रतिष्ठाहीन, नीच । मुकुत = मुक्त । भाँग ते = भाग के समान निकृष्ट ।

भावार्थ :—तुलसीदासजी कहते है कि नाम की ही कृपा से शिवजी अविनाशी है व अमगल वेश-भूषा धारण किये रहने पर भी वे मगल की राशी के हैं । शुकदेवजी सनक सनन्दन आदि, सिद्ध लोग, मुनि और योगी गण सब नाम के प्रसाद (प्रभाव) से ही ब्रह्मानन्द को भोगते है ।

नारदजी ने नाम के प्रताप को जाना है सारे जगत को विष्णु, प्रिय है, विष्णुजी को शिवजी प्रिय हैं और आप दोनो को प्रिय है केवल नाम के जपने से ही भगवान ने ऐसी कृपा की जिससे प्रह्लादजी भक्ति शिरोमणी हो गये ।

ध्रुवजी ने (अपनी विमाता के वचनो से दुखी हो कर) अरुची मे भगवान का नाम जपा और उसी के प्रताप से अचल अनुपम स्थान (ध्रुवलोक) प्राप्त किया इसी तरह हनुमान जी ने पावन नाम का स्मरण कर श्री राम जी को वश मे कर रखा है ।

नीच अजामिल, गज और गणिका (वेश्या) आदि भी हरि के नाम के प्रभाव से मुक्त हो गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं कहा तक नाम की तारीफ (बडाई) करूँ, स्वय राम भी नाम के गुणो को नही गा सकते ।

राम का नाम कलियुग मे कल्प वृक्ष के समान समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाला है कल्याण का घर है । कल्याण का एक साधन है जिसके स्मरण करने म भाँग सा (निकृष्ट) तुलसी दास भी तुलसी के समान पवित्र हो गया ।

विशेष :—अनुप्रास, लाटानुप्रास और रूपक अलकार

टिप्पणियां :—(i) ध्रुव—राजा उत्तानपाद का लडका, एक बाल तपस्वी जो विष्णु के वरदान से उत्तर दिशा मे अचल तारे के रूप मे मेरु के ऊपर प्रतिष्ठित है ।

(ii) अजामिल :—एक महापापी जो मरते समय अपने लडके 'नारायण'' का नाम लेने से ही सदगति पा गया ।

(iii) गज :—इन्द्र द्युम्न नाम का राजा जो अगस्त्य के शाप मे हाथी होकर ग्रह-ग्रस्त होने पर भगवान को स्मरण कर शाप मुक्त हो गया ।

(iv) गणिका :—एक वेश्या जो अपने तोते से राम राम बुलाया करती थी जिससे भगवान ने उन पर अनुग्रह कर उसका उद्धार कर दिया।

(v) प्रहलाद :—प्रहलाद राजा हिरण्यकशिपु का लड़का था वह विष्णु का परम भक्त था विष्णु भगवान ने नृसिंह रूप मे अवतार लेकर हिरण्यकशिपु का नाश किया और भक्त प्रहलाद की रक्षा की।

मूल—चहुँजुग तीनि काल तिहुँ लोका। भए नाम जपि जीव बिसोका ॥
वेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥
ध्यानु प्रथम जुग मख बिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥

शब्दार्थ —मख = यज्ञ। परितोषत = प्रसन्न होते हैं। मीना = मछली। समन = नाश करना। अभिमत = मनोवांछित फल। सुमति = बुद्धिमान।

केवल कलियुग मे ही नहीं चारो युगों, तीनो कालो और तीनो लोकों में नाम को जप कर शोकरहित हुए हैं। यही मत वेद पुराण और संतो का है, श्री राम से प्रेम होना सब पुण्यों का फल है।

पहले अर्थात् सतयुग मे ध्यान से दूसरे अर्थात् त्रेतायुग मे यज्ञ से और द्वापर मे पूजन से भगवान प्रसन्न होते थे, परन्तु कलयुग मे जो केवल पाप की जड़ और मलिन है, मनुष्य का मन पापी रूपी समुन्द्र मे मछली बना हुआ है जो कभी पाप से मुक्त नहीं होता।

ऐसे भयंकर कलिकाल मे तो भगवान् का नाम ही कल्पवृक्ष है जो स्मरण करते ही संसार के सब जंजालों को नाश कर देने वाला है। कलियुग मे यह रामनाम मनोवांछित फल देने वाला है, परलोक मे परम हितकारी और इस लोक में माता-पिता के समान पालन और रक्षण करने वाला है।

कलियुग मे न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है, केवल राम-

नाम ही एक आधार है। कपट की खान कलिरूपी कालनेमि (राक्षस) को मारने के लिए केवल राम-नाम रूपी हनुमान ही चतुर और समर्थ हैं (कलि का प्रभाव केवल राम-नाम से ही नष्ट हो सकता है)।

विशेष —अनुप्रास और रुपक

मूल— राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल ॥ २७ ॥

शब्दार्थ —नरकेसरी = नृसिंह। कनककसिपु = हिरण्यक शिपु। सुरसाल = देवताओ का शत्रु।

भावार्थ —राम का नाम नृसिंह रूप है और कलियुग हिरण्यकशिपु है और नाम का जप करने वाले जन प्रहलाद के समान है, यह राम नाम देवताओ के शत्रु कलि रुपी दैत्य को मार कर भक्त जन की रक्षा करेगा।

विशेष —रुपक से पुष्ट उदाहरण अलकार (जैसे नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को मार कर प्रहलाद की रक्षा की, वैसे ही नाम कलिरूपी शत्रु का नाश कर भक्त जन की रक्षा करता है)।

मूल – भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ नाम जपत मगल दिसि दसहूँ ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा। करउँ नाइ रघुनाथहि माथा ॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥
लोकहुँ बेद सुसाहिब रीती। बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पडित मूढ मलीन उजागर ॥

शब्दार्थ ,—भायँ = भाव, प्रेम। अनख = क्रोध। अघाती = तृप्त होती। पोसो = पालन करो। । गनी = अमीर।

भावार्थ —जिस राम के नाम को प्रेम (भक्ति) से या बुरे भाव से क्रोध से या आलस्य से जपते ही दशो दिशाओ में मनुष्य का कल्याण होता है, उसी राम-नाम का स्मरण करके और श्री रघुनाथ जी को प्रणाम कर मैं उनके गुणो का वर्णन करता हूँ।

वे भगवान मेरी बिगडी सब तरह से सुधार लेंगे, क्योकि उनकी

कृपा, कृपा करने में कभी सन्तुष्ट नहीं होते। श्री राम से उत्तम स्वामी और मेरे जैसा बुरा सेवक। (दोनों में बहुत अन्तर है) पर हे दयानिधान! अपनी ओर देख कर मेरा पालन कीजिए।

लोक और वेद में भी अच्छे स्वामी की यही रीति प्रसिद्ध है कि वह विनय सुनते ही प्रेम को पहचान लेता है। धनी-निर्धन, ग्राम वासी-नगर निवासी, रहित मूर्ख, मलिन और यशस्वी।

मूल – सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी॥
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला॥
सुनि सनमानहिं सबहि सुबानी। भनिति भगति नति गति पहिचानी॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसलराऊ॥
रीझत राम सनेह निसोतें। को जग मंद मलिनमति मोतें॥

शब्दार्थ —भव = उत्पन्न। भनिति = कथन, वाणी। नति = विनय प्राकृत = साधारण। निसोते = सच्चे, विशुद्ध।

साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥ २८ ॥(ख)

शब्दार्थ —उपल = पत्थर । जल जान = जलयान, जहाज । सचिव = मन्त्री । सुमति = बुद्धिमान । उपहास = निन्दा ।

भावार्थ —(लेकिन मुझे विश्वास है कि) वे दयालु श्री राम मुझ दुष्ट सेवक की प्रीति और रुचि को अवश्य रखेंगे, जिन्होंने पत्थरों को जहाज और बन्दर-भालुओं को बुद्धिमान मन्त्री बना लिया ।

मुझे सब लोग श्रीराम जी का सेवक कहते हैं और मैं कहलाता भी हूँ । श्री सीतानाथजी से स्वामी और तुलसीदास जैसा सेवक ! कितना अन्तर है, पर इस उपहास को कृपालु श्री राम सहते हैं ।

मूल — अति बड़ि मोरि ढिठाई खोरी । सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपनें । सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपनें ॥
सुनि अवलोकि सुचित चख चाही । भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ होइ हियँ नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ॥
रहति न प्रभु चित चूक किए की । करत सुरति सय बार हिए की ॥
जेहिं अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली । फिरि सुकंठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी । सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ।
ते भरतहि भेंटत सनमाने । राजसभाँ रघुबीर बखाने ॥

शब्दार्थ —खोरी = दोष । चख = चक्षु । नसाइ = बुरी । सय = सौ । सुकंठ = सुग्रीव । हेरि = देखा ।

भावार्थ —तुलसीदासजी कहते है कि यह मेरी बड़ी भारी धृष्टता और दोष हैं कि मैं अपने को राम का सेवक कहता हूँ, किन्तु मेरे पाप ऐसे हैं कि जिन्हें सुन कर नरक भी नाक सिकोड़ लेता हैं (अर्थात् मुझे नरक मे भी ठौर नही) । यह बात समझकर मैं स्वयं अपने ही इस कल्पित डर से डर रहा हूँ, किन्तु दयालु राम ने तो स्वप्न मे भी इस पर ध्यान नही दिया ।

यह सुन और देख कर जब प्रभु ने अपने विमल हृदय मे दिव्य दृष्टि से देखा तब उन्होंने मेरी भक्ति व बुद्धि की तारीफ की । कहने मे वह चाहे बुरी हो, परन्तु हृदय मे अच्छापन होना चाहिये क्योकि राम तो अपने भक्तो के हृदय की भक्ति को देख कर रीझते है ।

प्रभु के चित्त मे (उपने भक्तों से हुयी) चूक याद नही रहती पर भक्तों के सुहृदय (अच्छाई) को वे सैकड़ों वार याद करते है। जिस पाप के कारण श्रीराम ने वाली को व्याघ के समान (छिपकर) मारा था, वही कुचाल (पाप) सुग्रीव ने भी चली।

यही करतूत विभीषण ने की, पर श्रीराम न स्वप्न में भी उसका मन मे विचार नही किया। उलटे भरत जी से मिलते समय श्री रघुनाथजी ने उनका सम्मान किया और राजसभा मे भी उनके गुणो का वखान किया।

विशेष —अनुप्रास अलकार।

मूल— प्रभु तरु तर कपि डार पर, ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिब सीलनिधान॥ २९॥ (क)
राम निकाई रावरी, है सब ही को नीक।
जौं यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक॥ २९॥ (ख)
एहि विधि निज गुन दोष कहि, सबहि बहुरी सिरु नाइ।
बरनउँ रघुवर विसद जसु सुनि कलि कलुष नसाइ॥ २९॥ (ग)

शब्दार्थ —निकाई =अच्छाई, भलाई। रावरी =आपकी। कलुष = पाप।

भावार्थ —राम तो पेड के नीचे और वन्दर डालियो पर, उन वन्दरो को भी राम ने (ऊँच-नीच का विचार छोड) अपने समान बना लिया। तुलसीदास जी कहते हैं कि राम के समान सुन्दर स्वभाव वाला स्वामी कहीं भी नही है।

हे राम! आपकी अच्छाई सवका भला करने वाली है। यदि यह वात सत्य है तो तुलसीदास का भी अवश्यमेव भला होगा।

इस प्रकार अपने गुण-दोषो को कह कर और सवको पुन सिर झुका कर मैं श्रीराम का निर्मल यश वर्णन करता हूँ, जिसको सुनकर कलयुग के पाप नष्ट हो जाते है।

विशेष —अनुप्रास अलंकार।

मूल—जागवलिक जो कथा सुहाई । भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई ।।
कहिहउँ सोई संवाद बखानी । सुनहुँ सकल सज्जन सुखु मानी ।।
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ।।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा । राम भगत अधिकारी चीन्हा ।।
तेहि सन जागवलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ।।
ते श्रोता बकता समसीला । समदरसी जानहिं हरिलीला ।।
जानहिं तीनि काल निज ग्याना । करतल गत आमलक समाना ।।
औरउ जे हरि भगत सुजाना । कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना ।।

शब्दार्थ —जागवलिक = याज्ञवल्क्य ऋषि । उमहि = पार्वती को । चिन्हा = पहचान कर । समसीला = समानशील या बुद्धि वाले । आमलक = आँवला ।

भावार्थ —याज्ञवल्क्यजी ने जो सुहावनी कथा मुनिश्रेष्ठ भारद्वाजजी को सुनायी थी, उसी संवाद को मैं विस्तार-पूर्वक कहूँगा, सभी सज्जन सुख का अनुभव करते हुए उसे सुने ।

यह सुन्दर चरित्र महादेवजी ने बनाया और फिर कृपा करके पार्वतीजी को सुनाया । वही चरित्र शिवजी ने काकभुशुण्डिजी को रामभक्त और अधिकारी पहिचान कर दिया ।

उन (काकभुशुण्जी) से फिर याज्ञवल्क्य मुनि ने पाया और फिर उन्होंने भरद्वाजजी का गाकर सुनाया । वे दोनों श्रोता और वक्ता समान शीलवाले, समदर्शी तथा भगवान् की लीलाओं के ज्ञाता हैं ।

वे अपने ज्ञान से तीनों कालों को हथेली पर रक्खे हुए आँवले के समान (प्रत्यक्ष) जानते हैं । और भी जो सुजान हरिभक्त हैं वे इस चरित्र को भाँति भाँति से कहते, सुनते और समझते हैं ।

विशेष—'सुनहुँ सकल सज्जन सुखमानी' में वृत्यानुप्रास अलकार ।

मूल—मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ।।३०।। (क)
श्रोता बकता ग्याननिधि, कथा राम कै गूढ ।
किमि समुझौं मैं जीव जड, कलि मल ग्रसित बिमूढ ।।३०।। (ख)

शब्दार्थ—गुर = गुरु । सन = से । गूढ = रहस्य से भरी । विमूढ = महामूर्ख ।

भावार्थ—फिर वही कथा मैंने अपने गुरु से सूकर खेत में सुनी, परन्तु बालकपन के कारण मैं उसे अच्छी तरह न समझ सका। फिर, समझ में आती भी तो कैसे? क्योंकि राम की कथा गूढ़ है, वह तभी सभी समझ में आ सकती है जब वक्ता और श्रोता दोनों ही ज्ञान के समुद्र हों अर्थात पूर्ण ज्ञानी हों। मैं भला कलयुग के पापों से सना हुआ, महामूढ़, जड़ जीव भला उसको कैसे समझ सकता है।

मूल—तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परि कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहि होई॥
जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करउँ कथा भव सरिता तरनी॥
बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। राम कथा कलि कलुष बिभंजनि॥
राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहुँ अरनी॥

शब्दार्थ—तरनी = नौका। रंजनि = प्रसन्न करने वाली। पन्नग = साँप। भरनी = मोरनी, छछूंदर, एक पक्षी, साँप उतारने का एक मंत्र। अरनी = एक प्रकार की लकड़ी। बुध = बुद्धिमान।

भावार्थ—तो भी गुरुजी ने जब बार-बार मुझे कथा कही, तब बुद्धि के अनुसार मेरी समझ में कुछ-कुछ आई। मैं अब उसी कथा को भाषा में रचना करूँगा, जिससे मेरे मन में ज्ञान का उदय हो (अथवा जिससे मुझे सन्तोष हो)।

जितनी मेरी बुद्धि है और जितना मुझमें विवेक-बल है, मैं हृदय में हरि की प्रेरणा से उसी के अनुसार कहूँगा। मैं जिस कथा की रचना करता हूँ, वह मेरे संदेह, अज्ञान और भ्रम को हरने वाली है तथा जो संसार रूपी नदी को पार करने के लिये नौका है।

राम-कथा बुद्धिमानों को विश्राम देने वाली और सब मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली है, वह कलयुग के पापों का नाश करने वाली है। राम-कथा कलयुग रूपी साँप के लिए भरणी (मोरनी या एक पक्षी) है और विवेक रूपी अग्नि का प्रकट करने के लिए वह अरणी है।

विशेष—(i) अनुप्रास और रूपक अलंकार।

(ii) भरनी एक प्रकार का पक्षी है। वह अपने पंखों को

सिकोड़ कर गोलमोल हो साप के सामने लेट जाता है। साप जब उसे निगल जाता है, तब वह पेट में अपने पख फैला कर उसे चीर डालता है, जिससे साँप मर जाता है।

(iii) अरणी एक प्रकार की लकड़ी या काठ का एक यंत्र जिससे प्राचीन काल में यज्ञ के लिए अग्नि उत्पन्न की जाती थी।

मूल—रामकथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई॥

सोइ बसुधातल सुधा तरंगिनि। भय भंजनि भ्रम भेक भुअंगिनी॥
असुर सेन सम नरक निकंदिनी। साधु विबुध कुल हित गिरिनंदिनी॥
संत समाज पयोधि रमा सी। बिस्व भार भर अचल छमा सी॥
जम गन मुँह मसि जग जमुना सी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी॥
सिव प्रिय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुवर भगति प्रेम परमिति सी॥

दोहा—राम-कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु॥
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु॥३१॥

शब्दार्थ—कामद गाई = कामधेनु गौ। मूरि = जड़ी। सुहाई = सुन्दर। तरंगिनि = नदी। भेक = मेढक। भुअंगिनि = सर्पिणी। विबुध = देवता। गिरि-नंदिनि = पार्वती। पयोधि = क्षीर-सागर। रमा = लक्ष्मी। छमा = पृथ्वी। पावनि = पवित्र। हुलसी = तुलसीदासजी की माता। मेकल-सैल-सुता = नर्मदा नदी। अदिति = देवताओं की माता। परमिति = सीमा। सुभग = सुन्दर।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि राम-कथा कलियुग में कामधेनु गौ के समान सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली है और सज्जनों के लिए वह सुन्दर सजीवनी जड़ी है। पृथ्वी पर यही अमृत की नदी है, यह सब प्रकार के भय का नाश करने वाली और भ्रम रूपी मेढक को भक्षण करने के लिए सर्पिणी है।

यह असुरों की सेना के समान नरक का नाश करनेवाली, साधु रूपी। देवताओं के कुल का हित करने वाली पार्वती है, संत-समाज रूपी क्षीर-सागर के लिए यह लक्ष्मी है और सम्पूर्ण विश्व का भार उठाने में यह अचल पृथ्वी के समान है।

यमदूतो के समूह के मुख पर कालिख लगाने के लिए (यमदूतों का मुख काला करने के लिए) यह ससार मे यमुना के समान है और जग-जीवों को मुक्ति प्रदान करने के लिए यह काशी के समान है। यह श्रीराम जी को पवित्र तुलसी के समान प्रिय है और तुलसीदास को हुलसी की तरह उनका हृदय से हित करने वाली है।

यह राम-कथा शिवजी को नर्मदा के समान प्रिय है, यह सब सिद्धियों को देने वाली तथा सम्पूर्ण-सम्पत्ति की राशि है। सद्गुण रूपी देवताओं को उत्पन्न करने वाली अदिति है, यह राम की भक्ति और प्रेम की परम सीमा-सी है।

तुलसीदासजी कहते हैं कि राम-कथा मदाकिनी नदी है, सुन्दर, निर्मल चित्त, चित्रकूट है और सुन्दर स्नेह वन है जहा सीता और राम विहार करते हैं।

विशेष—उपमा और रूपक अलकार। राम-कथा का अनेक रूपों मे उल्लेख करने के कारण उल्लेख अलकार। सुन्दर पद-मैत्री।

मूल—राम चरित चिंतामनि चारू। सत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
सदगुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल व्रत धरम नेम के॥
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के। कुंभज लोभ उदधि अपार के॥
काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन बन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥

शब्दार्थ—जग-मगल = संसार का कल्याण करने वाले। गुण-ग्राम = गुण-समूह। दानि = देने वाले। बिबुध बैद = देवताओं के वैद्य (अश्वनी कुमार)। कुभज = अगस्त्य मुनि। कोह = क्रोध। करिगन = हाथियों का समूह। सावक = शावक, बच्चे। पुरारि = शिवजी। कामद = कामना पूर्ण करने वाले। दवारि = दावानल, वन मे अपने-आप लग जाने वाली आग।

भावार्थ—यह रामचरित्र सुन्दर चिन्तामणि रत्न है और सतो की सुन्दर मति रूपी कामिनी का सुन्दर शृगार है। श्रीराम के गुणो के समूह जगत् का

कल्याण करने वाले और मुक्ति, धन, धर्म और परमधाम के देने वाले है। ये ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए सदगुरु हैं और ससार रूपी भयकर रोग नाश करने के लिए देवताओ के वैद्य अश्वनीकुमार के समान हैं, ये सीता-राम के प्रेम के (भक्ति के) उत्पन्न करने वाले मात-पिता हैं और सम्पूर्ण व्रत, धर्म और नियमो के बीज हैं।

ये पाप, सन्ताप और शोक का नाश करने वाले तथा इस लोक और परलोक के प्रिय पालक हैं। ये विचार रूपी राजा के शूरवीर मन्त्री है तथा लोभ रूपी समुद्र को सोखने के लिए ये अगस्त्य मुनि हैं।

भक्तो के मन रूपी वन मे विचरने वाले काम, क्रोध आदि कलियुग के पाप रूपी हाथियो को मारने के लिए ये (राम के गुण) सिंह के बच्चे हैं। ये महादेवजी के परम पूज्य और प्रियतम अतिथि है और दरिद्रता रूपी दावानल को बुझाने के लिए ये कामना पूर्ण करने वाले मेघ है।

विशेष--अनुप्रास, लाटानुप्रास (परलोक लोक में) रूपक और उल्लेख।

मूल--मन्त्र महामनि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालि पाल जलधर से ॥
अभिमत दानि देवतरु बर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ॥
सुकबि सरद नभ मन उडगन से। रामभगत जन जीवन धन से ॥
सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जग हित निरुपधि साधु लोग से ॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से ॥

शब्दार्थ--व्याल = सर्प। कुअंक = बुरी रेखा। दिनकर कर = सूर्य की किरण। सालि = धान। अभिमत = मनोवाछित। देवतरु = कल्पवृक्ष। उडगन = तारे। भूरि = महान्। निरुपधि = छल रहित। मानस = मान-सरोवर। मराल = हस। तरग = लहर। वर = श्रेष्ठ।

भावार्थ--ये (राम के गुण) विषय रूपी सर्प का विष उतारने के लिए मन्त्र और महामणि हैं, ये भाग्य-के बुरे लेखो को मिटा देने वाले हैं, ये अज्ञान रूपी अधकार को हरने के लिए सूर्य की किरणो के समान हैं और सेवक रूपी धान के पालन करने के लिए ये मेघ के समान हैं। मनोवाछित फल देने के लिए ये श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान हैं और सेवा करने पर ये भगवान् विष्णु और महादेव की तरह सुलभ और सुखद हैं। सुकवि रूपी शरद् ऋतु के मन

रूपी आकाश को सुशोभित करने के लिए ये तारागण के समान हैं और राम-भक्तो के लिए तो ये जीवन-धन ही हैं। ये महान् भोगो के समान सम्पूर्ण पुण्यो के फल हैं ये ससार का निष्कपट (यथार्थ) हित करने मे साधु-संतो के समान हैं, सेवको के मन रूपी मानसरोवर के लिए ये हस के समान हैं और पवित्र करने के लिए ये गगा की तरगो की माला के तुल्य हैं।

विशेष—अनुप्रास, उपमा, रूपक और उल्लेख अलकार। 'दिनकर कर' मे यमक।

मूल—कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड ॥३२॥ (क)
रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥३२॥ (ख)

शब्दार्थ—अनल = अग्नि। राकेस कर = चन्द्रमा की किरणें। सरिस = समान। लाहु = लाभ। राकेस = पूर्णिमा का चन्द्रमा।

भावार्थ—श्रीराम के गुणो के समूह कलियुग के समस्त कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कपट, अभिमान एवम् आडम्बर को जला डालने के लिए वैसे ही हैं जैसे ईंधन के लिए प्रचण्ड अग्नि (अर्थात् जैसे प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला मे सब कुछ जलकर राख हो जाता है उसी प्रकार श्रीरामचरित्र के कहने-सुनने से हृदय की समस्त बुराइया नष्ट हो जाती हैं।

पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणो के समान रामचरित्र सभी को सुख देने वाला है, परन्तु सज्जनरूपी कुमुदिनी और चकोर के चित्त के लिए तो विशेष हितकारी और महान् लाभदायक है।

विशेष—प्रथम दोहे मे वृत्यनुप्रास और उदाहरण, तथा द्वितीय दोहे मे छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास और रूपक अलकार।

मूल—कीन्हि प्रस्न जेहि भांति भवानी। जेहि बिधि सकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मैं गाई। कथा-प्रबन्ध बिचित्र बनाई ॥
जेहि यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी। नहिं अचरजु करहिं अस जानी ॥
राम कथा कै मिति जग नाहीं। असि प्रतीति तिन्ह के मन माहीं ॥

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन मत कोटि अपारा॥
कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥

शब्दार्थ—मिति = सीमा, पार प्रतीति = विश्वास। कल्प भेद = ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है। रति = प्रेम।

भावार्थ—जिस प्रकार पार्वती ने शिवजी से प्रश्न किया और जिस प्रकार शिवजी ने विस्तार से उसका उत्तर दिया, मैं उन सब बातो का विचित्र कथा की रचना करके वर्णन करूंगा। जिसने यह कथा पहले कभी न सुनी हो, उसे इस कथा को सुन कर आश्चर्य न करना चाहिए। जो ज्ञानी इस अलौकिक कथा को सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नही करते कि ससार मे रामकथा की कोई सीमा नही है, उनके मन मे ऐसा विश्वास है। राम का अवतार अनेक प्रकार से (अनेक रूपो मे) हुआ है और रामायण भी सौ करोड ही नही, अगणित हैं। कल्प के भेद से श्री हरि के सुन्दर चरित्र को मुनि लोगो ने अनेक प्रकार से गाया है। इस प्रकार मन मे निश्चय कर श्रीराम के चरित्र मे किसी प्रकार का सशय नही करना चाहिए और राम-कथा को आदर पूर्वक प्रेम से सुनना चाहिए।

मूल—राम अनन्त अनन्त गुन, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं, जिन्ह कें बिमल बिचार॥३३॥

विशेष—भावार्थ सरल है। 'अनत अनत' मे लाटानुप्रास अलकार।

मूल—एहि बिधि सब संसय करि दूरी। सिर धरि गुर पद पंकज धूरी॥
पुनि सबही बिनवउँ कर जोरी। करत कथा जेहिं लाग न खोरी॥
सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनउँ बिसद राम गुन गाथा॥
संबत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरिपद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहा चलि आवहिं॥
असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा॥
जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना॥

दोहा—मज्जहिं सज्जन बृंद बहु, पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर स्याम सरीर॥३४॥

शब्दार्थ—भौमवार = मंगलवार। मधुमासा = चैत्रमास। श्रुति = वेद। मज्जहिं = स्नान करते हैं।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि इस प्रकार सब संदेहों को दूर करके और गुरु महाराज की चरण-रज को सिर पर धारण करके तथा पुनः एक बार हाथ जोड़ कर मैं सबकी विनती करता हूँ, जिससे इस राम कथा के रचने में कोई दोष न आवे।

अब मैं आदर-पूर्वक शिवजी को सिर झुका कर श्रीराम के गुणों की निर्मल कथा कहता हूँ। श्री हरि के चरणों पर सिर रख कर मैं इस कथा का आरम्भ संवत् १६३१ में करता हूँ।

जिस दिन अयोध्या में यह चरित्र प्रकाशित हुआ, उस दिन चैत्र मास की नवमी तिथि थी और मंगलवार था। वेद कहते हैं कि जिस दिन श्रीराम का जन्म होता है, उस दिन सारे तीर्थ वहाँ आ जाते हैं।

असुर, नाग, पक्षी, मनुष्य, मुनि और देव सब (अयोध्या में) आकर राम की सेवा करते हैं। सज्जन राम का जन्म-महोत्सव मनाते हैं और उनकी सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

उस दिन सज्जन-वृन्द सरयू नदी के पवित्र जल में स्नान करते हैं और सुन्दर श्याम-शरीर भगवान् राम को हृदय में धारण कर, उनका ध्यान कर उनके नाम का जप करते हैं।

विशेष—अनुप्रास रूपक अलंकार।

मूल—दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमल मति॥
राम धामदा पुरी सुहावनि। लोक समस्त बिदित अति पावनि॥
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा॥
सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥
रामचरित मानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई॥

शब्दार्थ—पाना = जल पीना। रामधामदा = राम के परम धाम को

देने वाली। खानि = प्रकार (अडज, उद्भिज आदि)। करि = हाथी। अनल वन = दावानल। एहिं = इस। सर सरोवर। मानस = सरोवर।

भावार्थ :—सरयू का दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपान पापो को हरता है – यह वेद-पुराण कहते है। यह नदी बडी ही पवित्र है और इसकी महिमा अनन्त है, जिसे निर्मल बुद्धिवाली सरस्वतीजी भी नही कह सकती।

(सरयू के तीर पर) श्रीराम के परमधाम (वैकुठ) को देने वाली सुन्दर अयोध्यापुरी है, जो सब लोको मे प्रसिद्ध है और अत्यन्त पवित्र है। ससार मे चार खानि (प्रकार) के अनन्त जीव हैं, उनमे से जो कोई भी अयोध्याजी मे शरीर छोडते हैं, वे फिर ससार मे नही आते अर्थात् मुक्त हो जाते हैं।

सब प्रकार से इस अयोध्यापुरी को मनोहर, सब सिद्धियो की देने वाली और मगलो की खान समझकर मैंने वहाँ इस पवित्र कथा का आरम्भ किया, जिसके सुनने से काम, अहकार और अभिमान नष्ट हो जाते हैं।

इसका नाम रामचरित मानस है। इसके सुनने से कानो को शान्ति मिलती है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल मे जल रहा है, वह यदि इस रामचरितरूपी सरोवर मे आ पडे तो सुखी हो जाय (अर्थात् जैसे वन मे हाथी दावानल की तपन से व्याकुल होकर सरोवर मे जा पडता है और सुखी होता है उसी प्रकार शरीर मे मन विषयो की दावाग्नि से व्याकुल हो रहा है, वह तभी सुखी होगा जब रामचरित्र सुनकर इसमे तन्मय हो जाये)।

विशेष :—'मानस' शब्द यहा श्लिष्ट है, इसके दो अर्थ हैं – (1) रामचरित मानस (काव्य) और (11) मान सरोवर (झील) यहा कवि ने 'मानस' शब्द का प्रयोग दोनो ही अर्थो मे किया है। 'मन करि सर परई' मे रूपक अलकार।

मूल – रामचरित मानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन ॥
त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन ॥
रचि महेश निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ॥
तातें रामचरित मानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर ॥
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई ॥

दोहा—जस मानस जेहि विधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु ॥३५॥

शब्दार्थ—मुनि-भावन = मुनियो को अच्छा लगने वाला। विरचेउ = रचा। दावन = नाश करने वाला। कुलि = सब। मानस = मन। वर = सुन्दर। हेरि = देख कर। हर = महेश। जस = जिस प्रकार। वृषकेतु = महेश, महादेव।

भावार्थ —इस सुहावने और पवित्र रामचरित की शिवजी ने रचना की है। यह मुनियो को अच्छा लगने वाला, तीनो प्रकार के दोष दुख और दरिद्रता का दमन करने वाला तथा कलियुग की कुचालो और सब पापो का नाश करने वाला है।

महादेवजी ने इसे बनाकर अपने ही मानस (मन) मे रख लिया था और सुअवसर पाकर पार्वतीजी से कहा। इसी से शिवजी ने इसको अपने हृदय मे देखकर और प्रसन्न होकर सुन्दर नाम 'रामचरित मानस' रखा। मैं उसी सुखदायी और सुहावनी कथा को कहता हूँ। हे सज्जनो! आप मन लगाकर आदरपूर्वक उसे सुनिये।

यह रामचरित मानस जैसा है एव जिस प्रकार यह बना है और जिस कारण इसका ससार मे प्रचार हुआ है, अब मैं उसी प्रसग को शिव-पार्वती का स्मरण करके कहता हूँ।

विशेष – (1) त्रिदोष – वात, पित्त और कफ से उत्पन्न रोग या दोष।

(II) त्रिविध दु.ख – दैहिक, दैविक और भौतिक—त्रिताप।

(III) वृत्यनुप्रास अल्कार—'दोष दुख दारिद दावन', 'कलि कुचालि कुलि कलुष' और 'हियँ हेरि हरषि हर' मे।

मूल—सभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू ॥

बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी ॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई ॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई ॥
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥

शब्दार्थ—हुलसी = विकसित हुई। अगाधू = गहराई। बारी = जल। सुकृति = सत्कर्म। सालि = धान। मेधामहि = बुद्धि रूपी पृथ्वी। सकिलि = सिमिट कर। श्रवन मग = कान रूपी मार्ग। सुमानस = अच्छा हृदय। थिराना = स्थिर हो गया। चिराना = पुराना।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि शिवजी की कृपा से उनके हृदय मे सुन्दर बुद्धि का विकास हुआ, जिससे यह तुलसीदास रामचरित मानस का कवि हुआ। अपनी बुद्धि के अनुसार तो मैंने इसे मनोहर ही बनाया है, किन्तु कही इसमे यदि भूल चूक रह गई हो तो सज्जन सुन्दर चित्त से इसे सुनकर सुधार लें।

सुन्दर बुद्धि भूमि है, हृदय उसमे गहरा स्थान है, वेद-पुराण समुद्र हैं और साधु-संत मेघ हैं। ये साधु-संत रूपी बादल श्रीराम के सुयशरूपी सुन्दर, मधुर, मनोहर और मंगलकारी जल की वर्षा करते हैं। सगुण-लीला का विस्तार से वर्णन करना ही उस जल की निर्मलता है जो मल का नाश करने वाली है और प्रेमा भक्ति ही, जिसका वर्णन नही किया जा सकता, इस जल की मधुरता और सुशीतलता है।

वह (राम-सुयशरूपी जल) सत्कर्म रूपी धान के लिये हितकारी है और श्रीराम के भक्तो का तो जीवन ही है। वह पवित्र जल बुद्धि रूपी पृथ्वी पर गिरा और सिमटकर सुहावने श्रवण मार्ग से चला और हृदयरूपी श्रेष्ठ स्थान मे भर कर वही स्थिर हो गया। वही पुराना होकर सुन्दर, सुखद, शीतल और रुचिकर हुआ।

विशेष—सांग रूपक अलंकार। वह भक्ति जो प्रेम-भाव से की जाती है, प्रेम भक्ति कहलाती है, इसे वैष्णव-भक्ति कहते हैं।

मूल—सुठि सुन्दर संवाद वर विरचे बुद्धि विचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि ॥३६॥

शब्दार्थ—सुभग = सुन्दर। एहि = इस।

भावार्थ.—बुद्धि के विचार से जो अति सुन्दर और उत्तम चार संवाद (शिव-पार्वती, काकभुशुण्डि, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज और तुलसीदास तथा सन्तों) के रचे गये हैं, वही इन पवित्र और सुन्दर सरोवर के चार मनोहर घाट हैं।

विशेष—(i) अनुप्रास और रूपक अलङ्कार।

(ii) रामचरित मानस में चार संवाद हैं—(i) काकभुशुण्डि-गरुड़, (ii) शिव-पार्वती, (iii) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और (iv) तुलसीदास और संत।

मूल--सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥
राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई ॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला ॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती ॥

शब्दार्थ —प्रबन्ध = काण्ड। सोपान = सीढ़ी। माना = प्रसन्न हो जाना। अगुन = गुणातीत। जस = यश। बीचि = लहर। पुरइनि = कमलिनी। सघन = खूब फैली हुई। जुगुति = युक्तियाँ। कुल = समूह। पराग = पुष्प-रज। मकरन्द = पुष्प-रस। सुबासा = सुगन्ध। पुंज = समूह। मंजुल = सुन्दर। अलि-माला = भौंरों की पंक्ति। मराला = हंस। अवरेब = उक्ति की वक्रता व्यंग्य।

भावार्थ —सात काण्ड ही इस मानस सरोवर की सुन्दर सीढ़ियाँ हैं, जिनको ज्ञान के नेत्रों से देखते ही मन हरा-भरा हो जाता है। श्रीरामजी की निर्गुण (गुणातीत) और निर्बाध (असीम) महिमा का जो वर्णन किया जायगा, वही इस सुन्दर जल की अथाह गहराई है।

श्रीसीताराम का यश ही अमृत के समान जल है और (इसमें दी गयी)

उपमायें ही तरंगो का मनोहर विलास है। सुन्दर चौपाइयाँ ही घनी फैली हुयी कमल की बेलें हैं और कविता की युक्तियाँ सुन्दर मोती उत्पन्न करने वाली सुहावनी सीपियाँ हैं।

सत्कर्मों के समूह सुन्दर भौंरो की पंक्तियाँ हैं, ज्ञान, वैराग्य और विचार हंस हैं। कविता की ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण और जाति ही भाँति-भाँति की रंग-बिरंगी मनोहर मछलियाँ है।

सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे ही बहुत से रंगो के कमलो का समूह हैं। अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव और उत्तम भाषा ही (क्रमश.) पराग (पुष्परज), मकरन्द (पुष्परस) और सुगन्ध हैं।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल – अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना॥
संतसभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसन्त सम गाई॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना॥
औरउ कथा अनेक प्रसंगा। ते सुक पिक बहु बरन बिहंगा॥
दोहा—पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु। ३७।

शब्दार्थ—चारी = चार। तड़ागा = तालाब, सरोवर। जलबिहग = जल-पक्षी। अवँराई = अमराई। (आम की बगीचियाँ)। दम = इन्द्रिय-निग्रह। बिताना = मंडप। सम = शम (मनोनिग्रह)। जम = यम (संयम-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह)। नियम = शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान)। बिहगा = पक्षी। पुलक = रोमांच। सुमन = सुन्दर मन। लोचन = नेत्र। चारु = सुन्दर।

भावार्थ-अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारो ज्ञान-विज्ञान का विचार पूर्वक कथन काव्य के नौ रस जप योग और वैराग्य – ये सब इस सरोवर के सुन्दर जल चर है।

श्रीराम के नाम और गुणो का गान करने वाले पुण्यात्मा सन्त विचित्र

जलपक्षियो के समान है। सन्तो की सभा ही चारो ओर आमो की बगीचिया हैं और श्रद्धा वसन्त ऋतु के समान कही गई है।

अनेक प्रकार से भक्ति का निरूपण और क्षमा, दया तथा दम लताओ के मण्डप है। श्रम, यज्ञ, नियम ही उनके फूल है, ज्ञान फल है और भगवान के चरणो मे प्रेम ही उसका (ज्ञान रूपी फल का) सुन्दर रस है ऐसा वेदो ने कहा हैं। इसमे और भी जो प्रसगो की कथाएँ है वे ही तोते, कोकिल और रग-बिरगे पक्षी है।

इस कथा के सुनने से जो रोमाञ्च होता है वही वाटिका, बाग और वन है जो सुख होता है वह सुन्दर पक्षियो का विहार है। निर्मल मन ही माली है जो प्रेम रूप जल से सुन्दर नेत्रो द्वारा उनको सीचता है।

विशेष—अलकार अनुप्रास और रूपक।

मूल—जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरवर मानस अधिकारी॥
अति खल जे बिषई बग कागा। एहिसर निकट न जाहिं अभागा॥
सबुक भेक सेवार समाना। इहा न बिषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहिसर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥
कठिन कुसग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना॥

शब्दार्थ—सभारे=सावधानी से। तइ=वे ही। सुरवर=देवताओ में उत्तम। बग=बगुले। सबुक=घोघे। भेक=मेढक। बलाक=बगुले। हरि=सिंह। ब्याला=साँप।

भावार्थ—जो इस चरित्र (रामचरित मानस) को सावधानी से गाते हैं, वे ही इस सरोवर के चतुर रखवाले हैं, और जो स्त्री-पुरुष सदा आदर के साथ इसे सुनते हैं, वे ही इस सुन्दर सरोवर के अधिकारी उत्तम देवता हैं। जो अत्यन्त दुष्ट और विषयी जीव है, वे अभागे बगुले और कौए हैं जो इसके समीप नहीं जाते। (कारण यह है कि) इस मानस-सरोवर मे घोघे, मेंढक और सेवार के समान विष-रस की नाना कथाएँ नही है। इसलिए कामीजन रूपी

बेचारे कौए और बगुले अपने खाद्य पदार्थ के अभाव के कारण यहा आते हुए हृदय में हार मानते है अर्थात् यहा आते हिचकते हैं। इस सरोवर तक आने मे कठिनाइया भी बहुत हैं, बिना राम की कृपा के कोई यहाँ आ भी नही सकता। इस सरोवर तक पहुँचने मे घोर कुसग ही भयकर मार्ग है और कुसगियो के वचन ही बाघ, सिंह और साप हैं (जिनका मार्ग मे सदा डर बना रहता है)। घर-गृहस्थी के काम-धन्धे और भाति-भाति के जजाल ही अत्यन्त दुर्गम विशाल पर्वत हैं जो मार्ग मे विघ्न उपस्थित करते हैं। मोह, मद और मान ही बहुत बड़े-बड़े बीहड़ वन हैं और नाना प्रकार के कुतर्क ही मार्ग को रोकने वाली भयानक नदिया हैं।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलकार। (मानस-सरोवर तक पहुचने के मार्ग मे क्या-क्या कठिनाइया आती हैं, इसका क्या ही सुन्दर रूपक बाधा गया है।)

मूल—जे श्रद्धा सबल रहित, नहिं सतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ ॥३८॥

शब्दार्थ —संबल=मार्गव्यय, राह खर्च।

भावार्थ—जिन पथिको के पास रास्ते के लिए श्रद्धा रूपी व्यय नहीं है और न सतो का साथ ही है और जिनको रघुनाथजी प्रिय नही है, उनके लिए यह मानस अत्यन्त ही अगम है। तात्पर्य यह है कि बिना श्रद्धा, सत्सग और राम-कृपा के कोई इसे नहीं पा सकता।

विशेष—'श्रद्धा सबल' मे रूपक अलकार।

मूल—जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ विषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही।
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई।

शब्दार्थ—जुड़ाई होई=जूड़ी (शीत-ज्वर) आ जाती है। जड़ता जाड़=मूर्खता रूपी जाड़ा। बुझावा=समझाता है।

भावार्थ – यदि कोई व्यक्ति कष्ट उठाकर उस सरोवर तक पहुँच भी जाता है, तो उसे वहा पहुँचते ही नीद रूपी शीत-ज्वर आ जाता है। उसे हृदय मे मूर्खता या अज्ञान रूपी बडा जाडा लगने लगता है, जिससे वह अभागा वहा जाकर भी उसमे स्नान नही कर पाता। उससे न तो सरोवर मे स्नान ही किया जाता है और न उसका जल ही पिया जाता है और अभिमान में भर वह वहा से लौट आता है। फिर यदि कोई उससे पूछने आता है (कि कहो वहां के क्या हाल-चाल है) तो वह अपने दुर्भाग्य की बात न कहकर सरोवर की निन्दा करके उसे समझाता है। किन्तु ये सारे विघ्न उस व्यक्ति को, जिसे रघुनाथजी कृपा की दृष्टि से देखते है, नही सताते। वही आदर.पूर्वक इस सरोवर मे स्नान करता है और वह भयकर त्रिताप से नही जलता।

विशेष—त्रयताप (दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट)। 'नींद-जुडाई' और 'जडता-जाड' मे रूपक, 'सोइ सादर सर' मे वृत्यनुप्रास अलकार।

मूल – ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥
अस मानस मानस चख चाही। भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥
चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस नंदिनी। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनी॥
दोहा – श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल॥३९॥

शब्दार्थ—भल = सुन्दर। भाऊ = भाव, प्रेम। मानस चख = हृदय के नेत्र। चाही = देखकर। अवगाही = गोता लगा कर। प्रमोद = आनन्द। भरिता = भरी हुई। कूला = किनारे। सुमानस-नन्दिनी = मानस-सरोवर की कन्या। निकन्दिनी = नाश करने वाली, उखाड फेंकने वाली।

भावार्थ—जिनकी श्रीराम के चरणों मे सुन्दर प्रीति है, वे इस सरोवर को कभी नहीं छोडते। हे भाई! जो इस सरोवर मे स्नान करना चाहो तो मन लगाकर सत्सग करो।

ऐसे (रामचरित रूपी) मानसरोवर को हृदय के नेत्रो से देखकर

और इसमे स्नान करने से मुझ कवि की बुद्धि निर्मल हो गयी, हृदय मे आनन्द और उत्साह बढा तथा प्रेम और प्रमोद का प्रवाह उमड पडा।

उससे वह सुन्दर कवितारूपी सरिता वह निकली जिसमे श्रीराम का विमल यशरूपी जल भरा है। इसका नाम सरयू है, जो सम्पूर्ण सुन्दर मगलो की जड है। लोक और वेद का मत इसके दो सुन्दर किनारे हैं। यह पवित्र सरयू नदी मान सरोवर की कन्या है और कलियुग के पापरूपी तृणो और वृक्षो को जड से उखाडने वाली है।

तीनो—आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी श्रोताओ के समाज ही इस नदी के दोनो किनारो पर बसे हुए पुर ग्राम और नगर है तथा समस्त सुन्दर मगलो की जड सन्तो की सभा ही अनुपम अयोध्या है।

विशेष—'मानस मानस' मे यमक तथा अन्यत्र सर्वत्र रूपक अलकार।

मूल – रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई ॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन ॥
जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा ॥
त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी ॥
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही ॥
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा ॥
उमा महेस बिवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती ॥
रघुबर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई ॥

दोहा – बालचरित चहु बन्धु के, बनज बिपुल बहुरग ॥
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग ॥४०॥

शब्दार्थ—सानुज = छोटे भाई लक्ष्मण सहित। देवधुनि = गगाजी। तिमुहानी = त्रिमुखी होकर। समुहानी = सामने की तरफ। तीर = तट, आस-पास। बनज = कमल। बारि-बिहग = जल-पक्षी।

भावार्थ—जिनके मन मे रामचन्द्रजी के चरणो मे सच्ची भक्ति है, वे इस सरोवर को कभी नही छोडते। हे भाई ! जो इस सरोवर मे स्नान करना चाहे, वह मन लगा कर सतो का सत्सग करे।

ऐसे मानस-सरोवर को हृदय के नेत्रो से देखकर और उसमे गोता लगा

कर कवि की बुद्धि निर्मल हो गई, हृदय में आनन्द और उत्साह भर गया और प्रेम तथा आनन्द का प्रवाह उमड़ आया।

उसमें से मनोहर कविता रूपी नदी बह निकली जिसमें राम का निर्मल यश रूपी जल भरा है, उसका नाम सरयू है जो सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की जड़ है, लोकमत और वेद मत इसके दो सुन्दर किनारे हैं। यह सुन्दर मानस-सरोवर की कन्या अर्थात् सरयू नदी बड़ी पवित्र है और कलियुग के पाप रूपी तिनको और वृक्षों को जड़ से उखाड़ कर फेंकने वाली है।

चारो भाइयो की जो बाल-लीलाएँ हैं, वे ही इसमें खिले हुए रंग-बिरंगे अनेक कमल हैं। राजा, रानी तथा उनके कुटुम्बियों के सत्कर्म ही भ्रमर और जल-पक्षी हैं।

विशेष—सांग रूपक तो चल ही रहा है। अनुप्रास की भी अच्छी बहार है। 'जनु सरि बागा' में उत्प्रेक्षा। 'तीर तीर' में यमक।

मूल—सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी॥
सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥
राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥
दोहा—समन अमित उतपात सब, भरत चरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जलमल बग काग।

शब्दार्थ—पटु = विचारपूर्ण। अनुकथन = पीछे की चर्चा। भृगुनाथ रिसानी = परशुरामजी का क्रोध। सुबद्ध = सुन्दर बंधे हुए। सुकृति = पुण्यात्मा। परब जोग = पर्व के समय। समन = शांत करने वाला। जप जाग = जप रूपी यज्ञ। जलमल = कीचड़। बग = बगुले।

भावार्थ—सीता-स्वयंवर की जो सुन्दर कथा है, वही इस नदी में सुहावनी छवि छा रही है। अनेकों विचारपूर्ण सुन्दर प्रश्न ही इस नदी की नौकायें हैं और उनके विवेक-सहित उत्तर ही चतुर केवट है।

इस कथा को सुनने के पश्चात जो परस्पर विचार-विनिमय होता है, वही इस नदी के किनारे यात्रियो का समाज है। परशुरामजी का क्रोध इस नदी की भयकर धार है और श्रीराम के श्रेष्ठ वचन ही सुन्दर बँधे हुए घाट हैं।

छोटे भाइयो-सहित श्रीराम के विवाह का उत्साह ही इस कथा-नदी की कल्याणकारिणी बाढ है, जो सभी को सुख देने वाली है। इस कथा के कहने-सुनने से जो प्रसन्न और पुलकित होते हैं वे ही पुण्यात्मा पुरुष हैं. जो प्रसन्नमन से इसमे नहाते हैं।

श्रीराम के राजतिलक के लिये जो मगल-साज सजाया गया, वही मानो पर्व के अवसर पर इकट्ठे हुए यात्रियो का समूह है। कैकेयी की कुबुद्धि ही काई है, जिसके फलस्वरूप (रघुकुल पर) बडी भारी विपत्ति आ पडी।

रामानुज भरतजी के चरित्र ही सब अनगिनत उत्पातो को शान्त करने वाले जप और यज्ञ है। कलियुग के पापो और खलो के अवगुणो के जो वर्णन हैं वे ही जल का मल, बगुले और कौए हैं।

विशेष – साग रूपक अलकार चल ही रहा है, साथ ही उत्प्रेक्षा और अनुप्रास भी अपनी छटा दिखा रहे हैं।

मूल – कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥
बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बन गवनू। पथकथा खर आतप पवनू॥
बरसा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥
सती सिरोमनि सिय गुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥

दोहा – अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहु बन्धु की जल माधुरी सुबास॥४२॥

शब्दार्थ :—रूरी = सुन्दर। भूरि = अत्यन्त। हिम = हेमन्त ऋतु।

हिम सैलसुता = पार्वती। रितुराजू = वसन्त। खर आतप = कड़ी धूप। पवनू = लू। रारी = युद्ध। सालि = धान। पाथा = जल। भायप = भाईपन।

भावार्थ — भगवान् की कीर्तिरूपी यह नदी छहों ऋतुओं में सुन्दर रहती है। सभी समय यह परम सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। इसमें वर्णित शिव-पार्वती का विवाह ही हेमन्त ऋतु है और श्रीराम के जन्म का उत्सव सुखद शिशिर ऋतु है।

श्रीराम के विवाह-समाज का वर्णन ही आनन्द-मंगल से भरी वसन्त ऋतु है। श्रीराम का वनगमन ही असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा ही कड़ी धूप और लू है।

भयंकर राक्षसों से लड़ाई वर्षा ऋतु है, जो देवकुलरूपी धान का सुन्दर कल्याण करने वाली है। श्रीराम के राज्यकाल का जो सुख, विनय और बड़ाई है वही निर्मल सुखद, सुहावनी शरद् ऋतु है।

सती-शिरोमणि सीता के गुणों की कथा ही इस अनुपम जल का निर्मल गुण अर्थात् स्वच्छता है। भरतजी का स्वभाव ही जल की शीतलता है, जो सदा एक-सी रहती है और जिसका वर्णन नहीं हो सकता।

चारों भाइयों का आपस में प्रीति से बोलना, देखना, मिलना और हँसना—यह सुन्दर भाईपना ही इस जल की मधुरता और सुगन्ध है।

मूल — आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी॥
राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी॥
भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥
काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥
जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रबि कर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

शब्दार्थ — आरति = दुःख। सुबारि = उत्तम जल। हारी = दूर करना है। पोषत = पुष्ट करना है। कलुष = पाप। तोषक = सन्तुष्ट करता है। दुरित = पाप। कोह = क्रोध। मानस = मन, हृदय। बिगोए = बिगाड़े गये,

ठगे गये। रवि कर भव वारी = सूर्य की किरणो से उत्पन्न जल अर्थात् चमकती वालू रेत।

भावार्थ · – मेरी आर्त वाणी, विनय और दीनता ही इस दोपरहित सुन्दर निर्मल जल की हलकाई (हलकापन) है। यह जल बडा ही अद्‌भुत है जो (रामचरित के) सुनते ही गुण करता है और आशा रूपी प्यास को तथा मन के मैल को दूर कर देता है।

यह जल श्रीराम के प्रति सुन्दर प्रेम को पुष्ट करता है और कलियुग के समस्त पापो तथा मन की ग्लानि को दूर करता है। यह ससार के आवा-गमन की थकावट को सोखने वाला, सन्तोप को भी सतोष देने वाला तथा पाप, ताप, दरिद्रता और दोपो को नष्ट करने वाला है।

यह जल काम क्रोध, अभिमान और मोह का नाशक तथा निर्मल विवेक और वैराग्य का वढाने वाला है। इसमे आदरपूर्वक स्नान करने से तथा इसका पान करने से हृदय के पाप और परिताप मिट जाते हैं।

जिन्होने इस जल से अपने हृदय को नही धोया, उन कायरो को कलियुग ने नष्ट कर दिया। वे जीव उसी तरह दुखी हो भटकते फिरेंगे जैसे प्यासे मृग सूर्य की किरणो से (भ्रमवश) रेती मे जल देख भटकते फिरते हैं।

विशेप : – अनुप्रास, रूपक, उपमा अलकार।

दोहा – मति अनुहारि सुवारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी सकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ॥४३(क)॥
अब रघुपति पद पंकरुह, हियँ धरि पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिवर्य कर, मिलन सुभग संवाद ॥४३(ख)॥

शब्दार्थ —भवानी = पार्वती। पकरुह = कमल। जुगल = दोनो। गनि = विचार कर।

भावार्थ · – तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इन उत्तम जल के गुण-समूह पर विचार करके तथा इनमे अपने मन को स्नान करा कर तथा पार्वती और शकर का स्मरण करके कथा का आरम्भ करता हूँ। मैं अब श्रीरामचन्द्र जी के चरण-कमलो को हृदय मे धारण कर

और उनका प्रसाद पाकर दोनों श्रेष्ठ मुनियों (याज्ञवल्क्य और भरद्वाज) के मिलन का सुन्दर संवाद वर्णन करता हूँ।

मूल – भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना ॥
माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई ॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं ॥
पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता ॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन ॥
तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा ॥
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परसपर हरि गुन गाहा ॥

दोहा—ब्रह्म निरूपन धरम बिधि, बरनहिं तत्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान बिराग ॥४४॥

शब्दार्थ —मकरगत = मकर राशि पर। श्रेणी = समूह। जलजात = कमल। परसि = स्पर्श करके। सजुत = युक्त।

भावार्थ —भरद्वाज मुनि प्रयाग में रहते हैं, उनका श्रीराम के चरणों में बहुत अधिक प्रेम है। वे तपस्वी निगृहीतचित्त, जितेन्द्रिय, दया-निधान और परमार्थ के पथ (कार्य) में बड़े ही चतुर हैं।

माघ-माह में जब सूर्य मकरराशि पर होता है तब सब लोग तीर्थराज प्रयाग में आते हैं। देवताओं, दानवों, किन्नरों और मनुष्यों के समूह सब श्रद्धापूर्वक त्रिवेणी में स्नान करते हैं।

विशेष – राशियाँ बारह हैं। उनमें से प्रत्येक राशि पर सूर्य एक-एक माह रहता है। राशियों के नाम ये हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन।

भावार्थ —(सब लोग) श्री वेणीमाधवजी के चरणकमलों की पूजा करते हैं और अक्षयवट का स्पर्श कर उनके शरीर पुलकित होते हैं। वहाँ भरद्वाज मुनि का आश्रम बहुत ही पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियों के मन को लुभाने वाला है।

भावार्थ – वहाँ (भरद्वाज मुनि के आश्रम में) उन ऋषियों और

मुनियो का जमाव होता है जो तीर्थराज प्रयाग मे स्नान करने जाते हैं। वे सब प्रात काल उत्साहपूर्वक स्नान करते हैं और फिर परस्पर भगवान् के गुणो की कथाएँ कहते है।

वे ब्रह्म का विचार, धर्म के विधान और तत्वो के भेद का वर्णन करते है तथा ज्ञान और वैराग्य से युक्त भगवान् की भक्ति का बखान करते हैं।

मूल—एहि प्रकार भरि माघ नहाही। पुनि सब निज निज आश्रम जाही ॥
प्रति सवत अति होइ अनन्दा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा ॥
एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥
जागवलिक मुनि परम बिवेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥
सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे ॥
करि पूजा मुनि सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी ॥
नाथ एक ससउ बड मोरे। करगत बेदतत्व सबु तोरें ॥
कहत सो मोहि लागत भय लाजा। जौं न कहउँ बड होइ अकाजा ॥
दोहा – सत कहहिं असि नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न बिमल बिवेक उर गुर सन किएँ दुराव ॥४५॥

शब्दार्थ —मज्जि = स्नान करके। जागवलिक = याज्ञवल्क्य। पद टेकी = चरण पकड़ कर। दुराव = छिपाव।

भावार्थ —इस प्रकार माघ के महीने भर स्नान करते हैं और फिर सब अपने-अपने आश्रमो को लौट जाते हैं। प्रतिवर्ष वहाँ इसी तरह बडा आनन्द होता है और मुनिगण मकर नहाकर चले जाते हैं।

भावार्थ —एक बार मकर भर नहाकर सब मुनीश्वर तो अपने-अपने आश्रमो को लौट गये परन्तु भरद्वाज जी ने परमज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि को चरण पकडकर ठहरा लिया। (सानुरोध रोक लिया)।

आदरपूर्वक उनके चरणकमल धोये और उनको बडे ही पवित्र आसन पर बैठाया। पूजा करके मुनि याज्ञवल्क्यजी के सुन्दर यश का वर्णन किया और फिर अत्यन्त पवित्र (निष्कपट) कोमलवाणी से बोले कि—

हे नाथ! मुझे एक बडा भारी सदेह है, वेदो का तत्व सब आपकी मुट्ठी मे है (अर्थात् कोई ऐसी बात नही जो आपसे छिपी हो, इसी कारण

आप मेरे सन्देह का निवारण कर सकते हैं) । पर उस सन्देह को कहते हुए मुझे भय और लाज आती है । भय इसलिए कि कहीं आप यह न समझें कि मेरी परीक्षा ले रहा है और लाज इसलिए कि इतनी अवस्था होने पर भी, अब तक ज्ञान नहीं हुआ) और जो नहीं कहता तो बड़ी हानि होती है (क्योंकि अज्ञानी बना रहता हूँ ।

हे स्वामी ! सतलोग ऐसी नीति कहते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिजन भी यही बतलाते हैं कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता ।

विशेष—अनुप्रास और रूपक ।

मूल—अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू । हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा । संत पुरान उपनिषद गावा ॥
संतत जपत संभु अबिनासी । सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं । कासीं मरत परम पद लहहीं ॥
सोपि राम महिमा मुनिराया । सिव उपदेसु करत करि दाया ॥
रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही । कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥
एक राम अवधेस कुमारा । तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥
नारि बिरह दुखु लहेउ अपारा । भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥
दोहा—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि ।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह, कहहु बिबेकु बिचारि ॥४६॥

शब्दार्थ—मोह = अज्ञान । छोहू = प्रेम । आकर = प्रकार, जाति के । अहहीं = हैं । परम पद = मुक्ति । सोपि = वह भी । अपर = अन्य दूसरा ।

भावार्थ—ऐसा सोच कर मैं अपना अज्ञान आपके सामने प्रकट करता हूँ । हे नाथ ! सेवक पर कृपा करके इसके इस अज्ञान को दूर कीजिए । संत लोग, पुराण और उपनिषद सब राम-नाम का अमित प्रभाव बतलाते हैं । भगवान् शिव जो शिवरूप (कल्याण स्वरूप), ज्ञान और गुण की राशि हैं, अविनाशी हैं, निरन्तर राम नाम का जप करते रहते हैं । संसार में चार प्रकार के जीव हैं, काशी में मरने पर सभी को मुक्ति प्राप्त होती है । हे मुनिराज ! यह भी राम-नाम की ही महिमा है, क्योंकि काशी में मरने वाले जीव को शिवजी दया करके राम-नाम का ही उपदेश करते हैं । इसलिए हे प्रभो ! अब

मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं ? हे कृपा निधान ! मुझे समझा कर कहिए। एक राम तो अवध नरेश दशरथ के पुत्र है, जिनका चरित्र सारा संसार जानता है, जिन्होंने स्त्री के विरह मे अपार दुःख उठाया और क्रोध आने पर उन्होंने युद्ध मे रावण को मार डाला। हे प्रभो ! यह वही राम हैं या कोई और दूसरे, जिनको शिवजी जपते हैं। आप सत्यधाम और सर्वज्ञ हैं, अत, विचार कर बतलाइए।

विशेष—चार प्रकार के जीव अंडज, उद्भिज, जरायुज और स्वेदज।

मूल—जैसे मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई ॥
राम भगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा ॥
तातसुनहु सादर मनु लाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई ॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला ॥
रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना ॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी ॥

दोहा—कहउँ सो मति अनुहारी अब, उमा संभु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि बिषाद ॥४७॥

शब्दार्थ—गूढा = रहस्य-पूर्ण। महषेसु = महिषासुर। कराला = भयकर। हेतु = कारण।

भावार्थ—हे स्वामी ! जिससे मेरा यह भारी भ्रम मिट जाय, आप उसी कथा को विस्तरपूर्वक कहिये। यह सुनकर याज्ञवल्क्यजी मुस्कराकर बोले कि श्रीराम की प्रभुता को तुम जानते हो।

(हे भरद्वाज !) तुम मन, कर्म और वाणी से श्रीराम के भक्त हो। तुम्हारी चतुराई को मैं जान गया हूँ कि तुम श्रीराम के रहस्मय गुणों को सुनना चाहते हो, इसी से तुमने ऐसा प्रश्न किया है मानो तुम बड़े ही अज्ञानी हो।

विशेष,—उत्प्रेक्षा अलकार।

हे तात ! तुम मन लगाकर आदरपूर्वक सुनो। मैं श्रीराम जी की सुन्दर कथा कहता हूँ। बड़ा भारी अज्ञान विशाल (दैत्य) महिषासुर है और श्रीराम की कथा (उसका नाश कर देने वाली) भयकर कालीजी है।

विशेष —रूपक अलंकार।

श्रीराम की कथा चन्द्रमा की (शीतल) किरणों के समान है, जिसका सत्पुरुषी चकोर निरन्तर पान करते रहते हैं। ऐसा ही सन्देह पार्वती ने किया था, तब शिवजी ने विस्तार से उसका उत्तर दिया था।

विशेष —उपमा एवं रूपक अलंकार।

व्याख्या —उसी शिव-पार्वती के संवाद को अब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ। वह संवाद जिस समय और जिस हेतु से हुआ, उसे हे मुनि तुम सुनो, इससे तुम्हारा विषाद मिट जायेगा।

मूल—एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥
राम-कथा मुनिवर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखमानी॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥
कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा मांगि त्रिपुरारी। चले भवन संग दच्छकुमारी॥
तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥
पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥

दोहा—हृदयं बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएं जान सबु कोइ॥४८॥ (क)

सोरठा—संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची।४८॥ (ख)

शब्दार्थ.—कुंभज=घट से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि। पाहीं=पास। अखिलेस्वर=सारे संसार के स्वामी ईश्वर। गिरिनाथा=शिवजी। त्रिपुरारी=त्रिपुर राक्षस के मारने वाले शिव। दच्छकुमारी=दक्ष की पुत्री सती। छोभु=खलबली। मरम=भेद।

भावार्थ—एक बार त्रेता युग में शंकर अगस्त्य ऋषि के पास गये, उनके साथ जगत् की माता, भवानी सतीजी भी थीं। ऋषि ने सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर जानकर उनका पूजन किया।

मुनिवर अगस्त्यजी ने रामकथा का वर्णन किया जिसे सुनकर महादेवजी ने परम सुख माना। फिर ऋषि ने शिवजी से सुन्दर हरि भक्ति

के विषय मे पूछा और शिवजी ने उनको अधिकारी पाकर (जानकर) भक्ति का निरूपण किया।

इस प्रकार श्रीरघुनाथजी के गुणो की कथाएँ कहते-सुनते कुछ दिनो तक शिवजी वहाँ रहे। फिर मुनि से विदा माँगकर शिवजी दक्षकुमारी पार्वतीजी के साथ घर (कैलाश) को चले।

उन्हीं दिनो पृथ्वी का भार उतारने के लिये भगवान् ने रघु के वंश मे अवतार लिया और पिता के वचन से राज छोड, अविनाशी भगवान् श्रीराम तपस्वी-वेश मे दण्डक वन मे विचर रहे थे।

इधर शिवजी हृदय मे विचारते जा रहे थे कि भगवान् के दर्शन मुझे किस प्रकार हो। प्रभु ने गुप्तरूप से अवतार लिया है; सम्मुख जाने से यह भेद सब लोग जान जायेंगे।

शंकरजी के हृदय मे इस बात को लेकर बडी खलबली उत्पन्न हो गयी, परन्तु सतीजी इस भेद को नही जानती थी। तुलसीदासजी कहते है कि दर्शन के लोभ से उनके नेत्र ललचा रहे थे पर मन मे (भेद खुलने का) भय था।

मूल—रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साँचा॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछतावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥
एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपटकुरंगा॥
करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥
मृग बधि बंधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥
बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥
कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुखु ताकें॥
दोहा—अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद बिमोह बस, हृदयँ धरहिं कछु आन॥४९॥

शब्दार्थ—जाचा = मागा। बनावा = युक्ति, उपाय। कुरगा = मृग। [वैदे]ही = सीता। विपिन = वन।

भावार्थ —रावण ने अपना मरना मनुष्य के हाथ से माग रखा था और भगवान् ब्रह्मा के वचनो को सत्य करना चाहते हैं (इनी हेतु नर-रूप धारण किया है)। जो प्रभु के दर्शन के लिए नही जाता हूँ तो बडा पछतावा

रह जायेगा (और जाने का अवसर नहीं) । इस प्रकार शिवजी विचार करते थे, परन्तु कोई भी उक्ति ठीक नहीं बैठती थी ।

इस प्रकार शिवजी चिन्तामग्न हो गये । उस समय रावण ने जाकर नीच मारीच को साथ लिया जो छल से उसी समय हिरण बन गया ।

भावार्थ :—तब मूर्ख रावण ने छल करके सीताजी को हर लिया । उसे श्रीराम के वास्तविक प्रताप का कुछ भी ज्ञान नहीं था । हिरण को मार कर श्रीराम भाई लक्ष्मण सहित आश्रम में और उसे सूना देखकर उनके नेत्रों मे जल भर आया ।

भावार्थ :—श्रीरघुनाथजी मनुष्य के समान विरह से व्याकुल हो गये और दोनों भाई वन मे सीताजी को ढूंढते हुए फिरने लगे । जिनके कभी सयोग और वियोग नहीं है, उन (भगवान श्रीराम) का विरह-दुख प्रकट देखने मे आया ।

भावार्थ—श्री रघुनाथजी का चरित्र विचित्र है । उसे बडे बडे ज्ञानी ही जानते हैं, पर जो मंदबुद्धि हैं वे अज्ञान के वश हृदय मे कुछ और ही समझते है (अर्थात् उन्हें सचमुच दुःखीसुखी समझ लेते हैं ।

विशेष —अनुप्रास, उपमा और विरोधाभास अलंकार ।

मूल—संभु समय तेहि रामहि देखा । उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ॥
भरि लोचन छबि सिंधु निहारी । कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी ॥
जय सच्चिदानन्द जग पावन । अस कहि चलेउ मनोज नसावन ॥
चले जात सिव सती समेता । पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥
सती सो दसा संभु कै देखी । उर उपजा संदेहु बिसेखी ॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा । सुर नर मुनि सब नावत सीसा ॥
तिन्ह नृप सुतहि कीन्ह परनामा । कहि सच्चिदानन्द परधामा ॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी । अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥

दोहा—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥५०॥

शब्दार्थ—छबि-सिंधु = शोभा के समुद्र (श्रीराम) । चिन्हारी = परिचय । मनोजनसावन = कामदेव को नष्ट करने वाले (शिव) । तासु = उसकी । बिरज = माया रहित । अज = अजन्मा । अकल = अगोचर । अनीह = इच्छा रहित ।

भावार्थ—उसी समय शिवजी ने श्रीराम के दर्शन किये जिससे उनके हृदय मे बडा ही आनन्द उत्पन्न हुआ। उन शोभा के समुद्र श्रीराम को शिवजी ने नेत्र भरकर देखा, परन्तु कुसमय जानकर उनसे परिचय नही किया।

हे सच्चिदान द, हे जगत् के पवित्र करने वाले, आपकी जय हो, इस प्रकार कह कर कामदेव के नाशक शिवजी चल पडे। कृपानिधान शिवजी बार बार आनन्द से पुलकित होते हुए सती के संग चले जा रहे थे।

सतीजी ने जब शकर की यह दशा देखी तो उनके मन मे बडा सदेह उत्पन्न हो गया। (वे मन ही मन सोचने लगी कि) ससार के वदनीय तथा जगत के स्वामी शिवजी को तो सुर, नर, मुनि सब सिर नवाते हैं।

उन्होने एक राजपुत्र को सच्चिदानन्द परब्रह्म कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेममग्न हो गये कि अब तक प्रीति उनके हृदय मे रोकी नही रुकती।

भावार्थ—जो ब्रह्म सबमे व्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, चेष्टारहित और अखण्ड है और जिसको वेद भी नही जानते, वह क्या देह धारण करके मनुष्य हो सकता है ?

मूल :—विष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्वग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥
संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्वग्य जान सबु कोई॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। ससय अस न धरिअ उर काऊ॥
जासु कथा कुम्भज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

शब्दार्थ—अग्य = अज्ञानी। असुरारि = असुरो के शत्रु। मृषा = झूठ। प्रबोध प्राचारा = ज्ञान का प्रादुर्भाव।

भावार्थ—देवताओ के हित के लिए भगवान विष्णु ने मनुष्य का शरीर धारण किया है वे भी शिवजी की भांति ही सर्वज्ञ है। तो क्या वे भी लक्ष्मी के स्वामी, ज्ञान के धाम और असुरो के शत्रु विष्णु अज्ञानी की तरह नारी को ढूंढते फिरते है ?

फिर शिवजी के वचन भी असत्य नहीं हो सकते क्योंकि सब जानते हैं कि शिवजी सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार सती के मन में अपार सन्देह उठ खड़ा हुआ और हृदय में किसी भांति ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं हुआ।

यद्यपि पार्वतीजी ने प्रकट में कुछ नहीं कहा, पर अन्तर्यामी शिवजी सब जान गए। वे बोले हे सती! सुनो, तुम्हारा स्त्री स्वभाव है। मन में कभी ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये।

भावार्थ,—जिनकी कथा का अगस्त्य ऋषि ने गान किया और जिन की भक्ति मैंने मुनि को सुनायी, ये वही मेरे इष्टदेव श्रीराम हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सर्वदा किया करते हैं।

विशेष—अनुप्रास और उपमा अलंकार।

मूल—मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं॥
सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म भुवन निकायपति माया धनी॥
अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

शब्दार्थ—सतत = निरन्तर। आगम = शास्त्र। भुवन-निकायपति = समस्त भुवनों (लोकों) के पति। निजतंत्र=स्वतन्त्र।

भावार्थ—ज्ञानी, मुनि, योगी और सिद्ध शुद्ध हृदय से जिनका निरंतर ध्यान करते हैं तथा वेद, पुराण और शास्त्र जिनकी कीर्ति को नेति नेति कह कर गाते हैं उन्हीं सब (चराचर) व्यापक, परब्रह्म समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी मायापति, नित्य परम स्वतन्त्र भगवान् श्रीराम ने अपने भक्तों के हित के लिए रघुकुल में मणिरूप में अवतार लिया है।

विशेष—हरिगीतिका छन्द। अनुप्रास अलंकार।

सोरठा—लाग न उर उपदेसु, जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहँसि महेसु, हरिमाया बलु जानि जियँ॥ ५१॥

भावार्थ—यद्यपि शिवजी ने सती को बार-बार समझाया, तथापि सती के मन पर उनके उपदेश का कोई प्रभाव न पड़ा। तब मन ही मन महादेवजी भगवान् की माया को बलवती जान कर हँस कर कहने लगे।

मूल—जौं तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगी तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु विवेक विचारी॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं विचारु करौं का भाई॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढावै साखा॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा॥

दोहा—पुनि पुनि हृदयँ विचारु करि, धरि सीता का रूप।
आगें होइ चलि पथ तेहिं, जेहिं आवत नरभूप॥ ५२॥

शब्दार्थ—वट = वड का पेड। ऐहहु = आओगी। पाही = पास। आयसु = आज्ञा। शाखा बढावै = विस्तार करे।

भावार्थ—जो तुम्हारे मन मे बहुत सन्देह हैं तो तुम जाकर परीक्षा क्यो नही लेती ? जब तक तुम मेरे पास लौटकर आओगी तब तक मैं इसी बड की छाया मे बैठा रहूँगा।

जिस भाति तुम्हारा यह भारी मोह और भ्रम दूर हो, वही यत्न तुम विवेक से सोच-समझकर करो। शिवजी की आज्ञा पाकर सती चली और विचार करने लगी कि हे भाई ! क्या करूँ (कैसे परीक्षा लूँ)।

यहाँ शिवजी ने मन मे यह अनुमान किया कि अब दक्षकन्या सती का कल्याण नही है (इनके पीछे प्रभु का माया लगी है सो बिना दण्ड दिये इन्हें नही छोडेगी)। जब मेरे समझाने से भी सन्देह दूर नही हुआ, तब मालूम होता है—प्रारब्ध ही उल्टा है और कुछ भलाई नही दीखती।

होगा वही, जो कुछ श्रीराम ने रच रक्खा है। फिर तर्क करके बात मे बात (शाखा) कौन निकाले। ऐसा कहकर शिवजी तो राम नाम जपने लगे और सतीजी वहाँ गयी जहाँ सुख के धाम प्रभु श्रीराम (विराजमान) थे।

बार-बार हृदय मे विचारकर और सीताजी का रूप धारण करके सती उस मार्ग की ओर आगे होकर चलीं जिससे मनुष्यो के राजा श्रीराम आ रहे थे।

विशेष—'पुनि पुनि' मे पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकार।

मूल—लछिमन दीख उमाकृत बेषा। चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा॥

सती कपट जानेउ सुरस्वामी । सबदरसी सब अंतरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना । सोइ सुरबग्य रामु भगवाना ॥
सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ । देखहु नारि सुभाय प्रभाऊ ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी । बोले बिहँसि रामु मृदु बानी ॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥

दोहा—राम बचन मृदु गूढ़ सुनि, उपजा अति संकोचु ॥
सती सभीत महेस पहिं, चलीं हृदयँ बड़ सोचु ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—मतिधीरा = धीर बुद्धि । सुर स्वामी = रामचन्द्रजी । तहँहु = वहा भी (सर्वज्ञ भगवान् के सामने भी) दुराउ = छिपाव । पानि = हाथ । बहोरि = फिर । बृषकेतू = महादेव । पहिं = पास ।

भावार्थ—लक्ष्मणजी सती को (सीता के) बनावटी भेद मे देखकर चकित हो गये और उनके हृदय मे बडा भ्रम हो गया । वे कुछ कह नहीं सके और बहुत गम्भीर हो गये क्योकि धीर बुद्धि लक्ष्मण प्रभु श्रीराम को जानते थे ।

देवताओ के स्वामी श्रीराम ने सती के कपट को जान लिया क्योकि वे सब कुछ देखने वाले और सबके हृदय को जानने वाले हैं । जिनके स्मरणमात्र से अज्ञान का नाश हो जाता है, वे ही सर्वज्ञ भगवान श्रीराम हैं ।

पर सतीजी वहाँ (उन सर्वज्ञ भगवान् के सामने) भी छिपाव करना चाहती है, स्त्री के स्वभाव का प्रभाव तो देखो ! अपनी माया के बल को हृदय मे स्मरण कर श्रीराम हँसकर कोमल वाणी से बोले—

पहले प्रभु ने हाथ जोडकर सती को प्रणाम किया और पिता-सहित अपना नाम बताया । फिर कहा कि वृषकेतु महादेवजी कहाँ है ? आप यहाँ वन में अकेली किसलिए फिर रही हैं ?

श्रीराम के कोमल और गूढ वचन सुनकर सती को बडा सकोच हुआ और वे डरती हुई (चुपचाप) महादेवजी के पास चली, पर उनके हृदय मे बडा सोच था ।

विशेष :—इन पक्तियों मे स्त्री-सुलभ दुर्बलता का सुन्दर परिचय दिया गया है ।

मूल – मैं संकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना ॥
जाइ उतर अब देहउँ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा ॥
जाना राम सती दुखु पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सती दीख कौतुकु मग जाता। आगें रामु सहित श्री भ्राता ॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुन्दर वेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥
देखे सिव विधि विष्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक तें एका ॥
बवत चरन करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सब देवा ॥

दोहा – सती विधात्री इन्दिरा, देखी अमित अनूप।
जेहिं जेहिं वेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप ॥५४॥

शब्दार्थ —आना = आरोप किया। दाहा = जलन। श्री = लक्ष्मी, सीता। चितवा = देखा। विधात्री = ब्रह्माणी। इन्दिरा = लक्ष्मी। अजादि = ब्रह्मा आदि।

भावार्थ —मैंने शिवजी का कहना नहीं माना और अपना अज्ञान श्रीराम पर प्रकट किया। अब जाकर उनको क्या उत्तर दूँगी? यों सोचते-सोचते सतीजी के हृदय मे अत्यन्त भयानक जलन पैदा हो गयी।

श्रीराम ने जान लिया कि सती को दुःख हुआ, तब उन्होंने अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके दिखाया। सतीजी ने मार्ग मे जाते हुए एक कौतुक देखा कि श्रीराम सीताजी और लक्ष्मण सहित आगे चले जा रहे हैं।

फिर पीछे फिरकर देखा तो वहा भी प्रभु श्रीराम को भाई और सीता-सहित सुन्दर वेष मे देखा। वे जिधर देखती है। उधर ही प्रभु श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं और सुचतुर सिद्ध-मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे हैं।

सतीजी ने अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक बढकर असीम प्रभाव वाले थे। वे भगवान् के चरणो की वन्दना और सेवा कर रहे थे। इसके अतिरिक्त सती ने सभी देवताओ को नाना भांति के वेष मे देखा।

(फिर सतीजी ने) असरय अनुपम रूपो मे सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मीजी को देखा। जिस-जिस रूप मे ब्रह्मादि देवता थे उसी रूप के अनुसार वे (उनकी शक्तिया) भी थी।

विशेष—यमक और अनुप्रास अलकार।

मूल--देख जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जो संसारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा। राम रूप दूसर नहीं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥
सोइ रघुवर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भईं सभीता॥
हृदयँ कंप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूँदि बैठीं मग माहीं॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ राम पद सीसा। चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥

दोहा--गईं समीप महेस तब, हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन बिधि, कहहु सत्य सब बात॥५५॥

शब्दार्थ—गिरीसा = महादेव। सुधि = खबर।

भावार्थ—सतीजी ने जहाँ-जहाँ जितने रामचन्द्रजी देखे वहाँ उतने ही सब देवता अपनी अपनी शक्तियों सहित देखे। संसार में जो चर और अचर जीव हैं, वे भी अनेक प्रकार के सब देखे।

देवता अनेक वेष धारण करके प्रभु श्रीराम की पूजा कर रहे थे, परं रामजी का दूसरा रूप नहीं देखा (अर्थात् श्रीराम उसी एक रूप में थे जबकि देवता लोग भाँति-भाँति के वेष बनाकर भगवान् की पूजा कर रहे थे) सीता-सहित श्रीराम बहुत से देखे, परन्तु उनके वेष अनेक नहीं थे।

(सब जगह) वे ही राम, वे ही लक्ष्मण और वे ही सतीजी-सीताजी ऐसा देखकर बहुत ही डर गयीं। उनका हृदय काँपने लगा, शरीर की कुछ सुध न रही। वे आंख बन्द करके रास्ते में बैठ गयीं।

फिर जब आँखें खोलकर देखा तो वहां दक्षकुमारी सती को कुछ भी दिखायी नहीं दिया। तब वे बार-बार श्रीराम के चरणों में सिर नवाकर वहां चलीं, जहां शिवजी थे।

जब सतीजी शिवजी के पास पहुँचीं तो उन्होंने हँसकर सती की कुशल पूछी और कहा कि तुमने श्रीराम की परीक्षा किस प्रकार ली, सारी बात सच-सच कहो।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥
जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरें मन प्रतीति अति सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना॥
बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयं बिचारत संभु सुजाना॥
सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥

दोहा—परम पुनीत न जाइ तजि, किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु, हृदयँ अधिक संतापु॥५६॥

शब्दार्थ—नाईं = तरह। भावी = होनहार।

भावार्थ—श्रीराम के प्रभाव को समझकर सती ने डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और कहा कि, हे स्वामी! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, (वहा जा कर मैंने) आपकी ही तरह (भगवान् श्रीराम को) प्रणाम किया।

आपने जो कहा वह असत्य नहीं हो सकता, मेरे मन में ऐसा पूर्ण विश्वास है। यह सुनकर शिवजी ने ध्यान धरकर देखा और सतीजी ने जो चरित्र किया था सो सब जान लिया।

फिर उन्होंने श्रीराम की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सती के मुंह से भी झूठ कहलवा दिया। सुजान शिवजी हृदय में विचार करने लगे कि हरि-इच्छा (अर्थात् भगवान की इच्छा से ही यह सब कुछ होता है) रूपी भावी बडी बलवान है (अर्थात् जो कुछ होना होता है वह हो कर ही रहता है)।

सती ने सीता का वेष धारण किया, इस कारण शिवजी ने हृदय में बडा दुःख पाया। (वे विचार करने लगे कि) जो अब सती से मैं प्रेम करता हूँ तो भक्ति का मार्ग ही मिटा जाता है और बडा अन्याय होता है।

सती परम पवित्र हैं इसीलिये इन्हे छोडते भी नही बनता और प्रेम करने से बडा पाप होता है। शिवजी ने प्रकट में (वाणी से) कुछ भी नही कहा परन्तु उनके हृदय में बडा संताप हुआ।

विशेष--अनुप्रास अलंकार।

मूल—तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा।
एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥
अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा।
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥
अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना।
सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥
कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला।
जदपि सती पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥
दोहा—सती हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य।
कीन्ह कपटु मैं संभु सन, नारि सहज जड़ अग्य ॥५७॥ (क)
सोरठा—जलु पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भली।
बिलग होइ रसु जाइ, कपट खटाई परत पुनि ॥५७॥ (ख)

शब्दार्थ--संकल्प = दृढ़ विचार। गिरा = वाणी। पन = प्रण, प्रतिज्ञा आना = अन्य, दूसरा। त्रिपुर-आराती = त्रिपुर राक्षस के शत्रु (शिवजी)। पय = दूध। रस = स्वाद, आनन्द, प्रेम।

भावार्थ —तब शिवजी ने प्रभु श्रीराम के चरणों में सिर नवाया और श्रीरामजी का स्मरण करते ही उनके मन में यह आया कि इस देह से मेरी (पति-पत्नी रूप में) सती से भेंट नहीं हो सकती। शिवजी ने अपने मन में यही संकल्प कर लिया।

स्थिरमति शिवजी ऐसा विचारकर श्रीराम का स्मरण करते हुए अपने घर कैलाश को चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुयी कि हे शंकर, आपकी जय हो! आपने भक्ति को खूब दृढ़ किया।

ऐसा प्रण आपको छोड़कर और दूसरा कौन कर सकता है? भगवन्! आप श्रीराम के भक्त और समर्थ हैं। इस आकाशवाणी को सुनकर सतीजी के मन में चिन्ता हुयी और उन्होंने सकुचाते हुए शिवजी से पूछा—

हे दयालु! आपने कौनसा प्रण किया है, सो कहिए? हे प्रभु! आप सत्य के धाम और दीनों पर दया करने वाले हैं। यद्यपि सतीजी ने अनेक प्रकार से पूछा तो भी त्रिपुरारि शिवजी ने कुछ नहीं कहा।

सतीजी ने (शिवजी से कोई उत्तर न पाकर) अपने हृदय में अनुमान लगाया कि प्रभु सर्वज्ञ हैं और उन्होंने (जो कुछ मैंने किया था) सब जान लिया है। मैंने शिवजी से कपट किया (यह कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि) स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और अज्ञान होती है।

प्रीति की इस सुन्दर रीति को तो देखिये कि जल भी (दूध के समान भाव बिकता है, परन्तु फिर कपटरूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है।

विशेष--अनुप्रास और 'कपट-खटाई' में रूपक अलंकार।

मूल – हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी।
कृपा सिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥
संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी।
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवा इव उर अधिकाई॥
सतिहि ससोच जानि बृषकेतू। कहीं कथा सुन्दर सुख हेतू।
बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥
तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन।
संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखण्ड अपारा॥
दोहा-सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोचु मन माँहि।
मरमु न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिं॥५८॥

शब्दार्थ--अवा = कुम्हार का आवा जिसमें बर्तन पकते हैं। बृषकेतू = शंकर। सिराहिं = बीतते हैं।

भावार्थ – अपनी ही करनी समझकर सती के हृदय में बहुत दुःख हुआ। उनके मन में इतनी अधिक चिन्ता है कि उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता। (वे अपने मन में सोचने लगीं कि) शिवजी कृपा के परम अथाह समुद्र हैं, इसी से उन्होंने प्रकट में मुझसे मेरा अपराध नहीं कहा।

शिवजी का रुख देखकर पार्वतीजी हृदय में बहुत व्याकुल हो उठीं कि स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया है। अपना ही पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परन्तु हृदय (भीतर ही-भीतर) कुम्हार के आवे के समान अत्यन्त जलने लगा।

सती को सोच मे जानकर वृषकेतु शिवजी ने उन्हे सुख देने के लिए सुन्दर कथाएँ कहीं। इस प्रकार मार्ग मे विविध प्रकार इतिहास कहते हुए ससार के स्वामी शिवजी कैलाश मे जा पहुँचे।

वहाँ फिर शिवजी अपना प्रण याद करके वड के पेड के नीचे कमलासन लगाकर बैठ गये। शकरजी ने अपना स्वाभाविक रूप सँभाला जिससे उनकी अखण्ड और अपार समाधि लग गयी।

तब सतीजी कैलाश मे रहने लगीं पर उनके मन मे बडा भारी दुख था इस रहस्य के विषय मे (कि शिवजी ने सती को त्याग दिया है) कोई भी कुछ नही जानता था। (शिवजी के इस व्यवहार के कारण) सती के दिन युग के समान वीत रहे थे।

विशेष—दूसरी चौपाई मे उपमा, 'सकर ' सम्हारा' मे वृत्यनुप्रास अलकार।

मूल—नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा।
मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना॥
सो फलु मोहि बिधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा।
अब बिधि अस बूझिअ नहीं तोही। संकर बिमुक जिआवसि मोही॥
कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी।
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥
तौ मैं बिनय करउ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी।
जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥

दोहा—तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु, करउ सो बेगि उपाइ।
होइ मरनु जेहि बिनहि श्रम, दुसह बिपत्ति बिहाइ॥५९॥

शब्दार्थ—जैहउँ=जाऊँगी। जिआवसि=जीवित रख रहा है। आरति=दुख। बिहाइ=दूर हो जाय, छूट जाय।

भावार्थ—नित्य नया सोच होने से सती का हृदय भारी हो गया। (वे सोचने लगीं कि) मैं इस दुखसमुद्र के पार कब जाऊँगी। मैंने जो श्रीराम का अपमान किया और फिर पति के वचनो को झूठ जाना—

उसी का फल विधाता ने मुझे दिया और जो उचित था, वही किया।

हे विधाता ! अब तुझे ऐसा नही चाहिये कि शिवजी के विमुख होने पर भी मुझे जिला (जीवित रख) रहा है।

सती के हृदय की ग्लानि कुछ कही नही जाती। बुद्धिमती सतीजी ने मन मे श्रीराम का स्मरण कर कहा। जो भगवान् दीनो पर दया करने वाले कहाते हैं और दुःख के हरने वाले कहकर वेदो ने जिनकी प्रशसा की है—

उनसे मैं हाथ जोडकर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाय। शिवजी के चरणो मे मेरा प्रेम है और मन, कर्म तथा वचन से मेरा यह प्रण सच्चा है—

तो हे सर्वदर्शी प्रभु ! सुनिये और शीघ्र वही उपाय कीजिये, जिससे अनायास मेरा मरण हो और मेरी यह (पति-परित्यागरूपी) असह्य विपत्ति दूर हो जाय।

मूल — एहि विधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी।
बीतें सबत सहस सतासी। तजि समाधि संभु अविनासी॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे।
जाइ संभु पद-बन्दनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥
लगे कहन हरि कथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला।
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥
बड अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदयँ तब आवा।
नहि कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥
दोहा — दच्छ लिए मुनि बोलि सब, करन लगे बड जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग॥६०॥

भावार्थ—दक्षराज की कन्या सतीजी इस प्रकार बहुत दुःखित थी। उनको इतना दारुण और भारी दुःख था कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। (इस प्रकार) सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी शिवजी ने अपनी समाधि खोली।

शिवजी रामनाम का स्मरण करने लगे। जब सतीजी ने जाना कि जगत् के स्वामी शिवजी जग गये हैं तो उन्होंने जाकर शिवजी के चरणो मे प्रणाम किया। शिवजी ने उनको बैठने के लिए अपने सामने आसन दिया (सीता का वेष धरने के कारण बाईं ओर नही बैठाया)।

और वे (शिवजी) भगवान् की रसमय कथा कहने लगे। जिस समय दक्षराज प्रजापति हुए, ब्रह्माजी ने सब प्रकार से योग्य देख-समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया।

जब दक्ष ने इतना बड़ा अधिकार पाया तो उनके मन में बहुत अधिक घमण्ड हो गया। (शिवजी ने कहा कि) संसार में ऐसा कोई भी पैदा नहीं हुआ, जिसको प्रभुता पाकर अभिमान न हुआ हो।

दक्ष ने सब मुनियों को बुला लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदरसहित निमन्त्रित किया।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा।
बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥
सती बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुन्दर बिधि नाना।
सुर सुन्दरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥
पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी।
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥
पति परित्याग हृदय दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी।
बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥

दोहा—पिता भवन उत्सव परम, जौं प्रभु आयसु होइ।
तौ मैं जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ॥६१॥

शब्दार्थ—सुर जान=सुरयान, विमान। बिहाइ=छोड़कर। बधुन्ह=स्त्रियाँ। कल=मधुर। एहीं मिस=इसी बहाने।

भावार्थ—किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित चले। ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी को छोड़कर सभी देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले।

सतीजी ने देखा कि आकाश में भाँति-भाँति के सुन्दर विमान चले जा रहे हैं। देवसुन्दरियाँ मधुर गान गा रही हैं, जिनके कान में पड़ते ही मुनियों के ध्यान छूट जाते हैं।

जब सती ने (विमानों में देवताओं के जाने का कारण) पूछा तब

शिवजी ने सब हाल कहा। पिता के यज्ञ की बात सुनकर वे कुछ प्रसन्न हुयी और सोचने लगी कि यदि महादेवजी मुझे आज्ञा द तो कुछ दिन इसी बहाने पीहर जाकर रहूँ।

उनके हृदय मे पति द्वारा त्यागी जाने का बडा दुःख है पर अपना अपराध समझकर कुछ कहती नही है। (अन्त मे कुछ सोचकर) सतीजी भय, सकोच और प्रेमरस मे सनी हुयी मनोहर वाणी से कहने लगी कि—

हे कृपानाथ ! मेरे पिता के यहाँ बहुत बडा उत्सव है। स्वामी की आज्ञा हो तो मैं आदरसहित उसे देखने जाऊँ।

मूल – कहेहु नीक मोरेहुं मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा।
दच्छ सकल निज सुता बोलाई। हमरे बयर तुम्हउ बिसराई॥
ब्रह्मसभा हम सन दुख माना। तेहि तें अजहु करहिं अपमाना।
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥
जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुं न सदेहा।
तदपि बिरोध मान जहं कोई। तहां गएं कल्यानु न होई॥
भांति अनेक सभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा।
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएं। नहिं भल बात हमारे भाए॥
दोहा—कहि देखा हर जतन बहु, रहइ न दच्छकुमारि।
दिए मुख्य गन सग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥६२॥

शब्दार्थ—नीक = अच्छा। नेवत = न्योता, निमन्त्रण। पठावा = भेजा। सन = से। बोलें = बुलाये। कानी = मान मर्यादा। गुर = गुरु। गेहा = घर। भाएँ = समझ मे।

भावार्थ—शिवजी ने कहा – तुमने मेरे मन को भाने वाली सुन्दर बात कही, पर (तुम्हारे पिता) दक्षराज ने न्योता नही भेजा, यह अनुचित है। दक्ष ने अपनी सब बेटियो को बुलवाया है, पर हमारे साथ बैर होने के कारण उन्होने तुमको भी भुला दिया।

एक बार ब्रह्माजी की सभा मे उन्होने (उठकर उनका आदर न करने से) बुरा माना था, उसी से वे अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी ! जो तुम बिना बुलाये जाओगी तो शील, स्नेह और मानमर्यादा कुछ भी नहीं रहेगा।

यद्यपि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिये, इसमें सन्देह नहीं है तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, वहाँ जाने से भलाई नहीं होती।

शिवजी ने अनेक प्रकार से समझाया, पर होनहार के कारण सती के हृदय में बोध नहीं हुआ। शिवजी ने कहा कि जो बिना बुलाये जाओगी तो हमारी समझ में अच्छी बात नहीं होगी।

शिवजी ने बहुत तरह से कहकर देख लिया, पर सतीजी नहीं रुकी, तब त्रिपुरारि शिवजी ने अपने मुख्य गणों का साथ देकर उनको विदा कर दिया।

मूल—पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी।
सादर भलेहि मिलि एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता।
सती जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ।
पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना।
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा॥
दोहा—सिव अपमानु न जाइ सहि, हृदयँ न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हटकि तब, बोलीं बचन सक्रोध॥६३॥

शब्दार्थ—त्रास = डर। भगिनी = बहनें। जागा = यज्ञ। परितापा = दुःख। अवमाना = अपमान, निरादर। हटकि = डाँट कर।

भावार्थ—जब भवानी पिता के घर पहुँची तब दक्षराज के डर से किसी ने उनका सम्मान नहीं किया। केवल एक माता भले ही आदर से मिली। बहनें बहुत मुस्कराती हुयी मिलीं।

दक्ष ने कुछ राजी-खुशी नहीं पूछी, वरन् सती को देखकर उनके सारे अंग जल उठे। तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं भी शिवजी का भाग दिखायी नहीं दिया।

तब जो शिवजी ने कहा था, वह उनकी समझ में आया। स्वामी का

अपमान समझकर सती का हृदय जल उठा । पिछला (पतिपरित्याग का) दुःख भी उनके हृदय में इतना अधिक नहीं व्यापा था, जितना महान् दुःख इस समय (पति-अपमान के कारण) हुआ ।

विशेष—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह उचित ही है कि स्त्री को पति के द्वारा अपमानित होने पर भी उतना दुःख नहीं होता, जितना अन्य या अपनों के द्वारा पति का अपमान देखकर होता है ।

यद्यपि जगत् में भाँति-भाँति के दारुण दुःख हैं, परन्तु जाति-अपमान सबसे बढ़कर कठिन है । यह समझकर सती को बड़ा भारी क्रोध हो आया । माता ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया ।

परन्तु उनसे शिवजी का अपमान नहीं सहा गया, इसी से उनके हृदय में (माता के काफी समझाने पर भी) ज्ञान तनिक भी नहीं हुआ । तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डाँटकर क्रोध- भरे वचन बोलीं—

विशेष—अनुप्रास अलंकार ।

मूल—सुनहु सभासद सकल मुनिंदा । कही सुनी जिन्ह संकर निंदा ।
सो फल तुरत लहब सब काहूँ । भली भाँति पछिताब पिताहूँ ॥
संत, संभु श्रीपति अपवादा । सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ।
काटिअ तासु जीभ जो बसाई । श्रवन मूँदि न त चलिअ पराई ॥
जगदातमा महेसु पुरारी । जगत जनक सब के हितकारी ।
पिता मंदमति निंदत तेही । दच्छ सुक्र संभव यह देही ॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू । उर धरि चन्द्रमौलि बृषकेतू ।
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ॥

दोहा—सती मरनु सुनि संभु गन, लगे करन मख खीस ।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु, रच्छा कीन्हि मुनीस ॥६४॥

शब्दार्थ—लहब=पाओगे । बसाई=वश चले तो । पराई=भाग जाय । सुक्र=वीर्य । सम्भव=उत्पन्न । चन्द्रमौलि=चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले । वृषकेतू=महादेव । मख=यज्ञ । खीस=विध्वंस, नष्ट । भृगु=एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि जो ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं ।

भावार्थ—हे सभासदो और मुनिवरो ! सुनो, जिन्होंने शिवजी की

निन्दा कही या सुनी है, उन सबको उसका फल तुरन्त ही मिलेगा और पिताजी भी भली-भाँति पछतायेंगे।

जहाँ सन्त, शिवजी और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् की निंदा सुनी जाय, वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो निन्दा करने वाले की जीभ काट ले, नहीं तो कान मूँद कर वहाँ से भाग जाय।

त्रिपुरासुर को मारने वाले भगवान् शिवजी सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं, वे जगत् के पिता और सबका हित करने वाले हैं। मेरा मन्द-बुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है। मेरा यह शरीर दक्ष के ही वीर्य से उत्पन्न है।

इसलिये चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले शिवजी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को शीघ्र त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सती ने योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर दिया, इससे सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया।

सती का मरना सुनकर जब शिवजी के गण यज्ञ का नाश करने लगे तब यज्ञ का विध्वंस देखकर मुनिवर भृगुजी ने उनकी रक्षा की।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—समाचार जब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए।
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥
भै जगबिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई।
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संछेप बखानी॥
सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा।
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमीं पारबती तनु पाई॥
जब ते उमा सैल गृह जाईं। सकल सिद्धि संपति तहँ छाईं।
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआश्रम कीन्हे। उचित बास हिम-भूधर दीन्हे॥

दोहा—सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुन्दर सैल पर मनि आकर बहु भाँति॥६५॥

शब्दार्थ—बीरभद्रु = वीरभद्र, शिवजी की जटा से उत्पन्न एक वीर। बिधिवत = यथोचित। दत = वरदान। हिम भूधर = हिमाचल। नव = नये-नये। आकर = खान।

भावार्थ—शिवजी ने जब सब समाचार पाये तब क्रोध करके उन्होंने वीरभद्र को भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ विध्वंस कर डाला और सब देवताओं को यथोचित फल (दण्ड) दिया।

दक्ष की वही जगत्-प्रसिद्ध दशा हुई, जो शिवद्रोही की हुआ करती है। यह इतिहास सारा जगत् जानता है, इसीलिये मैंने इसका संक्षेप मे वर्णन किया है।

सती ने मरते समय भगवान् श्रीराम से यह वर माँगा कि जन्म-जन्म मे (अर्थात् प्रत्येक जन्म मे) मेरा शिवजी के चरणो में प्रेम बना रहे। इसी कारण उन्होंने पार्वती का शरीर पाकर हिमाचल के घर जाकर जन्म लिया।

जब से उमा हिमाचल के घर जन्मी, तब से वहाँ सब सिद्धियाँ और सम्पत्तियाँ छा गयी। मुनियो ने जहाँ-तहाँ सुन्दर आश्रम बना लिये और हिमालय ने उन्हे (अपने आश्रम बनाने के लिए) उचित स्थान प्रदान किये।

उस समय नये-नये अनेक प्रकार के सब वृक्ष सदा फल-फूलो से लदे रहने लगे और सुन्दर पर्वत पर बहुत तरह की मणियो की खान हो गई।

विशेष—अनुप्रास, 'मै जग · होई' में उदाहरण अलंकार।

मूल—सरिता सब पुनित जलु बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं।
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥
सोह सैल गिरिजा गृह आएँ। जिमि जनु राम भगति के पाएँ।
नित नूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥
नारद समाचार सब पाए। कौतुकही गिरि गेह सिधाए।
सैलराज बड़ आदर कीन्हा। पद पखारि बर आसनु दीन्हा॥
नारि सहित मुनि सिर नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिंचावा।
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥

दोहा—त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह, गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिवर हृदय बिचारि॥६६॥

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र। खग=पक्षी। मृग=पशु। बयर=शत्रुता। जनु=भक्त। जसु=यश। सिधाए=पधारे। बर=श्रेष्ठ। बोलि=बुलाकर।

भावार्थ – सभी नदियो मे निर्मल जल बहने लगा। पशु, पक्षी और भ्रमर सब सुखी रहने लगे। सब जीवो ने अपना स्वाभाविक बैर छोड दिया और पर्वत पर सभी प्रेम सहित रहने लगे।

घर मे पार्वतीजी के आ जाने से पर्वत ऐसा सुन्दर लगने लगा जैसे मनुष्य राम की भक्ति को पाकर लगता है। उस (पर्वतराज) के घर नये-नये मगल होने लगे, जिसका ब्रह्मादि देवता यश गाते हैं।

जब नारदजी ने ये सब समाचार सुने तो वे कौतुक से ही (महाराज) हिमालय के घर पधारे। पर्वतराज ने उनका बडा आदर किया और चरण धोकर बैठने के लिए सुन्दर आसन दिया।

पर्वतराज हिमालय ने स्त्री सहित मुनि के चरणो मे सिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर मे छिडकवाया। पर्वतराज ने (मुनि के आगमन पर) अपने सौभाग्य का बहुत (प्रकार से) वर्णन किया और पुत्री को बुलाकर मुनि के चरणो मे डाल दिया।

हे मुनिवर! आप त्रिकाल (भूत, भविष्य एवम् वर्तमान) के ज्ञाता और सर्वज्ञ हैं, आपकी सर्वत्र पहुच है। इसलिये आप हृदय मे विचारकर पुत्री के गुण-दोष कहिये।

विशेष – अनुप्रास और उदाहरण अलकार।

मूल – कह मुनि बिहँसि गूढ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी।
सुन्दर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥
सब लच्छन सपन्न कुमारी। होइहि सतत पियहि पिआरी।
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहि पितु माता॥
होइहि पूज्य सकल जग माही। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाही।
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढिहहिं पतिव्रत असिधारा॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी।
अगुन अमान मातु पितु होना। उदासीन सब ससय छीना॥
दोहा – जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमगल बेष।
जस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख॥६७॥

शब्दार्थ—बिहँसि = हसकर। गूढ = रहस्य युक्त। सपन्न = युक्त। अहिवात = सुहाग। अहिवाता = सौभाग्य। जसु = यश। पैहहि = पावेंगे।

त्रिय = स्त्रियां। सुलच्छन = सुलक्षणी। संसय हीना — संशयहीन। अकाम मन — निष्काम हृदय।

भावार्थ—नारद मुनि ने हँसकर गूढ़ अभिप्राय को कोमल वाणी से कहा—तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह सुन्दर, स्वभाव से ही सुशील और समझदार है। उमा, अम्बिका और भवानी इसके नाम हैं।

कन्या सब सुलक्षणों से सम्पन्न है, यह अपने पति को सदा प्रिय होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा और इसके माता-पिता भी यश पावेंगे।

यह सारे संसार में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा। और संसार में इसका नाम का स्मरण करके स्त्रियां पति-व्रतरूपी तलवार की धार पर चढ़ जायेंगी।

हे हिमवान् ! तुम्हारी कन्या सुलक्षिणी है, पर अब इसमें जो दो चार अवगुण हैं, उन्हें भी सुनलो। गुणहीन, मानविहीन, माता-पिता रहित, उदासीन, सब प्रकार के सन्देहों से दूर--

योगी, जटाधारी, निष्कामहृदय, नंगा और अमंगल वेषवाला, ऐसा पति इसको मिलेगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पड़ी है।

विशेष—'[illegible]' [illegible]

शब्दार्थ – विलगाना = भिन्न-भिन्न। मैना = हिमाचल की पत्नी, पार्वती की माता। भाषा = वचन। दुराई = छिपाली। उछग = गोद।

भावार्थ —नारद मुनि की वाणी सुनकर और उसको हृदय में सत्य जानकर दम्पत्ति को दुःख हुआ पर उमाजी प्रसन्न हुईं। नारदजी ने भी इस रहस्य को नहीं जाना, क्योंकि सबकी बाहरी दशा एक-सी होने पर भी भीतरी समझ भिन्न थी (अर्थात् दम्पत्ति के मुँह पर दुःख का और उमा के मुँह पर हर्ष का भाव था पर नारदजी केवल भाव को जान सके, उनका भेद नहीं समझे।

सब सखियां, पार्वती, पर्वतराज हिमवान् और मैना (पार्वती की माता)/ सभी के शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में जल भर आया। देवर्षि का कहना असत्य नहीं होगा, यह विचार कर पार्वतीजी ने उन वचनों को अपने हृदय में रख लिया।

उमाजी का महादेवजी के चरणकमलों में स्नेह उत्पन्न हो आया, परन्तु मन में यह सन्देह हुआ कि उनका मिलना कठिन है। कुअवसर समझ कर उन्होंने अपने प्रेम को छिपा लिया और फिर वे सखी की गोद में जाकर बैठ गयी।

देवर्षि की वाणी झूठी नहीं होती, यह विचार कर मैना, हिमवान् और चतुर सखियां चिंता करने लगीं। फिर महाराज हिमाचल ने हृदय में धीरज धरकर नारदजी से कहा हे नाथ! कहिए, अब क्या उपाय किया जाय?

मुनिराज ने कहा—हे हिमवान्! सुनो, विधाता ने जो कुछ ललाट पर लिख दिया है उसको देवता, दैत्य, मनुष्य नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकता।

विशेष—अनुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल – तदपि एक मैं कहउँ उपाई। होइ करै जौं दैउ सहाई।
जस बरु मै बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥
जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने।
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥
जौं अहि-सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं।
भानु कृसानु-सर्व रस खाहीं। तिन्ह कहँ मन्द कहत कोउ नाहीं॥

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।
समरथ कहुँ नहिं दोष गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं॥

दोहा – जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़ विवेक–अभिमान।
परहिं कलप भरि नरक महुँ जीव कि ईस समान॥६९॥

शब्दार्थ—दैउ = दैव। बरु = वर। पाही = पास। तस = वैसा ही। पहिं = पास। कुसानु = अग्नि। अपुनीत = अपवित्र। नाईं = तरह। हिसिषा = ईर्ष्या होड़। महुँ = मे।

भावार्थ—तो भी मै एक उपाय बतलाता हूँ। यदि दैव सहायता करें तो वह सिद्ध हो सकता है। जैसा वर मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है वैसा ही उमा को मिलेगा, इसमे कुछ सन्देह नही।

यह मैंने वर के जो जो दोष बतलाये हैं, मेरे अनुमान से वे सब शिवजी मे पाये जाते हैं। यदि शिवजी के साथ विवाह हो जाय तो सब लोग दोषो को भी गुण कहेंगे।

जैसे भगवान् विष्णु सर्प की सेज पर शयन करते हैं, तो भी पण्डितजन उनको कोई दोष नही देते। सूर्य और अग्निदेव अच्छे बुरे-सभी रसो का भक्षण करते हैं, पर उनको कोई बुरा नही कहता।

गगाजी मे शुभ और अशुभ सब पानी बहता है, पर उनको कोई अपवित्र नहीं कहता। (इसी प्रकार हे राजन्!) सूर्य, अग्नि और गगाजी की भाति समर्थ को कुछ दोष नही लगता।

यदि मूर्ख मनुष्य ज्ञान के अभिमान से देवताओ की बराबरी करते हैं (कि जैसा देवताओ ने किया वैसा ही हम भी करेगे) तो वे कल्प भर के लिए नरक मे पड़ते है। भला, कही जीव भी ईश्वर के बराबर हो सकता है?

मूल– सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहु न सत करहिं तेहि पाना।
सुरसरि मिलें सो पावन जैसें। ईस अनीसहि अतरु तैसें॥
सभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू।
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं।

वर दायक प्रनतारति भंजन । कृपासिंधु सेवक मन रंजन ।
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें । लहिअ न कोटि जोग जप साधें ॥

दोहा—अस कहि नारद सुमिरि हरि, गिरिजहि दीन्हि असीस ।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस ॥७०॥

शब्दार्थ—पावने = पवित्र । अनीसहि = जीव में (जो ईश न हो, वह अनीश) अन्तर = भेद । दुराराध्य = जिसकी आराधना बड़ी कठिन हो । अहहिं = हैं । आशुतोष = शीघ्र ही सन्तुष्ट हो जाने वाले । कलेसू = तप, क्लेश । भाविउ = होनहार को भी । एहि कहँ = इसके लिए । प्रनतारति = (प्रनत + आरति) शरणागत का दुःख । रंजन = प्रसन्न करना । अवराधे = आराधना किये ।

भावार्थ :—मदिरा को गंगाजल से बनी हुई जानकर भी संतलोग कभी उसका पान नहीं करते (क्योंकि पान करने से दोष लगता है), पर वही गंगाजी में मिल जाने पर जैसे पवित्र हो जाती है (या उसके गंगाजी में मिलने पर भी गंगा पवित्र बनी रहती है, अर्थात् उसको दोष नहीं लगता), जीव और ईश्वर में भी वैसा ही भेद है (जीव को एक अनुचित बात से भी दोष लग जाता है पर ईश्वर को अनेक अनुचित कर्मों में भी दोष नहीं लगता)।

विशेष — उदाहरण और अनुप्रास अलकार।

मूल—कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ।
पतिहि एकांत पाइ कह मैना। नाथ न मै समुझे मुनि बैना॥
जौं घर वरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा।
न त कन्या वरु रहउ कुवारी। कत उमा मम प्रानपिआरी॥
जौं न मिलिहि बर गिरिजहि जोगू। गिरि जड सहज कहिहि सबु लोगू।
सोइ बिचारि पति करेहु बिबाहू। जेहि न बहोरि होइ उर दाहू।
अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरिसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥

दोहा—प्रिया सोचु परिहरहु सबु, सुमिरहु श्रीभगवान्।
पारबतिहि निरमयउ जेहिं, सोइ करिहि कल्यान॥७१॥

शब्दार्थ :—आगिल = आगे का। भयऊ = हुआ। वरु = वर, चाहे, भले ही। कत = स्वामी, पति। जड = मूर्ख। बहोरि = फिर। गिरीसा = हिमाचल। परिहरहु = छोड दो। निरमयउ = बनाया, रचा।

भावार्थ—यो कहकर नारद मुनि ब्रह्मलोक को चले गये। अब आगे जो चरित्र हुआ उसे सुनो। पति को एकान्त मे पाकर मैना ने कहा—हे स्वामी! मैंने मुनि के वचनो का अर्थ नही समझा।

जो हमारी कन्या के अनुकूल, घर, वर और कुल उत्तम हो तो विवाह कीजिये, नही तो लडकी चाहे कुमारी ही रहे, क्योकि हे कत! उमा मुझे प्राणो से प्यारी है।

यदि पार्वती के योग्य वर नही मिला तो सब लोग कहेगे कि पर्वत स्वभाव से जड (मूर्ख) होते हैं। इसलिए हे स्वामी! सोच-विचार कर ही विवाह कीजियेगा, जिससे फिर पीछे हृदय मे सन्ताप न हो।

ऐसा कहकर मैना पति के चरणो मे सिर रखकर गिर पडी। पब पर्वतराज ने प्रेम से कहा—चाहे चन्द्रमा मे (अमृत के बदले) अग्नि प्रकट हो जाय, पर नारदजी के वचन असत्य नही हो सकते।

हे प्रिय! सब सोच छोडकर श्रीभगवान् का स्मरण करो, जिन्होने पार्वती को बनाया है, वे ही कल्याण करेंगे।

मूल—अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू।
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायं न मिटिहि कलेसू।।
नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुन्दर सब गुन निधि बृषकेतू।
अस बिचारि तुम्ह तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका।।
सुनि पति बचन हरषि मन माहीं। गई तुरत उठि गिरिजा पाहीं।
उमहि बिलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी।।
बारहिं बार लेति उर लाई। गदगद कंठ न कछु कहि जाई।
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोलीं मृदु बानी।।
दोहा—सुनहि मातु मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहि।
सुन्दर गौर सुबिप्रबर अस उपदेसेउ मोहि।।७२।।

शब्दार्थ–सिखावन = शिक्षा। सगर्भ = रहस्ययुक्त। सहेतू = कारण सहित। बृषकेतू = शिव। असका = संदेह। पाहीं = पास।

भावार्थ—अब जो तुम्हें पुत्री से प्रेम है तो जाकर उसे यह शिक्षा दो कि वह ऐसा तप करे जिससे शिवजी मिल जायें। अन्य किसी उपाय से यह क्लेश (दुःख) नहीं मिटेगा।

नारदजी के वचन रहस्यमय और सकारण हैं। शिवजी सुन्दर और सब गुणों के भण्डार हैं। यह विचारकर तुम सन्देह को छोड़ दो, क्योंकि शिवजी सब प्रकार दोषरहित हैं।

पति के वचन सुन मन में प्रसन्न होती हुई मैना उठकर तुरन्त पार्वती के पास गई। पार्वती को देखकर उनकी आँखों में आँसू भर आये (और उमड़ते हुए वात्सल्य के कारण) उसे स्नेह के साथ गोद में बैठा लिया।

(और) बार-बार उसे हृदय से लगाने लगी, पर गला भर आने के कारण कुछ कहा नहीं जाता। जगत् की माता और सर्वज्ञ पार्वतीजी (माता के मन की दशा को जानकर) माता को सुख देने वाली कोमल वाणी से बोलीं-

हे माँ! सुन, मैंने एक स्वप्न देखा है, वह तुझे सुनाती हूँ कि एक सुन्दर गौरवर्ण और श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे ऐसा उपदेश दिया है--

मूल—करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी।।
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा।।

तप बल रचइ प्रपंच विधाता। तपबल विष्नु सकल जग त्राता ॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरइ महिभारा ॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जिय जानी ॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हकारी ॥
मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चली उमा तप हित हरषाई ॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता ॥

दोहा—बेदसिरा मुनि आइ तब, सबहि कहा समुझाई।
पारबती महिमा सुनत रहे प्रबोधहि पाइ ॥७३॥

शब्दार्थ—भावा = अच्छा लगा। प्रपञ्च संसार। त्राता = रक्षा करता है। गिरिहि = हिमाचल को। हकारी = बुला कर। वेद सिरा – वेद सिरा मार्कण्डेय ऋषि का पुत्र।

भावार्थ—हे पार्वती ! नारदजी ने जो कहा है उसे सत्य समझ कर तुम जाकर तप करो। फिर यह बात तुम्हारे माता-पिता को भी अच्छी लगी है, क्योंकि तप सुखदायक और दुख-दापो को नाश करने वाला है।

तप के बल से ही ब्रह्मा जगत को रचते है और तप के बल से ही विष्णु सारे ससार का पालन करते हैं। तप के बल से ही शिवजी संहार करते हैं और तप के बल से ही शेषजी पृथ्वी का भार धारण करते है।

हे भवानी सारी सृष्टि तप के ही आधार पर है। ऐसा मन मे जानकर तुम जाकर तप करो। यह सुनकर माता को बडा अचरज हुआ और उसने हिमवान को बुलाकर वह स्वप्न सुनाया।

माता-पिता को अनेक प्रकार से समझाकर उमा प्रसन्न होकर तप करने के लिए चली। प्यारे कुटुम्बी, पिता और माता सब व्याकुल हो गये और किसी के मुह से बात नही निकलती।

तब वेदसिरा मुनि ने आकर सबको समझाकर कहा। पार्वती की महिमा सुनकर उनको ज्ञान हुआ और वे शान्त हुए।

मूल—उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागी तपु करना ॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू ॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मनु लागा ॥

संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाए॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पानि महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नाम तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥

दोहा—भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥७४॥

शब्दार्थ—बिपिन = वन। सुकुमार = कोमल। बारि = जल। बतासा = वायु। बेलपाति = बिल्वपत्र। सुखानेउ परना = सूखे पत्ते। अपरना = अपर्ण। खीन = क्षीण। परिहरु = त्याग दे।

आवें पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं ॥
मिलहिं तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा ॥
सुनत गिरा बिधि गगन बखानी। पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित सुन्दर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥
जब तें सती जाइ तनु त्यागा। तब तें सिव मन भयउ बिरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहं तहं सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥

दोहा—चिदानंद सुखधाम सिव, बिगत मोह मद काम।
बिचरहिं महि धरि हृदय हरि, सकल लोक अभिराम ॥७५॥

शब्दार्थ—सतत = निरन्तर। सुचि = पवित्र। बागीसा = ब्रह्मवाणी। बखानी = कही गई। बिगत = रहित। अभिराम = सुन्दर, आनन्द देने वाले।

भावार्थ—हे भवानी! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए हैं, पर ऐसा कठोर तप किसी ने नही किया। अब तुम इस श्रेष्ठ ब्रह्मा की वाणी को सदा सच्ची और निरन्तर पवित्र जानकर अपने हृदय मे धारण करो।

जब पिता बुलाने आवें, तब हठ छोडकर घर चली जाना और जब तुम्हे सप्त ऋषि मिले तब इस वाणी की सच्चाई जान लेना।

आकाश से कही हुई ब्रह्मा की वाणी को सुनते ही पार्वतीजी प्रसन्न हो गयी और हर्ष से उनका शरीर पुलकित हो गया। (याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज मुनि से बोले कि) मैंने उमा का सुन्दर चरित्र सुनाया, अब शिवजी का सुहावना चरित्र सुनो।

जब से सती ने जाकर शरीर त्याग किया, तब से शिवजी के मन मे वैराग्य हो गया (अर्थात् उन्होंने सब सासारिक भोग छोड दिये)। वे सदा श्रीराम का नाम जपने लगे और जहा-तहाँ श्रीराम के गुणो की कथाएँ सुनने लगे।

मोह, मद और काम से रहित, चितानन्द, सुख के धाम शिवजी सब लोको को आनन्द देने वाले भगवान श्रीहरि (श्रीराम) को हृदय मे धारण कर पृथ्वी पर विचरने लगे।

विशेष—प्रथम चौपाई मे वत्यनुप्रास अलकार।

मूल—कतहुं मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुं राम गुन करहिं बखाना ॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना ॥
एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती ॥

नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अविचल हृदयँ भगति कै रेखा॥
प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥
बहु बिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥

दोहा—अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु॥७६॥

शब्दार्थ—कै = की। कृतग्य = उपकार मानने वाले। निरबाहा = निभ सकता है। बिस्तर सहित = विस्तारपूर्वक। सैलजहि = पार्वती को।

भावार्थ :—वे कहीं तो मुनियों को ज्ञान का उपदेश करते और कहीं श्रीराम के गुणों का बखान करते थे। यद्यपि शिवजी ज्ञानी और ज्ञानवान हैं तो भी वे भगवान अपने भक्त (सती) के विरह के दुःख से दुःखी हो रहे हैं।

इस भाँति बहुत सा समय बीत गया और शिवजी की श्रीराम के चरणों में नित नयी प्रीति होने लगी। शिवजी के कठोर नियम, अनन्य प्रेम और उनके हृदय में भक्ति की अटल रेखा देखकर—

उपकार के मानने वाले (क्योंकि उनके कारण ही सती का त्याग हुआ था) कृपालु रूप और शील के भण्डार, महान् तेजपुंज भगवान श्रीराम प्रकट हुए। उन्होंने अनेक प्रकार से शिवजी की सराहना की और कहा कि आपके बिना ऐसा कठिन व्रत कौन निभा सकता है।

श्रीराम ने अनेक प्रकार से शिवजी को समझाया और पार्वती के जन्म का हाल सुनाया (कि सती ने हिमवान् के यहाँ जन्म लिया है) और फिर कृपानिधि श्रीराम ने पार्वतीजी की अत्यन्त पवित्र करनी (अर्थात् तपस्या) का विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

हे शिवजी! अब मेरी विनती सुनिये—जो मुझ पर आपका प्रेम है तो जाकर पार्वती से विवाह कर लीजिए और यह बात मुझे माँगी दीजिए।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
तुम्ह सब भांति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी॥
प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भक्ति बिबेक धर्म जुत रचना॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ॥
अन्तरधान भए अस भाषी। संकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥

दोहा—पारबती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन, दूरि करेहु संदेहु॥७७॥

शब्दार्थ—आयसु = आज्ञा। अन्तरधान भए = गायब हो गये। गिरिहि = हिमाचल को। प्रेरि = कहकर। पठएहु = भिजवाइए।

भावार्थ —शिवजी ने कहा-यद्यपि ऐसा उचित नहीं है, परन्तु स्वामी का वचन भी टाला नहीं जा सकता। हे नाथ! मेरा यही परम धर्म है कि मैं आपकी आज्ञा को सिर पर रख कर उसका पालन करूं।

माता, पिता, गुरु और स्वामी की वाणी को बिना ही विचारे शुभ समझकर मानना चाहिये। फिर आप तो सब भांति मेरे परम हितकारी हैं। हे नाथ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है।

शिवजी के भक्ति, विवेक और धर्म से युक्त वचन सुनकर भगवान् श्रीराम को सन्तोष हुआ और उन्होंने कहा-हे हर! आपका (इस शरीर से अब सती के साथ भेंट न होने का) प्रण पूरा हुआ, अब हमने जो कहा है। उसे हृदय में रखना।

ऐसा कहकर श्रीराम अन्तर्ध्यान हो गये और शिवजी ने उनकी उसी मूर्ति को हृदय में रख लिया। उसी समय सातों ऋषि शिवजी के पास आये। प्रभु महादेवजी उनसे अत्यन्त सुहावने वचन बोले-

आप लोग पार्वती के पास जाकर उनके प्रेम की परीक्षा लीजिए और हिमाचल को कहकर पार्वती को घर भिजवाकर उनके (पार्वती के) सन्देह को दूर कीजिये।

मूल—रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी॥
केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू।

कहत बचन मनु अति सकुचाई। हसिहहु सुनि हमारि जड़ताई।
मनु हठ परा न सुनइ सिखावा। चहत बारि पर भीति उठावा।
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पखन्ह हम चहहिं उड़ाना।
देखहु मुनि अबिबेकु हमारा। चाहिअ सदा सिवहि भरतारा।

दोहा—सुनत बचन बिहसे रिषय, गिरिसभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि, कहहु बसेउ किसु गेह ॥७८॥

शब्दार्थ—गौरि = पार्वती को। मरमु = भेद। जड़ताई = मूर्खता। सिखावा = उपदेश। भरतारा = पति। गिरि संभव = पहाड़ से उत्पन्न। किसु = किसका।

भावार्थ—ऋषियों ने (वहाँ जाकर) पार्वती को कैसी देखा जैसे मूर्तिमान तपस्या ही हो। मुनि बोले-हे शैलकुमारी! सुनो, तुम किस कारण इतना भारी तप कर रही हो?

तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो? अपना सच्चा भेद हमसे क्यों नहीं कहती? (पार्वती ने कहा) बात (मर्म) कहते मन बहुत सकुचाता है। मेरी मूर्खता सुनकर आप लोग हँसेंगे।

मन को हठ सा हो गया है, वह किसी तरह की शिक्षा नहीं सुनता और पानी पर दीवार उठाना चाहता है। (अर्थात् असम्भव कार्य करना चाहता है)। नारदजी ने जो कहा था उसे ही मैंने सत्य मान लिया है और मैं बिना पंख के उड़ना चाहती हूँ। हे मुनियो! आप मेरा अज्ञान तो देखिये कि मैं सदा शिवजी को पति बनाना चाहती हूँ।

कहहु कवन सुखु अस वरु पाएं । भल भूलिहु ठग के बौराए ॥
पच कहे सिवं सती विवाही । पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही ॥
अब सुख सोवत सोचु नहिं, भीख मागि भव खाहिं ।
सहज एकाकिन्ह के भवन, कबहु कि नारि खटाहिं ॥७९॥

भावार्थ—चिन्हा = चिन्ह । सरिस = समान । व्याली = सापो को लपेटे रखने वाला । बौराए = बहकाने पर । अवडेरि = त्यागकर । घाला = नष्ट किया । भव = महादेव । खटाहिं = टिकना ।

शब्दार्थ—नारदजी ने जाकर दक्ष के पुत्रो को उपदेश दिया था जिससे उन्होने फिर (वन से) लौटकर घर का मुह भी नही देखा । उसने ही चित्रकेतु का घर बिगाडा और (उनके उपदेशो से) हिरण्यकशिपु का फिर ऐसा ही हाल हुआ ।

विशेष —अन्तर्कथाएं — १. दक्ष प्रजापति ने अपने पुत्रों से सृष्टि रचने के लिये कहा । वे इसके लिए तप करने वन मे गये । वहा नारदजी के उपदेश से सब विरक्त हो गये और उनमे से एक भी घर नही लौटा । तब दक्ष ने नारद को शाप दिया कि तुम दो घडी से अधिक कही नही ठहरोगे ।

२ चित्रकेतु के करोड रानिया थी, पर पुत्र एक भी नही था । अगिरा मुनि के आशीर्वाद से सबसे छोटी रानी के गर्भ से पुत्र हुआ, पर ईर्ष्यावश अन्य सब रानियो ने विष देकर पुत्र को मार डाला । नारदजी ने आकर उसे पुनर्जीवित कर दिया । बालक ने अपने पूर्व जन्म का हाल सुनाकर राजा को उपदेश दिया । इस तरह उसी के पुत्र से उपदेश कराकर नारद ने चित्रकेतु की बुद्धि बिगाड दी । वह विरक्त होकर वन मे तप करने चला गया ।

३ जब हिरण्यकश्यप की स्त्री गर्भवती थी तब एक दिन नारदजी ने आकर उसे ज्ञान का उपदेश दिया । इससे गर्भ के बालक को ज्ञान हो गया जो प्रहलाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

जो स्त्री–पुरुष नारदजी की शिक्षा सुनते हैं वे घर-बार छोड अवश्य ही भिखारी हो जाते हैं । उनका मन तो कपटी है, पर शरीर सज्जनों का सा दीखता है । वे सभी को अपने समान (भिखारी) बनाना चाहते हैं ।

उनके वचनों पर विश्वास करके ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव ...न, गुण-रहित, निर्लज्ज, बुरे वेषवाला, नरकपालों की माला पहनने ...ा, कुलहीन, बिना घर का, नग्न और शरीर पर साँपों को लपेटे रखने वाला है।

ऐसा पति पाने से कहो तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? तुम उस ठग (नारद) के बहकावे में आकर खूब भूली। पहले पचों के कहने से शिव ने सती से विवाह किया था, लेकिन फिर उसे त्यागकर मरवा डाला।

अब शिव को कोई चिन्ता नहीं रही, वे भीख मागकर खाते हैं और सुख से सोते हैं। ऐसे स्वभाव से ही अकेले रहने वालों के घर भी क्या कभी स्त्रियाँ टिक सकती हैं ?

विशेष---अनुप्रास अलकार। नारद जी घर फोड़ने के लिए बदनाम है। दक्ष के पुत्र नारद जी के उपदेश से विरक्त होकर ससार-त्यागी एव सन्तानोत्पत्ति से विमुख हो गये थे। चन्द्रकेतु लक्ष्मण का पुत्र था, वह कारापथ में राज्य करता था। नारद जी ने घर में फूट फैला कर इनके घर को चौपट कर दिया।

मूल—अजहूँ मानहु कहा हमारा। हम तुम्ह कहु बरु नीक बिचारा॥
अति सुन्दर सुचि सुखद सुसीला। गावहिं बेद जासु जस लीला॥
दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी॥
अस बरु तुम्हहि मिलाउब आनी। सुनत बिहसि कह बचन भवानी॥
सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा॥
कनकउ पुनि पषान ते होई। जारेहुँ सहज न परिहर सोई॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ॥
गुर के बचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही॥
दोहा—महादेव अवगुन भवन, बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम॥80॥

शब्दार्थ---अजहूँ = अब भी। नीक बर = अच्छा वर। श्रीपति = लक्ष्मी का पति। मिलाउब = मिला देंगे। आनी = लाकर। गिरिभव — पर्वत से उत्पन्न। कनकउ = सोना भी। सिधि = सिद्धि।

भावार्थ —अब भी हमारा कहा मानो, हमने तुम्हारे लिए अच्छा

वर सोचा है । वह बहुत ही सुन्दर, पवित्र, सुख का देने वाला और सुशील है, उसके यश और लीला को वेद भी गाते है ।

वह दोषो से रहित, सब गुणो की खान, सपत्तिशाली और वैकुण्ठ मे रहने वाला है । हम ऐसे वर को लाकर तुम से मिला देगे । यह सुनते ही पारवतीजी हसकर बोली —

आपने सत्य ही कहा कि मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है । इसलिये हठ नही छूटेगा, शरीर भले ही छूट जाय । सोना भी पत्थर मे पैदा होता है, इसी कारण वह जलाये जाने पर भी अपने स्वभाव (सुवर्णत्व) को नही छोडता ।

मैं नारदजी के वचनो को नही छोडू गी, चाहे घर बसे या उजडे, इससे मै नहीं डरती । जिसको गुरु के वचनो मे विश्वास नही होता, उसको सुख और सिद्धि स्वप्न मे भी सुलभ नही होती ।

महादेव अवगुणो के घर है और विष्णु सब गुणो के धाम है, पर जिसका मन जिसमें रम गया, उसको तो उसी से काम है ।

विशेष — अनुप्रास और लाटानुप्रास अलकार ।

मूल—जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा । सुनतिउं सिख तुम्हारि धरि सीसा ।।
अब मैं जन्मु संभु हित हारा । को गुन दूषन करैं बिचारा ।।
जौं तुम्हरे हठ हृदयं बिसेषी । रहि न जाइ बिनु किएं बरेषी ।।
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं । बर कन्या अनेक जग माहीं ।।
जन्म कोटि लगि रगर हमारी । बरउं संभु न त रहउं कुंआरी ।।
तजउं न नारद कर उपदेसू । आपु कहहिं सत बार महेसू ।।
मैं पा परउं कहइ जगदम्बा । तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा ।।
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी । जय जय जगदम्बिके भवानी ।।

दोहा—तुम्ह माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु ।।
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषत गातु ।।८१।।

शब्दार्थ — बरेषी — बरेखी, विवाह की बातचीत । कौतुकिअन्ह — खिलवाड करने वाले । रगर — हठ ।

भावार्थ — हे मुनिश्वरो ! यदि आप पहले मिलते, तो आपकी शिक्षा

सिर-माथे रखकर सुनती। परन्तु अब तो मैं अपना जन्म शिवजी के लिए हार चुकी। अब गुण-दोषो का विचार कौन करे ?

और यदी आपके हृदय मे अधिक हठ है तथा विवाह की बातचीत (बरेखी) किये बिना रहा नही जाता, तो ससार मे वर-कन्या बहुत है। खिलवाड करने वालो को आलस्य तो होता नही, (कही और जाकर ही विवाह की चर्चा कीजिये)

मेरा तो करोडो जन्मो तक यही हठ रहेगा कि या तो शिवजी को वरूँगी, नही तो कुमारी ही रहूँगी। यदि स्वय भगवान् शिवाजी भी सौ बार कहें, तो भी नारदजी के उपदेश को नहीं छोड़ूँगी।

जगत् की माता पार्वतीजी कहने लगी—हे मुनीश्वरो ! मैं आपके पैरो पडती हूँ। आप अपने घर जाइये, बडी देर हो गई। शिवजी मे पार्वती का ऐसा प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले—हे जगत् की माता भवानी ! तुम्हारी बार-बार जय हो।

आप माया और शिवजी ईश्वर हैं। आप दोनो सकल विश्व के माता-पिता हैं। (यो कहकर) मुनि पार्वती के चरणो में सिर नवाकर चल दिये। उनके शरीर बार-बार पुलकित हो रहे थे।

विशेष—अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार

मूल—जाइ मुनिन्ह हिमवंतु पठाए। करि बिनती गिरजहि गृह ल्याए ॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई ॥
भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ॥
मनु थिर करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना ॥
तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला ॥
तेहि सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते ॥
अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई ॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे ॥
दोहा—सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्र संभूत सुत, एहि जीतइ रन सोइ ॥८२॥

शब्दार्थ—गिरजहि = पार्वती को। बिरची = ब्रह्मा। बुझाइ = समझा कर। निधन = मृत्यु। संभु सुक्र संभूत = महादेव जी के वीर्य से उत्पन्न।

मुनियो ने जाकर हिमवान को भेजा और वे विनती करके पार्वती को घर ले आये, फिर सप्तऋषियो ने शिवजी के पास जाकर उमा की सारी कथा सुनायी।

पार्वती का प्रेम सुनते ही शिवजी आनन्दमग्न हो गये और सप्तर्षि प्रसन्न होकर अपने घर चले गये। तब सुजान शिवजी मनको स्थिर करके श्रीराम का ध्यान करने लगे।

उसी समय तारक नाम का असुर हुआ, जिसकी भुजाओ का प्रताप, बल और तेज बहुत बडा था। उसने सब लोक और लोकपालो को जीत लिया तथा सब देवता सुख और सम्पत्ति से विहीन हो गये।

वह अजर-अमर था, इसलिये किसी से जीता नही जाता था। जब देवता उससे अनेक प्रकार से युद्ध करके हार गये, तब उन्होने ब्रह्माजी के पास जाकर पुकार मचायी। ब्रह्माजी ने सभी देवताओ को दुखी देखा।

ब्रह्माजी ने सब देवताओ को समझाकर कहा—इस दैत्य की मृत्यु तब होगी जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो। वही इसको लडाई मे जीतेगा।

विशेष – 'लोक लोकपति' में लाटनुप्रास। 'सभु सुक्र सभूत सुत' मे वृत्यनुप्रास। 'अजर अमर' मे छेकानुप्रास।

मूल—मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥
तेहिं तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सबु त्यागी॥
जदपि अहइ असमंजस भारी। तदपि बात एक सुनहु हमारी॥
पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं। करै छोभु संकर मन माही॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिवाहु बरिआई॥
एहि विधि भलेहिं देवहित होइ। मत अति नीक कहइ सबु कोई॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ विषमवान झषकेतू॥

दोहा—सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार।
संभु विरोध न कुसल मोहि बिहसि कहेउ अस मार॥८३॥

शब्दार्थ—मोर = मेरा। मख = यज्ञ। असमजस = द्विविधा। छोभु =

क्षोभ, हलचल। करवाउब = करवा देंगे। बरिआईं = जबरदस्ती। बिषमबान = पाँच बाण धारण करने वाला। झषकेतू = जिनकी ध्वजा में मछली का चिन्ह है – कामदेव। मार = कामदेव।

भावार्थ – मेरा कहा सुनकर उपाय करो। ईश्वर सहायता करेंगे तो काम हो जावेगा। सती ने जो दक्ष के यज्ञ में शरीर त्याग दिया था, उन्होंने अब हिमाचल के घर जाकर जन्म ले लिया है।

उन्होंने शिवजी को पति बनाने के लिए तप किया है और इधर शिवजी सब त्यागकर समाधि में बैठे हैं। यद्यपि इसमें बड़ी भारी दुविधा है (क्योंकि महादेवजी की समाधि का छूटना कठिन है), तो भी हमारी एक बात सुनो।

तुम जाकर कामदेव को शिवजी के पास भेजो। वह जाकर शिवजी के चित्त को चलायमान करे। तब हम जाकर शिवजी के चरणों में सिर नवाकर हठपूर्वक (उन्हें प्रसन्न करके) विवाह करा देंगे।

इस रीति से देवताओं का हित भले ही हो जाय। (यह सुन) सबने कहा - यह विचार बहुत अच्छा है। फिर देवताओं ने बड़े प्रेम से स्तुति की और विषम (पाँच बाण धारण करने वाला तथा मछली के चिन्हयुक्त ध्वजा वाला कामदेव प्रगट हुआ)।

विशेष —कामदेव के पाँच बाण इस प्रकार हैं—

कमल, अशोक, आम, चमेली और नीलकमल।

देवताओं ने अपनी विपत्ति कही। उसे सुन कामदेव ने मन में विचार किया और हँसकर देवताओं से यों कहा कि शिवजी से विरोध करने में मेरी कुशल नहीं है।

शब्दार्थ – सहित सहाई = वसन्त आदि सहायकों के सहित। मार = कामदेव। ध्रुव = निश्चित। वारिचरकेतू = कामदेव। कटक् = सेना।

भावार्थ—तो भी मैं तुम्हारा काम करूँगा, क्योंकि वेद उपकार को परम कहते हैं। जो दूसरों की भलाई के लिए अपना शरीर त्याग करते हैं, उनकी संतजन सदा प्रशंसा किया करते हैं।

यों कह और सबको सिर नवाकर कामदेव अपने फूलों के धनुष को हाथ में लेकर अपने सहायक (वसन्तादि) के साथ (कैलाश पर्वत को) चला। चलते समय कामदेव ने हृदय में ऐसा विचार किया कि शिवजी के साथ विरोध करने में मेरा निःसंदेह मरण होगा।

तब कामदेव ने अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसार को अपने वश में कर लिया। जब मछली के चिन्ह की ध्वजा वाले कामदेव ने कोप किया, तब क्षण-भर में ही वेदों की सारी मर्यादा मिट गयी।

" ब्रह्मचर्य, भाँति-भाँति के व्रत, संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य और विवेक की सारी सेना डरकर भाग गयी (अर्थात् चेतन जीवों में ब्रह्मचर्य आदि का विवेक जाता रहा)।

मूल—भागेउ विवेकु सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे।
सदग्रन्थ पर्वत कन्दरन्हि महुँ जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभरु परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपि कर धनु सरु धरा॥

शब्दार्थ – सुभट = योद्धा। संजुग महि = रणभूमि। कंदरन्हि = गुफाएं। दुरे = छिप गये। करतार = विधाता। खरभरु = खलबली। रतिनाथ = कामदेव। सरु = बाण।

भावार्थ – विवेक अपने (ब्रह्मचर्य आदि) सहायकों सहित भाग गया, क्योंकि उसके (संतोष आदि) अच्छे-अच्छे योद्धा संग्राम-भूमि में पीठ दिखाकर, बड़े-बड़े ग्रन्थरूपी पर्वतों की कन्दरा (रूप। अध्यायों) में उस समय जा छिपे (अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचार आदि सब नष्ट होकर पुस्तकों में लिखे रह गये, उनका आचरण छूट गया)। सारे संसार में खलबली मच गयी (और सब कहने लगे हे विधाता! क्या होने वाला है? कौन हमारा

रखवाला है ? ऐसा दो सिर वाला कौन है (अर्थात् किसके सिर फालतू हैं), जिसके लिए रति के पति कामदेव ने कोप करके धनुष-बाण हाथ में लिया है।

दोहा—जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम ॥८४॥

भावार्थ—संसार में स्त्री पुरुष नाम वाले जितने भी चर-अचर प्राणी थे, वे सब अपनी-अपनी मर्यादा त्याग कर काम के वशीभूत हो गये।

विशेष—'अचर चर' में लाटानुप्रास, 'निज निज' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार।

मूल—सब के हृदयँ मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा॥
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाई। संगम करहिं तलाव तलाई॥
जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहि सकइ सचेतन करनी॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए कामबस समय बिसारी॥
मदन अंध ब्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला॥
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी॥

विस्तारपूर्वक नहीं कही है। सिद्ध, वैरागी, महामुनि और महान् योगी भी काम के वश होकर योगरहित या स्त्री के विरही हो गये।

विशेष — अनुप्रास अलंकार।

मूल—भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥
धरी न काहूँ धीर, सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महुँ॥८५॥

शब्दार्थ — पावँरन्हि = नीच मनुष्यों की। अबला – स्त्रियाँ। जगु = संसार को। दंड – घड़ी। कौतुक = तमाशा। अयं = यह। मनसिज = कामदेव। उबरे = बचे।

भावार्थ — (कामदेव के प्रभाव का वर्णन किया जा रहा है) जब योगीश्वर और तपस्वी भी काम के वश हो गये तब नीच मनुष्यों के लिए तो कहा ही क्या जाय? जो चराचर जगत् को ब्रह्ममय देखते थे, वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। कामदेव का यह कौतुक दो घड़ी तक सारे ब्रह्मांड में व्याप्त रहा।

उस अवसर पर किसी ने भी अपने हृदय में धैर्य धारण नहीं किया, सबके मन पर कामदेव का काबू हो गया। केवल वे ही लोग उस समय बचे रहे जिनकी श्री रामचन्द्रजी ने रक्षा की।

मूल—उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु संभु पहिं गयऊ।
सिवहि बिलोकि ससंकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु संसारू॥
भए तुरत सब जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गएँ मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना॥
फिरत लाज कछु करि नहिं जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितु राजा। कुसुमित नव तरु राजि बिराजा॥
बन उपबन बापिका तड़ागा। परम सुभग सब दिसा बिभागा॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा॥

शब्दार्थ—उभय = दो। पहिं = पास। ससकेउ = डर गया। मारु = कामदेव। जथाथिति = पूर्ववत्,जैसे का तैसा। रुद्रहि = शिवजी को। दुराधर्ष = जिसको पराजित करना कठिन हो। दुर्गम = जिसका पार पाना कठिन हो। फिरत = लौट जाने में। रितुराजा = वसन्त। प्रगटेनि = प्रकट किया। कुसुमित = फूले हुए। राजि = पंक्ति, कतार। बापिका = बावड़ी। तड़ागा = तालाब। सुभग = सुन्दर। मुएहु मन = मरे हुए मनों में भी। मनसिज = कामदेव।

भावार्थ,—जब तक कामदेव शिवजी के पास पहुँचा तब तक दो घड़ी ऐसा ही खेल होता रहा। शिवजी को देखकर कामदेव डर गया, तब सारा संसार फिर ज्यों का त्यों स्थिर हो गया।

तुरन्त ही सब जीव ऐसे सुखी हो गये जैसे मतवाले (नशा पिये हुए) लोग मद उतर जाने पर सुखी होते हैं। शिवजी को देखकर कामदेव भयभीत हो गया, क्योंकि शिव दुराधर्ष (जिसको पराजित करना अत्यन्त ही कठिन) और दुर्गम (जिनको पार करना कठिन है ऐसे) भगवान् हैं।

यदि कुछ न करके लौटा जाता है तो बड़ी लज्जा मालूम होती है, और करते कुछ बनता नहीं। अन्त में मन में मरने का निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरन्त सुन्दर वसन्त ऋतु को प्रकट किया जिनसे वृक्षों की कतारें नये-नये फूलों से लद गयी।

वन, उपवन, बावड़ी-तालाब और सब दिशाओं के विभाग परम सुन्दर लगने लगे। जहाँ-तहाँ मानो प्रेम उमड़ रहा है, जिसे देखकर मरे हुओं के (अर्थात् जिन्होंने शम, दम आदि से इन्द्रियों को रोक रक्खा था उनके) मन में भी काम जाग उठा।

विशेष—उत्प्रेक्षा अलंकार।

मूल—जागइ मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगंध सुमंद मारुत मदन अनल सखा सही॥
बिकसे सरन्हि बहु कंज गुंजत पुंज मंजुल मधुकरा।
कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा॥

शब्दार्थ—मनोभव = कामदेव। सुभगता = सुन्दरता। मारुत = हवा

मदन अनल = कामरूपी अग्नि। कज = कमल। पुंज = समूह। मंजुल = सुन्दर। मधुकरा = भौंरे। रव = शब्द। अपछरा = अप्सराएं। सहीं = सच्चा।

भावार्थ —मरे हुए मनों में भी काम जाग, उठा, वन की सुन्दरता कही नहीं जाती। कामाग्नि का सच्चा मित्र शीतल-मन्द-सुगन्धित पवन चलने लगा। तालाबों में तरह-तरह के कमल खिल गये, जिन पर सुन्दर भौंरो के समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएं गा-गाकर नाचने लगी।

विशेष—हरिगीतिका छन्द और सुन्दर पद-मैत्री।

मूल—सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव कोपेउ हृदयनिकेत ॥८६॥

भावार्थ —कामदेव अपनी सेना सहित अपनी करोड़ों प्रकार की कलाएं करके हार गया, परन्तु एक भी उपाय काम न आया, शिवजी की अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव को क्रोध आ गया।

मूल – देखि रसाल बिटप बर साखा। तेहि पर चढ़ेउ मदनु मन माखा॥
सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने॥
छाड़े बिषम बिसिख उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥
सौरभ पल्लव मदनु बिलोका। भयउ कोपु कंपेउ त्रिलोका॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा॥
हाहाकार भयउ जग भारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी॥
समुझि कामसुखु सोचहिं भोगी। भए अकंटक साधक जोगी॥

शब्दार्थ —रसाल = आम। विटप = वृक्ष। वर = श्रेष्ठ। मनमाखा = मन में क्रोध से भरा हुआ। सुमन चाप = फूलों का बना धनुष। रिस = क्रोध। विसिख = बाण। सौरभ पल्लव आम के पत्ते। उघारा = खोला। छारा = राख। साधक = साधना करने वाले।

भावार्थ—आम के वृक्ष की एक सुन्दर डाली देखकर मन में क्रोध से भरा हुआ कामदेव उस पर चढ़ गया। उसने अपने फूलों के धनुष पर बाण चढ़ाये और बड़े क्रोध से ताक कर उन्हें कान तक ताना।

कामदेव ने तीक्ष्ण पाँच बाण छोड़े, जो शिवजी के हृदय में लगे। तब उनकी समाधि टूट गयी और वे जग गये। भगवान् शिवजी के मन में बहुत क्षोभ हुआ और वे आँखें खोलकर सब दिशाओं में देखने लगे।

आम के पत्तों में (छिपे हुए) कामदेव को देखकर शिवजी को क्रोध हुआ, जिससे तीनों लोक काँप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला जिससे देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया।

संसार भर में भारी हाहाकार मच गया। देवता डर गये और दैत्य सुखी हुए। भोगीजन काम सुखों को याद करके चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कंटक हो गये।

विशेष—अनुप्रास तथा 'सुर असुर' में लाटानुप्रास अलंकार।

मूल—हरिगीतिका छन्द।

जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति वदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई॥
अति प्रेम करि बिनती बिबिध जोरि कर सन्मुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

दोहा—अब तें रति तव नाथ कर, होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसंगु॥८७॥

शब्दार्थ—रति=कामदेव की पत्नी। सही=सान्त्वना देने वाले। अनंग=अनंग (अंग रहित—बिना शरीर के)।

भावार्थ—कामदेव के भस्म हो जाने पर योगी लोग निष्कंटक हो गये, किन्तु कामदेव की स्त्री रति अपने पति की यह दशा (कि वह भस्म कर दिया गया) सुनकर मूर्छित हो गई। वह रोती-चिल्लाती तथा अनेक प्रकार से करुण-विलाप करती हुई शिवजी के पास गई। उसने प्रेम के साथ अनेक प्रकार से प्रार्थना करके शिव के हाथ जोड़े और सामने खड़ी हो गई। शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले कृपालु शिव ने अबला (असहाय स्त्री) को देखा और फिर उसको सान्त्वना देते हुए निम्नांकित वचन कहे—

हे रति! अब तेरे पति का नाम 'अनंग' होगा, और वह बिना शरीर के सबमें व्यापेगा। अब जैसे तेरा पुनि जब मिलेगा, वह बात सुन।

मूल—जब जदुवंस कृष्न अवतारा। होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा। वचनु अन्यथा होइ न मोरा॥
रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहउँ बखानी।
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए॥
सब सुर विष्नु बिरंचि समेता। गए जहां शिव कृपानिकेता॥
पृथक प्रथक तिन्ह किन्हि प्रसंसा। गए प्रसन्न चन्द्र अवतंसा॥
बोले कृपासिंधु वृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह बिधि तुम्ह प्रभु अन्तरजामी। तदपि भगति बस बिनवउँ स्वामी॥

दोहा—सकल सुरन्ह के हृदयँ अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार बिबाहु॥८८॥

शब्दार्थ—कृष्ण तनय = श्रीकृष्ण का पुत्र (प्रद्युम्न) गवनी = चली गई। अपर = दूसरी। बिरंचि = ब्रह्मा। चन्द्र अवतंसा = शशिभूषण शिव। वृषकेतू = शिव। अमर = देवताओ। उछाहु = उत्साह।

भावार्थ.—जब पृथ्वी का बड़ा भारी भार उतारने के लिये यदुवंश में श्रीकृष्ण का अवतार होगा, तब तेरा पति कृष्णजी का पुत्र (प्रद्युम्न) होगा। मेरा यह वचन असत्य नही होगा।

शिवजी की वाणी सुनकर रति लौट गयी। अब मैं दूसरी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूँ। जब देवताओं ने सब समाचार पाये तो ब्रह्मा आदि सब बैकुण्ठ को चले गये।

फिर वहा से ब्रह्मा, विष्णु सहित सब देवता, जहा दया-निधान-शिवजी थे वहा (कैलाश पर) गये। उन सबने शिवजी की अलग-अलग स्तुति की तब, चन्द्रशेखर शिवजी प्रसन्न हो गये।

कृपा के सागर शिवजी ने कहा—हे देवताओ! कहो आप लोग किसलिये आये हैं? (यह सुन) ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभु! आप अन्तर्यामी हैं, तो भी हे स्वामी! भक्तिवश मै आपसे विनती करता हूँ।

हे शंकर! सब देवताओ के मन मे ऐसा परम उत्साह है कि हे नाथ! वे अपने नेत्रो से आपका विवाह देखना चाहते हैं।

मूल—यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन॥
कामु जारि रति कहुँ बरु दीन्हा। कृपासिंधु यह अति भल कीन्हा॥

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ॥
पारबतीं तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा॥
सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी। ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी॥
तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं। बरषि सुमन जय जय सुर साईं॥
अवसरु जानि सप्तरिषि आए। तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी। बोले मधुर बचन छल सानी॥

दोहा—कहा हमार न सुनेहु तब नारद के उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन, जारेउ कामु महेस ॥८९॥

शब्दार्थ—मदन-मद-मोचन=कामदेव के मद को चूर करने वाले (शिव) कामु=कामदेव। सासति=दंड। पसाऊ=कृपा। दुन्दभी=नगाड़े। गिरिभवन=हिमाचल के घर।

भावार्थ—(ब्रह्मा शिव से कह रहे हैं) हे कामदेव के मद को चूर्ण करने वाले शंकर! आप कुछ ऐसा किजिए कि सब लोग इस उत्सव को नेत्र भर कर देखें। हे कृपा सागर! यह आपने बहुत ही अच्छा किया कि कामदेव को भस्म करके आपने रति को वर दे दिया। हे नाथ! श्रेष्ठ स्वामियों का यह सहज स्वभाव होता है कि वे पहले दंड देते है, और फिर (साथ ही) कृपा भी कर देते हैं। (अब निवेदन यह है कि) पार्वती ने अपार तप किया है, अब आप उसे अंगीकार कीजिए।

ब्रह्माजी की यह प्रार्थना सुनकर और प्रभु को अर्थात् रामचन्द्रजी के वचनों को स्मरण करके शिवजी ने कहा—'ऐसा ही हो।' तब देवताओं ने नगाड़े बजाये और पुष्प वर्षा करके कहा—'जय हो! देवताओं के स्वामी की जय हो।'

उपर्युक्त अवसर जानकर सप्तऋषि वहां आये और ब्रह्मा जी ने शीघ्र ही उनको हिमाचल के घर भेज दिया वे पहले वहां गये जहां पार्वती थी। उन्होंने उनसे छल से भरे मधुर वचन कहे—

'उस समय तुम्हारे ऊपर नारद जी के उपदेश का प्रभाव था अतः तुमने हमारी बात नहीं सुनी। अब तो तुम्हारा प्रण झूठा हो गया, क्योंकि महादेव जी ने काम को ही भस्म कर डाला।'

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी। उचित कहेहु मुनिवर बिग्यानी ॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा। अब लगि संभु रहे सविकारा ॥
हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी। प्रीति समेत कर्म मन बानी ॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपा निधि ईसा ॥
तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अबिबेकु तुम्हारा ॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
गए समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस की नाई ॥

दोहा—हियँ हरषे मुनि बचन सुनि देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानिहि नाइ सिर, गए हिमाचल पास ॥९०॥

शब्दार्थ – सविकारा = विकार युक्त। अनवद्य = अनिन्द्य। ईसा = भगवान। मारा = कामदेव को। हर = शिवजी ने। हिम = पाला। असि = ऐसा ही। नाईं = न्याय।

भावार्थ —यह सुन भवानी मुसकराकर बोलीं–हे विज्ञानी मुनिवरो! आपने उचित ही कहा। तुम्हारी समझ से शिवजी ने कामदेव को अब जलाया है, तो अब तक क्या वे कामी (विकारयुक्त) ही रहे?

हमारी समझ में तो शिवजी सदा से ही योगी है और अजन्मा, निन्दा-रहित, काम-रहित और भोग-हीन हैं। जो मैंने ऐसा ही जानकर प्रीति-सहित; कर्म, मन और वाणी से शिवजी की सेवा की है—

तो हे मुनिश्वरो! सुनो, कृपानिधान भगवान् मेरे प्रण को अवश्य ही सत्य करेंगे और तुमने जो कहा कि शिव ने काम को जला दिया है यही तुम्हारा बडा भारी अज्ञान है।

हे तात! अग्नि का तो यह सहज स्वभाव ही है कि पाला उनके समीप कभी नहीं जाता और जो पास जाय तो वह अवश्य ही नष्ट हो जाता है। महादेवजी और काम के विषय में यही समझना चाहिये।

पार्वतीजी के वचन सुनकर और उनका प्रेम तथा विश्वास देखकर मुनि हृदय में बड़े प्रसन्न हुए। वे भवानी को सिर झुकाकर चल दिये और हिमाचल के पास पहुंचे।

मूल – सबु प्रसंगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुखु पावा।
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवंत बहुत सुखु माना॥
हृदयँ बिचारि संभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिए बोलाई॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई॥
पत्री सप्तरिषिन्ह सोइ दीन्ही। गहि पद बिनय हिमाचल कीन्ही॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हि सो पाती। बाचत प्रीति न हृदय समाती॥
लगन बाचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मंगल कलस दसहुँ दिसि साजे॥

दोहा – लगे सँवारन सकल सुर, बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मंगल सुभद, करहिं अपछरा गान॥९१॥

शब्दार्थ—मदन दहन = कामदेव का भस्म होना। सुनखतु = अच्छा नक्षत्र। सोचाई = शोधवा कर। पत्री = लग्नपत्रिका। गहि = पकड़ कर। पाती = पत्रिका। अज = ब्रह्मा। बाहन–सवारी। सुभद = सुन्दर (अति शुभ)।

भावार्थ—मुनियों ने पर्वतराज हिमाचल को सब हाल सुनाया। कामदेव का भस्म होना सुनकर पर्वतराज बहुत दुखी हुए। फिर मुनियों ने रति के वरदान की बात कही, जिसे सुनकर हिमवान् ने बहुत सुख माना।

हृदय में शिवजी की प्रभुता का विचार कर हिमाचल ने श्रेष्ठ मुनियों को आदरपूर्वक बुला लिया और उनसे शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घड़ी शोधवाकर वेद की विधि के अनुसार शीघ्र ही लग्न निश्चय कराकर लिखवा लिया।

फिर वह लग्नपत्रिका सप्तर्षियों को दे दी और हिमाचल ने चरण पकड़ कर उनकी विनती की। उन्होंने जाकर वह पत्रिका ब्रह्माजी को दी, जिसको पढ़ते समय उनके हृदय में प्रेम समाता न था।

ब्रह्माजी ने लग्न पढ़कर सबको सुनाया। उसे सुनकर सब मुनि और देवताओं के समूह बड़े प्रसन्न हुए। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी, बाजे बजने लगे और दसों दिशाओं में मंगल-कलश सजने लगे।

सब देवता अपने भाँति-भाँति के विमान और वाहन सजाने लगे। सुन्दर मांगलिक शकुन होने लगे और अप्सराएं गाने लगीं।

विशेष—अनुप्रास अलकार ।

मूल—सिवहि सभुगन करहिं सिगारा । जटा मुकुट अहिमौर सँवारा ॥
कुंडल कंकन पहिरे व्याला । तन विभूति पट केहरि छाला ॥
ससि ललाट सुन्दर सिर गगा । नयन तीनि उपवीत भुजगा ॥
गरल कंठ उर नर सिर माला । असिव वेष सिवधाम कृपाला ॥
कर त्रिसूल अरु डमरु विराजा । चले वसहँ चढि वाजहिं वाजा ॥
देखि सिवहि सुरत्रिय मुसुकाहीं । वर लायक दुलहिनि जग नाहीं ॥
विष्नु विरंचि आदि सुरब्राता । चढि चढि वाहन चले वराता ॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा । नहिं वरात दूलह अनुरूपा ॥

दोहा—विष्नु कहा अस विहसि तब, वोलि सकल दिसिराज ।
विलग विलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥९२॥

शब्दार्थ—अहि मौर = सापो का मौर । ककन = कडे । व्याला = साप । विभूति = राख,भस्म । केहरि-छाला = वाघम्बर । उपवीत = जकः। गरल = विष, जहर । असिव = अशुभ । डमरू = डमरू—एक वाजा जिसे शिवजी वजाते हैं । वसह = वैल । सुरब्राता = देवताओ का समूह । दिसिराज = दिक्पाल ।

भावार्थ —शिवजी के गण उनका शृ गार करने लगे । उन्होंने जटाओ का मुकुट वनाकर उस पर-साँपो का मौर सजाया । शिवजी ने साँपो के ही कुण्डल और ककण पहने, शरीर मे भभूत रमाई और वाघम्बर के वस्त्र पहिने ।

शिवजी के ललाट पर सुन्दर चन्द्रमा और सिर पर गगाजी शोभायमान थी । उनके तीन नेत्र थे और सापो का जनेऊ था, कठ मे विष और छाती पर नरमुण्डो की माला थी । इस प्रकार शिवजी का वेष अशुभ होने पर भी वे कृपालु कल्याण के धाम हैं ।

उनके एक हाथ मे त्रिशूल और दूसरे मे डमरू सुशोभित है । (इस प्रकार सव शृ गार कर) शिवजी वैल पर चढकर चले, तव वाजे वजने लगे । शिवजी को देखकर देवताओ की स्त्रियाँ मुसकरा रही हैं (और कहती हैं कि) इस सुन्दर दूल्हे के योग्य दुलहिन ससार भर मे नही है ।

विशेष :—भाषा की व्यजना दृष्टव्य है ।

विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपनी-अपनी सवारियों पर चढ़कर बरात में चले। देवताओं का समाज सब प्रकार से अनुपम (परम सुन्दर) था, तो भी दूल्हे के योग्य बरात नहीं थी।

तब विष्णु भगवान् ने सब दिक्पालों को बुलाकर और हँसकर कहा—सब अपने-अपने समाज (दल) सहित अलग-अलग चलो।

मूल—बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
विष्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥
मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं। हरि के बिंग्य बचन नहिं जाहीं॥
अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥
सिव अनुसासन सुनि सब आये। प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए॥
नाना बाहन नाना बेषा। बिहसे सिव समाज निज देखा॥
कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहु॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तन खीना॥

हरिगीतिका छन्द—

तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें॥
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै॥

सोरठा—नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥९३॥

शब्दार्थ—बर = दूल्हा। अनुहारि = अनुसार, मुताबिक। करैहहु = कराओगे। बिलगाने = अलग हो गये। बिंग्य बचन = चोखे मजाक के बचन। भृंगिहि = भृंगी नामक द्वारपाल को। प्रेरि = भेजकर। टेरे = बुलवा लिया। नाए = झुकाए। खीना = दुबला-पतला। पीन = मोटा। अपावन = अपवित्र। सद्य = ताजा। सोनित = खून। खर = गधा। सृकाल = सियार। जिनस = जिन्स (वर्ग या प्रकार)। जमात = समूह। तरंगी = मौजी।

यह सुन शिवजी मन-ही-मन मुसकराये, उनके मन से भगवान् के व्यग वचन नहीं जाते। अपने प्रिय के अत्यन्त प्रिय वचन सुनते ही महादेवजी ने भृगी को भेजकर अपने गणो को बुलवा लिया।

शिवजी की आज्ञा सुनकर सब गण चले आये और उन्होने स्वामी के चरण-कमलो मे सिर नवाया, भाँति-भाँति के वेष वाले अपने समाज को देखकर शिवजी हसे।

किसी के मुख ही नही और किसी के बहुत से मुख है, कोई बिना हाथ-पैर का है तो किसी के कई हाथ-पैर हैं। किसी के बहुत सी आखें हैं तो कोई नेत्रहीन ही है। कोई बहुत मोटा-ताजा है तो कोई बहुत ही दुबला-पतला है।

कोई दुबला और कोई बहुत मोटा, कोई पवित्र और कोई अपवित्र वेष धारण किये हुए है। उनके भयकर आभूषण हैं और सबके हाथो मे कपाल हैं। वे सब ताजा खून अपने पर लगाये हुए है और गधे, कुत्ते, सूअर और सियार के से उनके मुख हैं। इस तरह गणो के अनगिनत वेषो को कौन गिन सकता है? बहुभाँति के भूत, प्रेत, पिशाच और योगनियो की जमात थी, जिनका वर्णन करते नही बनता।

सब भूत बडे मौजी है, वे नाचते और गीत गाते हुए चल रहे है। वे देखने मे बडे बेढगे जान पडते हैं और बडे ही विचित्र ढग से बोलते है।

विशेष '—अनुप्रास और लाटानुप्रास अलकार।

मूल —जस दूलह तसि बनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग जाता।
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहीं जाइ बखाना ॥
सैल सकल जहँ लगि जग माहीं। लघु बिसाल नहिं बरनि सिराहीं ॥
बन सागर सब नदीं तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ॥
कामरूप सुन्दर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी ॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहिं मंगल सहित सनेहा ॥
प्रथमहिं गिरि बहु गृह सँवराए। जथा जोगु तहँ तहँ सब छाए ॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरंचि निपुनाई ॥

शब्दार्थ —कौतुक – तमाशा। बिताना = मडप। सैल = पर्वत। सिराही = समाप्त होना, पार मिलना। नेवत पठावा = न्योता भेजा।

वे देवताओं की सेना देखकर मन में प्रसन्न हुए और भगवान् विष्णु को देखकर बहुत ही सुखी हुए, पर जब शिवजी के समाज को देखने लगे तब तो उनके सब वाहन डरकर भाग चले।

जो चतुर थे वे धीरज धरकर वहां डटे रहे, पर बालक तो सब अपने प्राण लेकर भागे। उनके घर आने पर जब माता पिता उनसे बरात का समाचार पूछते हैं, तब वे भय से कांपते हुए शरीर से ऐसे वचन कहते हैं—

क्या कहें, कोई बात कही नहीं जाती। यह बरात है या यमराज की सेना? दूल्हा पागल है और बैल पर सवार है तथा सर्प, कपाल और राख ही उसके गहने हैं।

दूल्हे के शरीर पर राख लगी है, सांप और कपाल के गहने हैं। वह नंगा, जटाधारी और भयंकर है। उसके साथ भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियां और भयंकर मुख वाले राक्षस हैं। जो बरात देखकर जीते रहेंगे, सचमुच उनके बड़े पुण्य हैं और वे ही उमा का विवाह भी देखेंगे। लड़कों ने घर-घर यही बात कही।

शिवजी का समाज जानकर सब लड़कों के माता-पिता मुसकराते हैं। उन्होंने अनेक प्रकार से लड़कों को समझाया कि निडर हो जाओ डर की कोई बात नहीं है।

विशेष—'बाल बुझाए विविध विधि' में वृत्यनुप्रास तथा 'निडर होहु डर नाहि' में लाटानुप्रास। की भय-प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक चित्र है।

मूल—लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैनां सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कंचन थार सोह वर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट वेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा। गए महेसु जहां जनवासा॥
मैना हृदयं भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥
अधिक सनेहं गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं विधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥

हरिगीतिका छद –

कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहिं सुन्दरता दई ।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई ॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं ।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं ॥

दोहा—भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि ।
करि बिलापु रोदति बदति, सुता सनेहु सँभारि ॥९६॥

शब्दार्थ—अगवान = अगवानी करने वाले । सुहाए = सुन्दर । पानी = हाथ । परछन = स्त्रियो का एक वैवाहिक लोकाचार जिसमे वे वर को दही-अक्षत का टीका लगातीं और मूसल तथा बट्टा उस पर से घुमाती है । हरहि = शिवजी को । रुद्रहि = शिवजी को । अबलन्ह = स्त्रिया । पैठी = घुस गई । बारी = जल, आसू । जड = मूर्ख । सुरतरुहिं = कल्पवृक्ष मे । घरू जाउ = घर उजड जाय । गिरिनारि मैना । समारि = याद करके ।

भावार्थ—जो लोग अगवानी करने गये थे, वे बरात को ले आये और उन्होने सबको सुन्दर जनवासा ठहरने को दे दिया । पार्वती की माता मैना ने शुभ आरती सजायी और उनके साथ की स्त्रिया उत्तम मगल गीत गाने लगी । हाथो मे सुन्दर सोने का थाल सजा कर मैना हर्ष के साथ शिवजी का परछन करने चली । जब स्त्रियो ने महादेव जी को भयानक वेष मे देखा, तब उनके हृदय मे बडा भारी भय उत्पन्न हो गया । अत्यन्त भय के कारण वे भाग कर घर मे घुस गई और शिवजी जहा जनवासा था, वहा चले गये, मैना के हृदय मे बडा भारी दु ख हो गया । उसने पार्वती को अपने पास बुलाकर अत्यन्त स्नेह से अपनी गोद मे बिठा लिया और अपने नीलकमल के समान नेत्रो मे आसू भर कर कहा–जिस विधाता ने तुमको इतना सुन्दर रूप दिया, उस मूर्ख ने तुम्हारे दुल्हे को बावला कैसे बना दिया ?

जिस विधाता ने तुम्हे सुन्दरता दी, उसने तुम्हारे लिए बावला वर कैसे बनाया ? जो फल कल्पवृक्ष मे लगाना चाहिए, वह जबरदस्ती बबूल मे लग रहा है । मैना आवेश मे आकर कहती है—मैं तुम्हे लेकर पहाड से गिर पडूगी, आग मे जल मरूंगी या समुद्र मे कूद पडूगी' चाहे घर उजड जाय,

चाहे संसार भर में बदनामी हो, पर जीते-जी मैं तुम्हारा विवाह इस बावले वर से नहीं करूँगी।

गिरि-पत्नी मैना को दुखी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। मैना ने अपनी पुत्री के स्नेह का स्मरण करके विलाप करना, रोना और कहना आरम्भ कर दिया।

विशेष—अनुप्रास और लुप्तोपमा अलंकार।

मूल—नारद कर मैं काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा।
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥
साँचेहु उनके मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया।
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा॥
जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदु बानी।
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू।
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥

हरिगीतिका छन्द—

जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं॥
सुनि उमा बचन बिनीत कोमल सकल अबला सोचहीं।
बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं॥

लाज है और न ही किसी का डर, इसीलिये ऐसे काम करते हैं। भला, बाँझ स्त्री प्रसव की पीडा को क्या जाने ? (अगर उनके यहाँ लडकी होती और उसे ऐसा वर मिलता, तब वे जानते)।

विशेष—"बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा", कहावत का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

माता को दुखी देखकर पार्वतीजी विवेकयुक्त कोमल वाणी बोली—हे माता ! जो विधाता ने रचा है, वह टल नही सकता। यह विचारकर आप सोच मत करो।

जो मेरे भाग्य मे बावला ही पति लिखा है तो किसी को दोष क्यो लगाया जाय ? क्या विधाता के अक तुमसे मिट सकते है ? हे माता ! वृथा अपने सिर कलक मत लो।

हे माता ! अपने सिर कलक मत लो, शोक का त्याग करो; उसके लिए यह अवसर नही है। जो कुछ सुख और दु ख मेरे भाग्य मे लिखा है उसे मैं जहाँ जाऊँगी, वही पाऊँगी। पार्वतीजी के ऐसे विनीत और कोमल वचन सुनकर सब स्त्रियाँ सोचने लगी और अनेक प्रकार के विधाता को दोष लगाकर आँखो से आँसू बहाने लगी।

मूल—दोहा—तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिन गिरि, गवने तुरत निकेत ॥९७॥

शब्दार्थ—तुहिनगिरि = हिमाचल। निकेत = घर।

भावार्थ—उस समय यह सब समाचार सुनकर हिमाचल नारद जी और सप्तर्षियो को साथ लेकर अपने घर गये।

मूल—तब नारद सब ही समुझावा। पूरुब कथा प्रसग सुनावा।
मयना सत्य सुनहु मम बानी। जगदम्बा तव सुता भवानी ॥
अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि। सदा संभु अरधग निवासिनि।
जग संभव पालन लय कारिनि निज इच्छा लीला बपु धारिनि ॥
जनमीं प्रथम दच्छ गृह जाई। नामु सती सुन्दर तनु पाई।
तहँहुँ सती संकरहि बिबाहीं। कथा प्रसिद्ध सकल जग माहीं ॥
एक बार आवत सिव संगा। देखेउ रघुकुल कमल पतंगा।
भयउ मेरे सिव कहा न कीन्हा। भ्रम बस बेषु सीय कर लीन्हा ॥

हरिगीतिका छन्द—

सिय वेषु सतीं जो कीन्ह तेहि अपराध संकर परिहरीं।
हर बिरह जाइ बहोरि पितु कें जग्य जोगानल जरीं॥
अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया।
अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया॥

दोहा—सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद॥९८॥

शब्दार्थ—पूरुब = पूर्व जन्म की। भवानी = भव की पत्नी, पार्वती। अजा = अजन्मा। भजव = उत्पत्ति। लय = संहार। लीला वपु = लीला शरीर। पतंग = सूर्य। परिहरी = त्याग दी। छन – क्षण भर। ब्यापेउ = फैल गया। बहोरि = फिर।

भावार्थ—तब नारद जी ने सबको समझाया और उन्हें पूर्व जन्म की कथा सुनाई। उन्होंने कहा—हे मैना! तुम मेरी सत्य बात सुनो, तुम्हारी पुत्री भवानी (पार्वती) साक्षात् जगज्जननी है। यह अजन्मा, अनादि और अविनाशिनी शक्ति है, यह शिवजी के अर्धांग में निवास करती है। यह संसार की उत्पत्ति पालन और संहार करने वाली है, और इच्छानुसार लीला करने के लिए शरीर धारण करने वाली है।

पहले इसने दक्ष के घर में जन्म लिया था, तब इसका नाम सती था, और उस समय इसने बहुत ही सुन्दर शरीर पाया था, तब भी सती ने शंकर के साथ ही विवाह किया था। यह कथा सारे संसार में प्रसिद्ध है। किन्तु एक बार जब यह शिवजी के साथ आ रही थी, तब मार्ग में इसने रघुकुलरूपी कमल को खिलाने वाले सूर्य रामचन्द्र जी को देखा। उस समय इसे मोह हो गया और इसने शिवजी का कहना न मान कर भ्रमवश सीता का वेष धारण कर लिया।

सती ने जो सीता का वेष धारण कर लिया था, इसी अपराध के कारण शंकर ने उसे त्याग दिया। तब उसने शिवजी के वियोग से अपने पिता के यज्ञ में जाकर योगाग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया। अब उसी ने तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पति के लिए कठोर तप किया है, ऐसा जानकर सब सन्देह छोड़ दो। पार्वती तो सदा ही शंकर की प्रिया है।

तब (इस प्रकार) नारद जी के वचनों को सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षण भर में यह समाचार सारे नगर में फैल गया।

विशेष—अनुप्रास, रूपक और पुनरुक्तिप्रकाश अलकार।

मूल—तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बन्दे।
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने॥
लगे होन पुर मंगलगाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना।
भाँति अनेक भई जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु व्यवहारा॥
सो जेवनार कि जाइ बखानी। बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी।
सादर बोले सकल बराती। बिष्नु बिरंचि देव सब जाती॥
बिबिध पाँति बैठी जेवनारा। लागे परुसन निपुन सुआरा।
नारि बृन्द सुर जेवँत जानी। लगीं देन गारीं मृदु बानी॥

हरिगीतिका छन्द—

गारीं मधुर स्वर देहिं सुन्दरि बिंग्य बचन सुनावहीं।
भोजनु करहिं सुर अति बिलबु बिनोदु सुनि सचु पावहीं।
जेवँत जो बढ्यो अनंदु सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो।
अचवाँइ दीन्हे पान गवने बास जहँ जाको रह्यो॥

दोहा—बहुरि मुनिन्ह हिमवंत कहुँ लगन सुनाई आइ।
समय बिलोकि बिबाह कर, पठए देव बोलाइ॥९९॥

शब्दार्थ-अनदे = आनन्द मे मग्न हो गये। जुबा = युवा। हाटक घट = सोने के कलश। सूपसास्त्र = पाकशास्त्र। सुआरा = रसोइए, परोसने वाले। सचु = सुख। अचवाँई = हाथ-मुँह धुलवाकर।

भावार्थ – (नारद जी के वचन सुनकर) मैना और हिमवान् आनन्द-मग्न हो गये और उन्होंने बार-बार पार्वती के चरणों की वन्दना की। नारदजी की बात से नगर के सभी लोग स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध बहुत प्रसन्न हुए। नगर में मगल गीत गाये जाने लगे और सबने अनेक प्रकार के स्वर्ण कलश सजाये। पाकशास्त्र के नियमों के अनुकूल अनेक भाँति की ज्योनार (रसोई) हुई-भोजन-सामग्री तैयार की गई। जिस घर में स्वय माता भवानी रहती हो भला वहाँ की भोजन-सामग्री का क्या वर्णन किया जा सकता है?

हिमवान् ने आदरपूर्वक सब बरातियों को विष्णु, ब्रह्मा और सब जाति के देवताओं को बुलवा लिया। भोजन करने वालों की अनेक पंक्तियाँ बैठीं। चतुर रसोइए भोजन-सामग्री परोसने लगे। सुर-वृन्द को जीमते देख कर स्त्री वृन्द ने कोमल वाणी से गालियाँ गाईं।

सब सुन्दर स्त्रियां मीठे स्वर में गालियां गाने लगीं और व्यंग्य-वचन सुनाने लगीं। देवगण व्यंग्य-विनोद सुनकर सुख का अनुभव करते हैं, इसलिए वे भोजन करने में चलाकर देर लगा रहे हैं—धीरे-धीरे भोजन कर रहे हैं। भोजन करते समय जिस आनन्द की वृद्धि हुई, वह करोड़ों मुखों से भी नहीं कहा जा सकता। भोजन कर चुकने पर सबको आचमन कराकर (मुँह-हाथ धुलवा कर) पान दिये गये। तदनन्तर सब बराती, जो जहाँ ठहरे थे, वहां चले गये।

फिर मुनियों ने आकर हिमवान् को लग्न-पत्रिका सुनाई (विवाह का समय सूचित किया) और विवाह का समय (सन्निकट) देखकर सब देवताओं को बुला भेजा।

मूल—बोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सबहि जथोचित आसन दीन्हे।
बेदी बेद-बिधान सँवारी। सुभग सुमंगल गावहिं नारी॥
सिंघासनु अति दिब्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा।
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥
बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगारु सखीं लै आईं।
देखत रूपु सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है॥
जगदंबिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा।
सुन्दरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी॥

शब्दार्थ—भव भामा = शिवजी की पत्नी। मरजाद = सीमा। बदन = मुख।

भावार्थ—सब देवताओं को आदर-सहित बुलाकर सबको यथा-योग्य आसन दिये। वेद की रीति से वेदी सजाई गयी और सुन्दर स्त्रियाँ मंगल-गीत गाने लगीं।

वेदिका पर एक अति सुन्दर दिव्य सिंहासन था, जिसकी विचित्र बनावट का वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे स्वयं ब्रह्माजी ने बनाया था।

अपने स्वामी श्रीराम का स्मरण कर और ब्राह्मणो को सिर नवाकर शिवजी उस सिंहासन पर बैठ गये ।

फिर मुनीश्वरो ने उमा को बुलाया । सखियाँ शृ गार करके उन्हे लिवा लाई । पार्वतीजी के रूप को देखते ही सब देवता मोहित हो गये (जहा देवताओ का यह हाल था फिर भला) ससार मे ऐसा कौनसा कवि है जो उस छवि (सुन्दरता) का वर्णन कर सके ।

पार्वतीजी को जगदम्बा और शिवजी की पत्नी समझकर सब देवताओ ने मन-ही-मन प्रणाम किया । पार्वतीजी सुन्दरता की मर्यादा है, उनकी शोभा का बखान करोडो मुखो से भी नही हो सकता ।

मूल—कोटिहु बदन नहि बनै बरनत जग जननि सोभा महा ।
सकुचहि कहत श्रुति सेष सारद मन्दमति तुलसी कहा ।।
छविखानि मातु भवानि गवनीं मध्य मडप सिव जहाँ ।
अवलोकि सकहि न सकुच पति पद कमल मनु मधुकरु तहा ।।

शब्दार्थ—बदन = मुख । सारद = शारदा, सरस्वती । मधुकरु=भौंरा ।

भावार्थ – जगज्जननी पार्वती की महती शोभा का वर्णन करोडो मुखो से भी नही किया जा सकता । उनकी शोभा का वर्णन करते हुए वेद, शेषनाग और सरस्वती तक भी सकुचाते है, तब फिर मद मति तुलसी तो किस गिनती मे है ? सौन्दर्य की खान माता भवानी मडप के बीच मे, जहाँ शिवजी थे, वहा गई सकोच के कारण वह अपने पति (शिवजी) के चरण-कमलो को देख नही सकी, किन्तु उनका मन रूपी भौरा तो वही था । (मन पति-चरणो मे था और सिर लज्जा से अवनत था) ।

विशेष—छन्द हरिगीतिका, अनुप्रास अलकार ।

मूल—दोहा—मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि ।
कोउ सुनि ससय जनि करै, सुर अनादि जियँ जानि ।।१००।।

भावार्थ—मुनियो की आज्ञा से शिव-पार्वती ने गणेश-पूजन किया । कोई मनमे यह शका न करे कि गणेश जी तो शिव-पार्वती की सतान है, विवाह से पूर्व ही वे कहाँ से आगये, क्योकि मन मे ऐसा समझना चाहिए कि देवता तो अनादि हैं ।

मूल—जसि बिबाह कै बिधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपीं जानि भवानी॥
पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हियँ हरषे तब सकल सुरेसा॥
वेदमंत्र मुनिवर उच्चरहीं। जय जय जय संकर सुर करहीं॥
बाजहिं बाजन विविध विधाना। सुमनवृष्टि नभ भै बिधि नाना॥
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥
दासीं दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा॥
अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥

हरिगीतिका छंद—

दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिम भूधर कह्यो॥
का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो॥
सिवँ कृपासागर ससुर कर संतोषु सब भाँतिहिं कियो॥
पुनि गहे पद पाथोज मयनाँ प्रेम परिपूरन हियो॥

दोहा—नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बर देहु॥१०१॥

शब्दार्थ—कुस = कुश (एक प्रकार का घास)। पानी = हाथ। समरपीं = सौंप दीं। तुरग = घोड़ा। नागा = हाथी। कनक भाजन = सोने के बर्तन। दाइज = दहेज (विवाह के अवसर पर कन्या-पक्ष की ओर से वर-पक्ष को दिया जाने वाला धन और सामान)। पूरन काम = पूर्ण काम (जिनकी सभी इच्छाएँ पूरी हो चुकी हों), निरीह। पाथोज = कमल। गृह-किंकरी = घर की दासी। जाना = यान, गाड़ी।

विवाह की जैसी रीति वेदों में कही गई है, महामुनियों ने वह सभी रीति करवायी। पर्वतराज हिमाचल ने हाथ में कुश लेकर तथा कन्या का हाथ पकड़कर उसे भवानी (शिव-पत्नी) जान शिवजी को समर्पण किया।

जब महादेवजी ने पार्वती का पाणिग्रहण किया, तब सब देवता हृदय में बहुत प्रसन्न हुए। श्रेष्ठ मुनिगण वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगे और देवगण शिवजी की जय-जयकार करने लगे।

अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और आकाश से नाना भाँति के पुष्पों की वर्षा होने लगी। शिव-पार्वती का विवाह हो गया, (इससे) सब लोकों में आनन्द छा गया।

दासी, दास, घोड़े रथ, हाथी, गाय, वस्त्र, मणि आदि अनेक प्रकार की चीजें, अन्न एव सोने के बर्तन गाड़ियों मे लदवाकर दहेज मे दिये, जिसका वर्णन नहीं हो सकता ।

अनेक प्रकार का दहेज देकर और फिर हाथ जोड़कर पर्वतराज हिमाचल ने कहा – हे शकर ! आप पूर्ण काम हैं, मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? इतना कहकर वे शिवजी के चरणकमल पकड़ कर रह गये तब कृपा के सागर शिवजी ने सब प्रकार से अपने ससुर का समाधान किया । फिर प्रेम से परिपूर्णहृदय मैनाजी ने शिवजी के चरणकमल पकड़े ।

(और कहा) हे नाथ ! उमा मुझे प्राणो के समान प्यारी है, आप इसे अपने घर की टहलनी बनाइयेगा और आप इसके सब अपराध क्षमा करते रहेंगे । प्रसन्न होकर मुझे यह वर दीजिये ।

मूल—बहु बिधि संभु सासु समुझाई । गवनी भवन चरन सिर नाई ।
जननीं उमा बोलि तब लीन्हीं । लै उछंग सुन्दर सिख दीन्ही ।।
करेहु सदा संकर पद पूजा । नारिधरमु पति देउ न दूजा ।
बचन कहत भरे लोचन बारी । बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ।।
कत बिधि सृजीं नारि जगमाहीं । पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ।
भै अति प्रेम बिकल महतारी । धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी ।।
पुनि पुनि मिलति परति गहि चरना । परम प्रेमु कछु जाइ न बरना ।
सब नारिन्ह मिलि भेटि भवानी । जाइ जननि उर पुनि लपटानी ।।

हरिगीतिका छन्द—

जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहूँ दईं ।
फिरि फिरि बिलोकति मातु तन तब सखीं लै सिव पहिं गईं ।।
जाचक सकल संतोषि संकरु उमा सहित भवन चले ।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसान नभ बाजे भले ।।

दोहा—चले संग हिमवन्तु तब, पहुँचावन अति हेतु ।
विविध भाँति परितोषु करि, बिदा कीन्ह वृषकेतु ।।१०२।।

शब्दार्थ – उछंग = गोद । सिख = शिक्षा, उपदेश । देउ = देवता । बारी = जल (आँसू) । तन = तरफ । पहिं = पास । निसान = नगाड़े । हेतु = प्रेम । वृषकेतु = शिव ।

भावार्थ – शिवजी ने अनेक तरह से अपनी सास को समझाया। तब वह शिवजी के चरणों में सिर झुकाकर घर चली गई। फिर माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद में बिठा कर यह उपदेश दिया –

हे पार्वती ! तू सदा शिवजी के चरणों की पूजा करना। स्त्रियों का यही धर्म है। उनके लिए पति ही देवता हैं और कोई देवता नहीं है। इस प्रकार की बात कहते कहते मैना की आँखों में आँसू भर आये और उन्होंने अपनी पुत्री को छाती से लगा लिया, फिर वे बोली कि विधाता ने संसार में स्त्री-जाति को पैदा ही क्यों किया ? पराधीन को स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। माता पुत्री के स्नेह में अति विकल हो गईं, परन्तु कुसमय जानकर उसने धीरज धर लिया।

उमा बार-बार मिलती है और माता के चरणों को पकड़ कर गिर पड़ती है। बड़ा ही प्रेम है, कुछ वर्णन नहीं किया जाता। इसके बाद पार्वती सब स्त्रियों से मिली-भेंटी और फिर अपनी माता की छाती से जा लिपटी।

पार्वती जब माता से पुन मिलकर चली, तब सबने उसे समयोचित आशीर्वाद दिया। जब सखियाँ पार्वती को शिवजी के पास ले गई, तब वह बार-बार मुड़-मुड़कर माता की ओर देखती जाती थी। महादेव जी सब याचकों को संतुष्ट कर पार्वती के साथ घर को अर्थात् कैलाश को चले गये। उस समय सब देवता प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा करने लगे और आकाश में सुन्दर नगाड़े (बाजे) बजने लगे।

तब अत्यन्त स्नेह के साथ हिमाचल उन्हें पहुँचाने के लिए साथ गये, किन्तु महादेव जी ने उन्हें अनेक प्रकार से संतोष दिलाकर विदा किया।

विशेष—मातृ-हृदय की सुन्दर झलक के साथ पुत्री के प्रथम वियोग का सुन्दर चित्र इन पंक्तियों में अंकित है।

मूल—तुरत भवन आए गिरिराई। सकल सैल सर लिए बोलाई।
आदर दान विनय बहुमाना। सब कर विदा कीन्ह हिमवाना॥
जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए।
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी॥
करहिं विविध विधि भोग विलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।
हर गिरिजा विहार नित नयऊ। एहि विधि बिपुल काल चलि गयऊ॥

तब जनमेउ षटबदन कुमारा । तारकु असुरु समर जेहिं मारा ।
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । षन्मुख जन्मु सकल जग जाना ॥

हरिगीतिका छन्द—

जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रतापु पुरुषारथु महा ।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा ॥
यह उमा संभु बिवाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं ।
कल्यान काज बिवाह मंगल सर्वदा सुखु पावहीं ॥

दोहा—चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु ।
बरनै तुलसीदास किमि अति मतिमंद गवाँरु ॥१०३॥

शब्दार्थ—गनन्ह = गण । नयऊ = नया । षटवदन = षन्मुख, कार्तिकेय । गिरिजारमन = शिवजी ।

भावार्थ – पर्वतराज हिमाचल तुरन्त घर को लौट आए और उन्होने सब पर्वतो और सरोवरो को बुला लिया । हिमवान् ने आदर, दान, विनय और बहुत अधिक सम्मान-सहित सबको विदा किया ।

जब शिवजी कैलाश पर आए तब सब देवता अपने-अपने लोको को चले गये । (तुलसीदास जी कहते है कि) पार्वतीजी और शिवजी जगत के माता पिता हैं, इसीलिये मैं उनके शृंगार का वर्णन नही करता ।

वे अनेक प्रकार से भोग-विलास करते हुए अपने गुणो सहित कैलाश पर रहने लगे शिव-पार्वती का नित्य नया विहार होने लगा इस प्रकार बहुत समय बीत गया ।

तब छ मुखवाले पुत्र (स्वामिकार्तिकी) का जन्म हुआ, जिन्होंने (बडे होने पर) युद्ध मे तारकासुर को मारा स्वामिकार्तिकी की जन्म कथा वेदो, शास्त्रो और पुराणो मे प्रसिद्ध है और सारा ससार उसे जानता है ।

स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महान् पुरुषार्थ को सारा ससार जानता है । इसी कारण मैंने वृषकेतु शिवजी के पुत्र का चरित्र सक्षेप मे ही कहा है । जो स्त्री-पुरुष शिव-पार्वती के विवाह की इस कथा को कहेंगे और गायेंगे वे कल्याण के कार्यो और विवाहादि मगलो मे सदा सुख पावेंगे ।

गिरिजापति शिवजी का चरित्र समुद्र के समान अपार है, वेद भी

उसका पार नहीं पाते । फिर अत्यन्त मन्दबुद्धि और गँवार तुलसीदास उसका वर्णन कैसे कर सकता है ?

मूल--संभु चरित सुनि सरस सुहावा । भरद्वाज मुनि अति सुख पावा ॥
बहु लालसा कथा पर बाढी । नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढी ॥
प्रेम बिवस मुख आव न बानी । दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी ॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा । तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा ॥
सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं । रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं ॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू । राम भगत कर लच्छन एहू ॥
सिव सम को रघुपति ब्रतधारी । बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई । को सिव सम रामहि है प्रिय भाई ॥

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित, बूझा मरमु तुम्हार ।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार ॥१०४॥

शब्दार्थ —बाढी = बढ़ गई । रोमावली ठाढी = रोमाञ्च हो आया गौरीसा = शिव । रति = प्रेम । बिस्वनाथ = महादेव । एहू = यही । बूझा = समझ लिया ।

भावार्थ—शिवजी के सरस और सुहावने चरित्र को सुनकर भरद्वाज मुनि ने बहुत ही सुख पाया । कथा पर उनकी लालसा बहुत बढ गयी, नेत्रों में जल भर आया और (हर्ष के कारण) रोमावली खडी हो गई ।

अति प्रेम के कारण मुख से वाणी नहीं निकलती । उनकी यह दशा देखकर ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्यजी बहुत प्रसन्न हुए (और बोले) हे मुनीश ! अहा हा ! तुम्हारा जन्म धन्य है, क्योंकि गौरीपति शिवजी तुम्हें प्राणों के समान प्रिय हैं ।

जिनकी शिवजी के चरणकमलों में प्रीति नहीं है, वे श्रीराम को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते । शिवजी के चरणों में निष्कपट प्रेम होना ही राम भक्त का लक्षण है ।

शिवजी के समान श्रीराम की भक्ति का व्रत धारण करने वाला कौन है ? जिन्होंने बिना किसी पाप के सती जैसी स्त्री को त्याग दिया और इस प्रकार श्री रघुनाथजी की भक्ति को दिखा दिया । हे भाई ! श्रीराम को शिवजी के समान और कौन प्रिय हो सकता है ?

मैंने पहले शिवजी का चरित्र कहकर तुम्हारा मर्म समझ लिया है कि तुम श्रीराम के पवित्र सेवक हो और सब दोषो से रहित हो।

विशेष—अनुप्रास और रूपक।

मूल—मै जाना तुम्हार गुन सीला। कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला॥
सुनु मुनि आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥
रामचरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥
सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥
प्रनवउँ सोई कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥

दोहा—सिद्ध तपोधन जोगिजन, सुर किंनर मुनिवृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुखकन्द॥१०५॥

शब्दार्थ—समागम = भेंट। अहीसा = शेषनाग। जथाश्रुत = जैसा सुना वैसा। धनुपानी = धनुष है हाथ मे जिनके ऐसे श्रीरामचन्द्रजी। सारद = शारदा, सरस्वती। दारुनारि = कठपुतली। सूत्रधार = इच्छानुसार नचाने वाला। जनु = जन, भक्त। अजिर = आगन। बानी = सरस्वती। सुकृती = पुण्यात्मा। सुखकद = आनदकद।

भावार्थ—याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कह रहे है मै तुम्हारे गुण और शील से भलीभाति परिचित हूँ। अब मै तुम्हे श्रीराम की लीला कहता हू। हे मुनि! सुनो, आज तुम्हारी भेंट से मेरे मन मे जो आनन्द हुआ है, वह कहा नहीं जा सकता। हे मुनीश! श्रीराम के चरित्र का कही ओर छोर नही है, वह अपार है। सौ करोड शेषनाग भी उसे नही कह सकते। फिर भी, जैसा मैंने सुना है, वैसा वाणीपति ब्रह्मा तथा धनुष्पाणि राम का स्मरण करके कहता हू। हे मुनीश! सरस्वती कठपुतली के समान है और अन्तर्यामी राम उसको नचाने वाले सूत्रधार हैं। अपना भक्त जानकर जिस कवि पर वे कृपा करते है, उनके हृदय रूपी आगन मे वे सरस्वती को नचाया करते हैं। मै उन्ही कृपालु श्रीराम को प्रणाम करता हू और उन्ही के निर्मल गुणो की कथा मै कहता हू।

बाईं ओर बैठने के लिए आसन दिया। शिवजी के पास बैठकर पार्वतीजी प्रसन्न हुईं। (उसी समय) उन्हें पूर्व जन्म की कथा स्मरण हो आई।

पति के हृदय में बढ़ा प्रेम जानकर पार्वतीजी हँसकर प्रिय वचन बोलीं (याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि) जो कथा सम्पूर्ण संसार का भला करने वाली है, उसे ही पार्वतीजी पूछना चाहती हैं।

हे संसार के स्वामी ! मेरे पति और त्रिपुरासुर का नाश करने वाले ! आपकी महिमा तीनों लोकों में विख्यात है। जितने चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता हैं, सब आपके चरणकमलों की सेवा करते हैं।

हे प्रभो ! आप समर्थ, सर्वज्ञ और कल्याणरूप हैं। सब कलाओं और गुणों के धाम हैं और योग, ज्ञान और वैराग्य के भण्डार हैं। शरणागतों के लिए आपका नाम कल्पवृक्ष है।

विशेष—अनुप्रास, उदाहरण, रूपक और लाटानुप्रास अलंकार।

मूल :—जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥
जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई॥
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ ! मम मति भ्रम भारी॥
प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥

दोहा—जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥१०८॥

शब्दार्थ – जनित = उत्पन्न। ससि भूषन = शिव। परमारथबादी = ब्रह्म के ज्ञाता। अनँग आराती = कामदेव के शत्रु (शिव)। अज = अजन्मा। तनय = पुत्र। भोरि = भोली, बावली।

भावार्थ – (पार्वती शिव से कह रही हैं) हे सुख की राशि ! यदि मुझ पर आप प्रसन्न हैं और सचमुच मुझे अपनी सच्ची दासी समझते हैं, तो हे प्रभो ! आप श्री रघुनाथ की अनेक प्रकार की कथा कहकर मेरा अज्ञान दूर

कीजिए। जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो, वह भला दारिद्रय-जन्य दुख को क्यो सहेगा ? हे चन्द्रमा को भूषण बनाने वाले ! हे नाथ ! हृदय मे ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के बडे भारी भ्रम को दूर कीजिए।

हे प्रभो ! जो परमार्थ-तत्व के ज्ञाता मुनि हैं, वे राम को अनादि ब्रह्म कहते है तथा शेष जी, सरस्वती, वेद और पुराण सब राम के गुण गाते है। हे काम के शत्रु ! आप भी दिन रात आदर-पूर्वक राम-राम जपते हो। क्या वह राम अयोध्या का राजकुमार है, या वह कोई अजन्मा, गुणातीत और अगोचर है ?

यदि वह राजकुमार है तो ब्रह्म कैसे ? और यदि ब्रह्म है तो स्त्री के विरह मे उसकी बुद्धि बावली कैसे हो गई ? उनके इस प्रकार के चरित्र को देख एव उनकी महिमा को सुन मेरी बुद्धि अत्यन्त भ्रम मे पड गई है।

मूल —जौं अनीह व्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू॥
मै बन दीखि राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाति हम पावा॥
अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें॥
प्रभु तब मोहि बहु भाति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥
तब कर अस बिमोह अब नाहीं। राम कथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा॥

दोहा—बदउँ पद धरि धरनि सिरु, बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु, श्रुति सिद्धात निचोरि॥१०९॥

शब्दार्थ – अनीह – इच्छा-रहित। बिभु=सर्वव्यापक, विष्णु, स्वामी, ब्रह्म। बुझाई=समझा कर। प्रबोधा=समझाया था। बिमोह=अज्ञान। भुजगराज भूषन=सर्पराज को भूषन के रूप मे धारण करने वाले। धरनि=पृथ्वी।

जो इच्छा-रहित, सर्वव्यापक ब्रह्म कोई और है, तो हे स्वामी ! उसे समझाकर कहिए। मुझे नादान समझकर हृदय मे क्रोध नही करना और जिस तरह से मेरा मोह दूर हो, वही कीजिये।

मैंने वन में श्रीराम की प्रभुता देखी थी, लेकिन भय से अत्यन्त व्याकुल होने के कारण मैंने उसे आपको नहीं सुनाया। तो भी मेरे मलिन मन में ज्ञान नहीं हुआ और उसका फल भी मैंने अच्छी तरह पा लिया।

अब भी मेरे मन में कुछ सन्देह है। आप कृपा कीजिये, मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ। हे प्रभो ! तब आपने मुझे बहुत तरह से समझाया था (फिर भी मैं नहीं समझी), हे नाथ ! उस बात को याद कर क्रोध मत करना।

मुझे अब पहले जैसा मोह नहीं है तथा श्रीराम की कथा पर अब हृदय में प्रेम है। (इसीलिये) हे शेषनाग को अलंकार रूप में धारण करने वाले देवताओं के नाथ ! आप श्रीराम के गुणों की पवित्र कथा कहिये।

मैं पृथ्वी पर सिर टेक आपके चरणों की वन्दना करती हूँ और हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ कि आप वेदों के सिद्धान्त को निचोड़कर श्री रघुनाथजी के निर्मल यश का वर्णन कीजिये।

मूल—जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥
अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी॥
पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बाल चरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं॥
बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्ही बहुलीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥

दोहा—बहुरि कहहु करुणायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुवंशमनि किमि गवने निज धाम॥११०॥

शब्दार्थ—जोषिता=योषिता, स्त्री। आरत=दुखी, पीड़ित। दुरावहिं=छिपाते हैं। सुरराया=देवताओं के स्वामी। दाया=दया। बपु=शरीर। सुख सीला=सुख स्वरूप। गवने=गये।

यद्यपि स्त्री होने के कारण मैं उसे सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ, तो भी मैं मन, कर्म और वचन से आपकी दासी हूँ। साधु जन जहाँ आर्त अधिकारी पाते हैं वहाँ गूढ़ तत्व को भी उनसे नहीं छिपाते।

हे देवताओं के स्वामी ! मैं बहुत ही दीनता से पूछती हूँ, आप मुझ पर दया करके श्रीरघुनाथ जी की कथा कहिये। पहले तो वह कारण विचार के कहिये जिससे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है।

हे प्रभो ! फिर श्रीराम के अवतार की कथा कहिये (कि क्यो हुआ) और उनका उदार बालचरित्र सुनाइये। फिर जिस प्रकार उन्होंने जानकी जी से विवाह किया, वह कथा कहिये और बतलाइये कि किस दोष के कारण उन्होंने राज्य छोड़ा ?

फिर उन्होंने वन में रहकर जो अपार चरित्र किये और जिस तरह रावण को मारा, हे नाथ ! वह सब कहिये। हे सुखस्वरूप शंकर ! राज्य-सिंहासन पर बैठकर भी जो उन्होंने बहुत सी लीलाएँ करीं, उन सबको कहिये।

फिर, हे दया-निधान ! श्रीराम ने जो अद्भुत चरित्र किये उन्हें भी कहिये। वे रघुकुल शिरोमणि प्रजा-सहित अपने धाम वैकुण्ठ को कैसे गये ?

विशेष :—अनुप्रास और लाटानुप्रास अलंकार।

मूल—पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥
औरउ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥
तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥
हर हियँ रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥

दोहा—मगन ध्यानरस दंड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥१११॥

शब्दार्थ —गोई—छिपाकर। आन—अन्य। पावर—पामर, नीच। रस—आनन्द। दंड जुग—दो घड़ी तक।

भावार्थ —(पार्वती शिवजी से पूछ रही हैं) हे प्रभो ! फिर आप मुझे उस तत्त्व को समझाकर कहिये जिसकी अनुभूति में ज्ञानी मुनि सदा मग्न रहते हैं। फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य का उनके विभागों के सहित

वर्णन कीजिए। इसके अलावा राम के और भी अनन्त रहस्य हैं और हे नाथ! आपका ज्ञान अत्यन्त निर्मल है, अतः मुझे उनको भी कहिए। हे प्रभो! जो बात मैंने न पूछी हो, हे दयालु! वह भी आप मुझ से छिपाकर न रखिए (वह भी आप मुझे कह डालिए।) वेद ऐसा कहते हैं कि आप तीनों लोकों के गुरु हैं, अन्य नीच जीव इसे कैसे जान सकते हैं? पार्वती के इन स्वाभाविक, सुन्दर और छल-रहित प्रश्न को सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए और उनको पार्वती के ये प्रश्न बहुत अच्छे लगे। फलतः शिवजी के हृदय में सारा रामचरित्र घूम गया, प्रेम के कारण उनका शरीर रोमांचित हो गया और नेत्रों में जल भर आया। श्रीराम का रूप शिवजी के हृदय में आ गया जिससे स्वयं आनन्द स्वरूप शिवजी ने भी अपार सुख का अनुभव किया।

श्रीराम के ध्यान के आनन्द में शिव दो घड़ी तक डूबे रहे, फिर उन्होंने मन को बाहर किया। तदनन्तर वे प्रसन्न होकर श्रीराम का चरित्र वर्णन करने लगे।

मूल—झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥
बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराज कुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुपति चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥
दोहा—राम कृपा तें पारबति, सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम, मम बिचार कछु नाहिं॥११२॥

शब्दार्थ—भुजंग = साँप। रजु = रज्जु, रस्सी। हेराई = लोप हो जाता है, छूट जाता है। द्रवउ = कृपा करें, प्रसन्न हों। अजिर = आँगन।

भावार्थ—(शिवजी पार्वती से कह रहे हैं) जिसके बिना जाने झूठ भी सत्य प्रतीत होता है, जैसे बिना पहचाने रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है, और जिसके जान लेने पर संसार का इसी तरह लोप हो जाता है जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम छूट जाता है। मैं उन्हीं श्रीराम के बालरूप की वन्दना

करता हूं, जिसका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। वे मगल के धाम हैं और अमगल के हरने वाले हैं वे दशरथ के आँगन मे खेलने वाले बालरूप श्रीराम मुझ पर कृपा करे।

तदनन्तर त्रिपुर राक्षक का वध करने वाले शकर ने श्रीराम को प्रणाम किया और फिर प्रसन्न होकर अमृत के समान मीठी वाणी मे कहा—हे गिरि-राज कुमारी पार्वती ? तुम धन्य हो, धन्य हो ! तुम्हारे समान कोई भी उपकारी नही है। तुमने श्रीराम की कथा का जो प्रसग पूछा है, वह समस्त लोको तथा ससार को पवित्र कर देने वाली गगा के समान है। तुम श्रीराम के चरणो मे प्रेम रखने वाली हो, इसी से तुमने ससार के हित के लिए ऐसे प्रश्न पूछे हैं।

हे पार्वती ! मेरे विचार मे श्रीराम की कृपा से तुम्हारे मन मे स्वप्न मे भी शोक, मोह, सदेह और भ्रम कुछ भी नही है।

विशेष – अनुप्रास, उदाहरण, लाटानुप्रास, उपमा, वीप्सा और रूपक अलकार।

मूल—तदपि असका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥
नयनन्हि सत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरिभगति हृदय नहीं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला॥

दोहा – राम कथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख दानि।
सत समाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि॥११३॥

शब्दार्थ – असका = शका। श्रवण रध्र = कानो के छिद्र। अहिभवन = बावी, साप का बिल। समतूला = समान। सव = शव, मुर्दा। जीह = जीभ। दादुर = मेंढक। सुरहित = देवताओ का हित करने वाली। सुरधेनु = कामधेनु।

भावार्थ – फिर भी तुमने वही (पुरानी) शका की है, जिससे इस प्रसग के कहने-सुनने से सबका हित होगा। जिन्होने अपने कानो से भगवान् की कथा नही सुनी, उनके कानो के छेद साँप के बिलो के समान हैं।

जिन्होंने अपने नेत्रों से संतो के दर्शन नहीं किये, उनकी वे आँखें मोरपंख पर दीखने वाली आखों के समान वृथा हैं। जो सिर भगवान् और गुरु के चरणों में नहीं झुकते वे कड़वी तूंबी के समान हैं।

जिनके हृदय में भगवान् की भक्ति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ, वे प्राणी जीते हुए भी मृतक के समान हैं। जो जीभ श्रीराम के गुणों का गान नहीं करती, वह मेंढक की जीभ के समान है।

वह हृदय वज्र के समान कठोर और निष्ठुर है, जो भगवान् श्रीराम के चरित्र सुनकर प्रसन्न नहीं होता। हे पार्वती! श्रीराम की लीला सुनो, जो देवताओं का हित करने वाली और दैत्यों को विशेष रूप से मोहित करने वाली है।

श्रीरामचन्द्र जी की कथा कामधेनु के समान सेवा करने से सब सुखों को देने वाली है और सत्पुरुषों के समाज ही सब देवताओं के लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा?

विशेष :—अनुप्रास, उपमा, लाटानुप्रास और रूपक अलंकार।

मूल—रामकथा सुन्दर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराज-कुमारी॥
राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनन्त राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥
तदपि जथा श्रुत जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संत संमत मोहि भाई॥
एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥

दोहा—कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥११४॥

शब्दार्थ—तारी = ताली। बिहग = पक्षी। बिटप = कुल्हाड़ी। जथा श्रुत = जैसा सुना है।

श्रीराम की कथा हाथों की सुन्दर तालों के समान सन्देहरूपी पक्षियों

को उडाने वाली है। फिर रामकथा कलियुग रूपी पेड को काटने के लिए कुल्हाडी के समान है। हे पार्वती ! इसे श्रद्धापूर्वक सुनो।

वेदो मे श्रीराम के नाम, गुण, सुन्दर चरित्र, जन्म और कर्म सभी अनगिनत कहे गये हैं। जैसे भगवान् श्रीराम अनन्त है अर्थात् उनका अन्त नही है वैसे ही उनकी कथा, कीर्ति और गुणो का भी अन्त नही है।

तो भी जैसा मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसी के अनुसार तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर कहूँगा। हे पार्वती ! तुम्हारे प्रश्न स्वाभाविक ही सुन्दर, सुखदायक और सतो के मत के अनुकूल है और मुझे भी अच्छे लगने वाले हैं।

परन्तु हे पार्वती ! एक बात मुझे नही सुहाई, यद्यपि वह तुमने मोह के वश होकर ही कही है। तुमने जो यह कहा है कि वे राम क्या कोई और हैं, जिनको वेद गाते हैं और जिनका मुनिजन ध्यान करते हैं—

ऐसी बात नीच मनुष्य ही कहा-सुना करते है जो अज्ञानरूपी पिशाच के द्वारा ग्रस्त हैं पाखण्डी है, और भगवान् के चरणो से विमुख है तथा झूठ-सत्य मे कुछ भी भेद नही जानते।

विशेष—अनुप्रास और परपरित रूपक अलकार।

मूल—अग्य अकोबिद अंध अभागी । काई बिषय मुकुर मन लागी ॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी । सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी ॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी । जिन्ह के सूझ लाभु नहिं हानी ॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना । रामरूप देखहिं किमि दीना ॥
जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका । जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ॥
हरि माया बस जगत भ्रमाहीं । तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं ॥
बातुल भूत बिबस मतवारे । ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना । तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना ॥
दोहा—अस निज हृदयं बिचारि तजु संसय भजु राम पद ।
सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रबि कर बचन मम ॥११५॥

शब्दार्थ—अकोविद = मूर्ख। मुकुर = दर्पण। लपट = व्यभिचारी। वेद असमत = वेद-विरुद्ध। जल्पहिं = बकते हैं। कल्पित = मन गढन्त। अघटित = असभव। बातुल = वायुरोग-ग्रस्त। भूत = भूत प्रेतादि। कर = किरण।

भावार्थ—(शिवजी पार्वती से कह रहे हैं) जो लोग अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे और भाग्यहीन हैं, जिनके मन रूपी दर्पण पर विषय रूपी काई जमी हुई है, जो व्यभिचारी, छली और बडे कुटिल हैं, जिन्होंने कभी स्वप्न में भी सत-समाज के दर्शन नहीं किये, जिन्हें अपनी लाभ-हानि नहीं सूझती, वे ही ऐसी वेद-विरुद्ध बातें कहते हैं। जिनका हृदय रूपी दर्पण मैला है और नेत्रों से हीन हैं, वे बेचारे राम के रूप को कैसे देख सकते हैं ?

जिन्हें निर्गुण-सगुण का कुछ भी विवेक नहीं है, जो अनेक मन गढन्त बातें बका करते हैं, जो हरि की माया के वश न होकर जगत् में घूमते फिरते हैं (जन्म-मरण के चक्कर में फँसे रहते हैं), उनके लिए कुछ भी कह डालना असम्भव नहीं है।

जो सन्निपात आदि वायु रोग से ग्रस्त हैं जो भूत प्रेतादि के वश में हैं और जो नशे में चूर हैं, ऐसे लोग विचार कर वचन नहीं बोलते। जिन्होंने महामोह रूपी मदिरा पी रखी है, उनके कहने पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

हे पार्वती ! अपने हृदय में ऐसा विचार कर संशय छोड़ दो और श्रीराम के चरणों को भजो। हे पार्वती ! भ्रम रूपी अन्धकार के नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समान मेरे वचनों को सुनो।

विशेष—अनुप्रास, परम्परित रूपक और लाटानुप्रास अलंकार।

मूल—सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा। तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥
हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना ॥

दोहा—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुल मनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ ॥११६॥

शब्दार्थ—बुध = बुद्धिमान। अरूप = निराकार। अलख = अव्यक्त।

हिमउपल = ओला । तिमिर = अन्धकार । पतगा = सूर्य । दिनेमा = सूर्य । विहाना = प्रात काल । अहमिति = अहमत्व । परेम = परेश, परमात्मा । । पुराना = पुराण पुरुष । परावर = कारण और कार्य, विश्व ।

भावार्थ—(शिवजी पार्वती को समझा रहे है) सगुण और निर्गुण मे कोई भेद नही है (दोनो एक ही है)—मुनि, पुराण, पडित और वेद सभी ऐसा कहते हैं । जो निर्गुण, निराकार, अव्यक्त और अजन्मा है, वही ईश्वर भक्तो के प्रेम-वश सगुण हो जाता है ।

जो निर्गुण है, वह सगुण कैसे हो सकता है, इसका स्पष्टीकरण करते हुए शिवजी कहते है कि जैसे जल और ओले मे भेद नही (दोनो जल ही हैं), ऐसे ही निगुण और सगुण में कोई भेद नही (दोनो मे एक ही ईश्वरत्व है) । जिसका नाम ही भ्रम रूपी अन्धकार को मिटाने के लिए सूय के समान है, उस (ईश्वर) को मोह के वश मे कैसे कहा जा सकता है ?

राम सत्‌चित् और आनन्द स्वरूप है, सूर्य है, वहाँ मोह रूपी रात्रि का लवलेश भी नही है । वे निसर्गत प्रकाश रूप है और वे षड् ऐश्वर्य युक्त भगवान् हैं । जब वे स्वय सदा प्रकाशमान हैं, तब वहा ज्ञान रूपी प्रात काल होने का प्रश्न ही नही उठता । हर्ष, शोक, ज्ञान, अज्ञान, अहता और अभिमान ये सब जीव के धर्म हैं । श्रीराम तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्द स्वरूप, परात्पर परमात्मा और पुराण पुरुष है, इस बात को सारा ससार जानता है ।

जो पुराण पुरुष है, प्रसिद्ध हैं, प्रकाश के भडार हैं, सब रूपो मे प्रकट हैं, जो चराचर के स्वामी हैं, वे ही रघुकुल मणि राम मेरे स्वामी हैं, ऐसा कह कर शिवजी ने उन्हे प्रणाम किया ।

विशेष—उदाहरण अलकार ।

मूल—निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी । प्रभु पर मोह धरहिं जड प्रानी ॥
जथा गगन घन पटल निहारी । झापेहु भानु कहहिं कुबिचारी ॥
चितव जो लोचन अगुलि लाएँ । प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएं ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा । नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥
बिषय करन सुर जीव समेता । सकल एकतें एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू । मायाधीन ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्यता तें जड माया । भास सत्य इव मोह सहाया ॥
दोहा—रजत सीप महुँ भास ।जमि जथा भानु कर बारि ।
तदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥११७॥

शब्दार्थ—धरहिं = आरोप करते हैं। घन पटल = बादलों का समूह या पर्दा। झाँपेउ = ढक लिया। चितव = देखते हैं। जुगल = दो। सोहा = दीखना। करन = करण, इन्द्रिय। रजत = चांदी। भास = प्रतीत होना। कर = किरण।

भावार्थ—(शिवजी पार्वती को समझा रहे हैं) अज्ञानी पुरुष अपनी भूल तो नहीं देखते, किन्तु वे मूर्ख भगवान् पर मोह का आरोप करते हैं (दोष लगाते हैं)। आकाश में बादलों के समूह में सूर्य के ढक जाने पर कुविचारी (अज्ञानी) लोग कहते हैं कि सूर्य अस्त हो गया (किन्तु यह बात गलत है)।

जो मनुष्य आँख के आगे अंगुली रख कर देखता है, उसके लिए तो प्रत्यक्ष ही दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं। हे उमा ! श्रीराम के विषय में इस प्रकार मोह की कल्पना करना ऐसा ही है जैसा यह सोचना कि आकाश में अन्धकार, धुआँ और धूल भरी है। वास्तव में आकाश निर्मल और निर्लेप है, वहां धूल और धुआँ का क्या काम ? इसी प्रकार राम भी नित्य निर्मल और निर्लेप हैं, वहाँ मोह का क्या काम ?

विशेष—उदाहरण अलकार।

मूल—एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥
जौं सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई॥
जासु कृपां अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

दोहा – जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसलपति भगवान॥११८॥

शब्दार्थ—अहई = है। आनन = मुख। बकता = वक्ता। जोगी = योगी, योग्य। परस = स्पर्श करना। हित = हितकारी।

भावार्थ—इस प्रकार यह जगत् भगवान् के आश्रित रहता है। यद्यपि यह असत्य है तथापि दुःख देता ही है। जैसे कोई स्वप्न मे सिर काटे तो बिना जागे उसका दुःख दूर नही होता।

हे पार्वती! जिनकी कृपा से ऐसा भ्रम मिट जाता है, वे ही कृपाल श्रीराम हैं। जिनका आदि और अन्त किसी ने नही पाया, लेकिन वेदो ने अपनी बुद्धि के अनुमान से ऐसा कहा है—

वह ब्रह्म बिना पैर के चलता है, बिना कान के सुनता है बिना हाथ के तरह-तरह के काम करता है, बिना मुख के सब रसो का आनन्द लेता है और बिना ही वाणी के बोलने वाला तथा बडा योगी है।

वह बिना ही शरीर (त्वचा) के स्पर्श करता है, बिना आँख के देखता है और बिना ही नाक के सब गन्धो को ग्रहण करता है। इस तरह सब प्रकार से उस ब्रह्म की करनी ऐसी अलौकिक है कि जिसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

जिन्हे वेद और पण्डित इस प्रकार गाते हैं और मुनिजन जिनका ध्यान

धरते हैं, वे ही महाराज दशरथ के पुत्र, भक्तों के हितकारी, अयोध्या के स्वामी भगवान् श्रीराम हैं।

विशेष—उदाहरण और विभावना अलंकार।

मूल—कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अन्तरजामी॥
बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥
सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥
राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी॥
अस संसय आनत उर माहीं। ग्यान बिराग सकल गुन जाहीं॥
सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भई रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असंभावना बीती॥

दोहा—पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि, जोरि पकंरुह पानि।
बोलि गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेम रस सानि॥११९॥

पदार्थ—जंतु = प्राणी। अवलोकी = देखकर। बिबसहु = बिना इच्छा के भी। अघ = पाप। दहहीं = जल जाते हैं। बारिधि = समुद्र। गोपद = गाय के खुर से बना हुआ गड्ढा। अबिहित = अनुचित। आनत = लाते ही। जाहीं = नष्ट हो जाते हैं। भंजन = नाश करने वाले। कुतरक कै रचना = वृथा वाद-विवाद करना। प्रतीति = विश्वास। दारुन = कठिन। असभावना = जिसका होना संभव नहीं। पकंरुह पानि = कमल के समान हाथ।

भावार्थ—जिनके नाम के बल से काशी में मरते हुए प्राणी को देखकर मैं शोक-रहित कर देता हूँ (अर्थात् संसार के आवागमन से छुड़ाकर मोक्ष देता हूँ)। वे ही चर-अचर के स्वामी, सबके घट-घट की जानने वाले भगवान् श्रीराम मेरे प्रभु हैं।

विवश होकर (बिना इच्छा के) भी जिनका नाम लेने से मनुष्यों के अनेक जन्मों के इकट्ठे हुए पाप जल जाते हैं। फिर जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक उनका स्मरण करते हैं, वे संसाररूपी समुद्र को गाय के खुर से बने हुए गड्ढे के समान (बिना किसी परिश्रम के) पार कर जाते हैं।

हे पार्वती! वे ही राम परमात्मा हैं। उनके विषय में तुमने जो भ्रम

प्रकट किया वह अत्यन्त ही अनुचित है। ऐसा सन्देह हृदय लाते ही ज्ञान, वैराग्य और सारे सद्गुण चले जाते हैं।

शिवजी के भ्रम को नाश करने वाले वचनों को सुनकर (पार्वतीजी के) सब कुतर्कों की रचना मिट गयी और श्रीराम के चरणों में उनका प्रेम और विश्वास हो गया तथा कठिन असम्भावना जाती रही।

बार-बार भगवान् शिवजी के चरणकमलों को छूकर और अपने कमल समान हाथों को जोड़कर पार्वतीजी मानो प्रेम-रस में सानकर सुन्दर वचन बोलीं।

विशेष—अनुप्रास, लाटानुप्रास, रूपक, उपमा और उदाहरण अलंकार

मूल—ससि कर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ॥
नाथ कृपा अब गयउ बिषादा। सुखी भयउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। जौं मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू॥
राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥
उमा बचन सुनि परम बिनीता। रामकथा पर प्रीति पुनीता॥

दोहा—हियँ हरषे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि, बोले कृपानिधान॥१२०॥ (क)

सोरठा—सुनु सुभ कथा भवानि, रामचरित मानस बिमल।
कहा भुसुण्डि बखानि, सुना बिहग नायक गरुड़॥१२०॥ (ख)
सो संबाद उदार, जेहि बिधि भा आगें कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुन्दर अनघ॥१२०॥ (ग)
हरि गुन नाम अपार, कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार, कहउँ उमा सादर सुनहु॥१२०॥ (घ)

शब्दार्थ—ससिकर = चन्द्रमा की किरण। सरदातप = शरद + आतप (शरद् ऋतु की धूप का ताप)। किंकरि = दासी। अयानी = ज्ञान-हीन। अहहू = है। चिन्मय = ज्ञान स्वरूप। बृषकेतु = शिव। बिनीता = नम्र।

कामारि = कामदेव के शत्रु (शिव)। विहग नायक = पक्षियों का राजा। कहब = कहूँगा। अनघ = पापरहित, पाप-नाशक।

भावार्थ—राम के विषय में पूर्ण ज्ञान होने पर पार्वती शिवजी के प्रति कृतज्ञता के भाव प्रकट कर रही हैं—हे स्वामी! आपकी चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल वाणी सुन कर मेरा अज्ञान रूपी शरद् ऋतु की धूप का भारी ताप मिट गया है। हे कृपालु! आपने मेरा सब सन्देह हर लिया, अब मुझे राम का यथार्थ स्वरूप ज्ञात हो गया। हे नाथ! अब आपकी कृपा से मेरा सारा विषाद जाता रहा, मैं आपके चरणों की कृपा से सुखी हो गई। यद्यपि मैं स्वभाव से ही ज्ञान हीन मूर्ख नारी हूँ, तथापि अब आप मुझे अपनी दासी समझ कर, हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो जो बात मैंने सर्वप्रथम आपसे पूछी थी, आप वही कहिए।

राम ब्रह्म हैं, ज्ञान-स्वरूप हैं और नाश-रहित हैं, वे सबसे रहित हैं और सबकी हृदय रूपी नगरी में निवास करने वाले हैं—ये सब सत्य होते हुए भी हे नाथ! उन्होंने नर-तन किस कारण से धारण किया? हे धर्म की ध्वजा को धारण करने वाले प्रभो! यह मुझे समझा कर कहिए।

पार्वती के इस प्रकार अत्यन्त नम्र वचन सुन कर और राम-कथा में उसकी पवित्र प्रीति देखकर कामदेव के शत्रु, सहज सुजान और कृपा के निधान शिवजी मन में बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उमा की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और कहा—हे पार्वती! निर्मल रामचरितमानस की वह शुभ कथा सुनो जिसे काकभुशुण्डि ने विस्तार से कहा और पक्षियों के राजा गरुड़ ने सुना। उन दोनों का उदार संवाद जिस प्रकार हुआ, मैं तुम्हें आगे बताऊँगा। अभी तो तुम राम के अवतार का परम सुन्दर और पाप-नाशक चरित्र सुनो। श्रीहरि के गुण और नाम अपार हैं, उसी प्रकार उनकी कथाएँ भी अगणित हैं और रूप भी अमित हैं, उन्हें मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ, हे पार्वती! तुम आदर-पूर्वक सुनो।

विशेष—उपमा, रूपक और अनुप्रास अलंकार।

मूल—सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥

तदपि संत मुनि वेद पुराना । जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही । समुझि परइ जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा । हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ॥

दोहा—असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहि निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, राम जन्म कर हेतु ॥१२१॥

शब्दार्थ—इदमित्थ = बस यही है ऐसा । स्वमित = अपनी बुद्धि । हानी = ह्रास । बाढ़हिं = बढ जाते है । सीदहिं = कष्ट पाते है । थापहिं = स्थापित करते हैं । श्रुतिसेतु = वेदो की मर्यादा ।

भावार्थ—हे पार्वती ! भगवान् के विस्तृत और निर्मल चरित्रो को सुनो, जिनको वेदो और शास्त्रो मे कहा गया है । भगवान् का अवतार जिस कारण से होता है, वह कारण 'बस यही है' ऐसा नही कहा जा सकता । (क्योकि भगवान् के अवतार के अनेक कारण हो सकते हैं और ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हे कोई जान ही नही पाता ।)

हे सयानी ! सुनो, हमारा विचार तो ऐसा है कि बुद्धि, मन और वाणी से श्रीराम के विषय मे किसी तरह की तर्कना नही हो सकती । तो भी संत, मुनि, वेद और पुराण अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कुछ कहते हैं,

और जैसा कारण मेरी समझ मे आता है वैसा ही हे सुमुखी ! मैं तुम्हे सुनाता हूँ । जब-जब (पृथ्वी पर) धर्म की हानि होती है और नीच अभिमानी राक्षस बढ जाते हैं, और वे ऐसी अनीति करते हैं कि जिनका वर्णन नही हो सकता तथा ब्राह्मण, गौ, देवता और पृथ्वी कष्ट पाते हैं, तब तब वे कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के शरीर धारण करते हैं और संतजनो की पीडा हरते हैं ।

वे असुरो को मारकर देवताओ को (अपने-अपने पद पर पुनः) स्थापित करते हैं, अपने (श्वास रूप) वेदो की मर्यादा रखते हैं और संसार मे अपना निर्मल यश फैलाते है । यही श्रीराम के जन्म लेने का कारण हैं ।

विशेष—अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार ।

मूल—सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एक तें एका ॥
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥
विप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनक कसिपु अरु हाटक लोचन। जगत विदित सुरपति मदमोचन ॥
बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता ॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा ॥
दोहा – भये निसाचर जाइ तेइ महाबीर बलवान।
कुंभ करन रावन सुभट, सुर बिजई जग जान ॥१२२॥

शब्दार्थ—भव = ससार। असुर = राक्षस। कनककसिपु = हिरण्यकशिपु (भक्त प्रहलाद का पिता)। हाटकलोचन = हिरण्याक्ष (हिरण्यकशिपु का यमज भाई, जिसे विष्णु ने वाराह का अवतार लेकर मारा था)। निपाता = मारा। नरहरि = नृसिंह। सुभट = योद्धा।

उसी यश को गाकर भक्त-जन ससार से तर जाते हैं, क्योंकि कृपासिन्धु भगवान् भक्तो के लिए ही शरीर धारण करते हैं। श्रीराम के जन्म लेने के अनेक कारण हैं, जो एक से एक बढकर विचित्र हैं।

हे सुन्दर बुद्धि वाली ! तुम सावधान होकर सुनो—मैं उनके एक-दो जन्मो का विस्तार से वर्णन करता हूँ। भगवान् श्रीहरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं।

उन दोनो भाइयो ने ब्राह्मणो (सनकादि) के शाप से तामसी असुरो का शरीर पाया और वे हिरण्य-कश्यप तथा हिरण्याक्ष नाम के दैत्य जगत् में देवराज इन्द्र के गर्व को नाश करने वाले प्रसिद्ध हुए।

वे युद्ध मे विजय प्राप्त करने वाले नामी वीर थे। भगवान् ने उनमे से एक (हिरण्याक्ष) को शूकर का शरीर धारण करके मारा, फिर नरसिंह रूप धारण करके दूसरे (हिरण्यकश्यप) को मारा और अपने भक्त प्रह्लाद का सुन्दर यश फैलाया।

वे ही जाकर देवताओ को जीतने वाले ससार-प्रसिद्ध राक्षस रावण और कुम्भकर्ण हुए जो महान योद्धा और बडे बलवान थे।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥
एक बार तिनके हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥
कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए संसारा॥
एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलंधर सन सब हारे॥
संभु कीन्ह संग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहिं बल ताहि न जीतहिं पुरारी॥

दोहा—छल करि टारेउ तासु ब्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेहि मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥१२३॥

शब्दार्थ—मुकुत = मुक्त। हते = मारे जाने पर। प्रवाना = प्रमाण। कलप = कल्प (समय)। जलंधर = राक्षस। दनुज = राक्षस। असुराधिप = दैत्यराज। मरम = भेद। श्राप = शाप। टारेउ = भंग किया।

भावार्थ—(शिवजी पार्वती को राम (भगवान्) के अवतार लेने के कारण बता रहे हैं) भगवान् के द्वारा मारे जाने पर भी वे अर्थात् हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु मुक्त नहीं-हुए, क्योंकि ब्राह्मण के वचन का प्रमाण तीन जन्म के लिए था (उन्हें तीन बार राक्षस योनी में जन्म लेने का शाप दिया गया)। अतः एक बार भगवान् को उनके कल्याण के लिए शरीर धारण करना पड़ा। वहाँ उस अवतार में कश्यप और अदिति उनके माता-पिता हुए, इस जन्म में वे कौसल्या और दशरथ के नाम से विख्यात हुए। एक कल्प में इस प्रकार अवतार लेकर भगवान् ने संसार में पवित्र लीलाएँ की।

एक कल्प में देवताओं को दुखी देख कर, क्योंकि वे सब जलंधर दैत्य से युद्ध में हार गये थे, यहाँ तक कि शिवजी ने भी उसके साथ घोर युद्ध किया, फिर भी वह महाबली दैत्य नहीं मारा गया, क्योंकि उस दैत्यराज की पत्नी परम सती (बड़ी ही पतिव्रता) थी, इस कारण त्रिपुर राक्षस का विनाश करने वाले शंकर भी उस दैत्य को नहीं जीत सके।

ऐसी स्थिति में भगवान् ने छल से उनकी पत्नी का व्रत भंग किया

और देवताओं का काम किया। जब यह भेद उस स्त्री को मालूम होगया तब उस स्त्री ने क्रोध करके भगवान् को शाप दिया।

विशेष—जलधर ने युद्ध में हार जाने के कारण देवता बड़े दुखी थे। उनके उद्धार के लिए भगवान् ने साधु का वेश धारण किया और वे जलधर के घर गये। उसकी पत्नी का नाम वृन्दा था, उसने साधु से युद्ध का हाल पूछा। इतने में वह क्या देखती है कि जलधर के शरीर के सब अंग उसके सामने आ गिरे। उन्हें देखे वह विलाप करने लगी। इस पर साधु वेशधारी भगवान् ने कहा कि तू सती है, इसके सब अंगों को जोड़ दे, तेरे सत से यह जी उठेगा। वृन्दा ने ऐसा ही किया, जलधर जी उठा। वह उसके पाँव दाबने लगी। (किन्तु यह सब माया थी)। पर-पुरुष का शरीर छूने से वृन्दा का सतीपन नष्ट हो गया और उधर शिवजी ने जलधर को मार डाला। उसके मरते ही साधु और जलन्धर का कृत्रिम शरीर लुप्त हो गया। वृन्दा ने यह सब हाल जानकर भगवान् को शाप दिया कि तुम स्त्री के वियोग में बड़े दुःखी होओगे और मेरा पति तुम्हारी स्त्री को हरेगा।

मूल—तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लागि राम धरी नर देहा॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन्ह घनेरी॥
नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिष्नु भगत पुनि ग्यानी॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥

दोहा—बोले बिहसि महेस तब, ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ॥१२४॥ (क)

सोरठा—कहउँ राम गुन गाथा, भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भंजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद॥१२४॥ (ख)

शब्दार्थ—प्रमाना दीन्ह = प्रमाण मान लिया, स्वीकार कर लिया। कौतुक = आश्चर्य। [illegible] = [illegible]। रमापति = लक्ष्मीपति भगवान्। प्रसंग = कथा। मद मान = अहंकार का [illegible] करके [illegible]।

भावार्थ —कौतुकनिधि दयालु भगवान् ने उस स्त्री के शाप को अंगीकार किया। वहाँ (दूसरे जन्म मे) जलधर रावण हुआ, जिसे श्रीराम ने युद्ध मे मारकर मोक्ष प्रदान किया।

एक जन्म का यही कारण है, जिसके लिए श्रीराम ने मनुष्य-देह धारण की। हे भरद्वाज मुनि! सुनो, कवियो ने भगवान् के हर एक अवतार की बहुत सी कथाओ का वर्णन किया है।

एक बार नारदजी ने (भगवान् को) शाप दिया, इसलिये एक कल्प मे उसके लिए अवतार हुआ। शिवजी की इस बात को सुनकर पार्वतीजी बड़ी चकित हुई और बोली कि नारदजी तो ज्ञानी और भगवान् विष्णु के भक्त है।

मुनि ने किस कारण से भगवान् को शाप दिया? लक्ष्मीपति भगवान् ने उनका ऐसा क्या अपराध किया? हे शिवजी! इस प्रसग को आप मुझे सुनाइये, क्योकि मुनि के मन मे मोह (अज्ञान) होना बड़े आश्चर्य की बात है।

तब महादेवजी हँसकर बोले कि न कोई ज्ञानी है, न कोई मूर्ख। श्रीराम जब जिसको जैसा कर देते हैं, वह उस क्षण वैसा ही हो जाता है।

(याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि) हे भरद्वाज! मैं श्रीराम के गुणों की कथा कहता हूँ, तुम आदर से सुनो। (गोस्वामीजी कहते है) हे तुलसी! मान और घमण्ड को छोड श्रीरघुनाथजी को भज। वे ससार के आवागमन से छुड़ाने वाले है।

विशेष —अनुप्रास अलकार।

मूल—हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि॥
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा॥
निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥
मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हियँ जलचर केतू॥

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर बासा॥
जे कामी लोलुप जग माहीं। कुटिल काक इव सबहि डेराहीं॥

दोहा—सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़, तिमि सुरपतिहि न लाज॥१२५॥

शब्दार्थ —हिमगिरि=हिमालय। गुहा=गुफा। सुरसरी=गंगा। सुहाना=सुन्दर। बासी=रम गई। सुरेस=इन्द्र। कामहि=कामदेव को। जलचरकेतु=मीनध्वज कामदेव। सुनासीर=इन्द्र। तिमि=इसी प्रकार।

भावार्थ —हिमालय पर्वत में एक बड़ी पवित्र गुफा है, जिसके समीप ही गंगाजी बहती हैं। ऐसे परम पवित्र और सुन्दर आश्रम को जब मुनि नारद ने देखा तो वह उन्हें बहुत ही अच्छा लगा।

पर्वत, नदी और भाँति-भाँति के वनों को देखकर नारदजी का भगवान् के चरणों में प्रेम उत्पन्न हुआ (कि इस परम रमणीय स्थान पर बैठकर तप करना चाहिये।) भगवान् का स्मरण करते ही उनके शाप (जो शाप उन्हें दक्षराज ने दिया था, जिसके कारण वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकते थे) की गति रुक गयी और स्वभाव से ही उनका निर्मल मन समाधि में लग गया।

नारद मुनि की तपोमयी स्थिति देखकर देवराज इन्द्र भयभीत हो गये। उसने कामदेव को बुलाकर उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और कहा—मेरे हित के लिए तुम अपने सहायकों सहित (नारद की समाधि भंग करने को) जाओ। (यह सुनकर) कामदेव मन में प्रसन्न होता हुआ चला दिया।

(11) नारद जी ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। वे वीणा लिये सर्वत्र घूमते है और हरिगुण गाते हैं। कहा जाता है कि वे कलह-प्रिय हैं और लड़ाई-झगड़ा करवाते रहते हैं। एक बार दक्ष प्रजापति ने उन्हे यह शाप दिया था कि वे सदा घूमते रहेंगे और एक जगह कही भी वे अधिक समय तक न रुकेंगे। इस शाप के कारण नारद जी दो घडी से अधिक कही नही ठहरते थे। हिमालय पर्वत पर उस पवित्र और सुन्दर आश्रम को देखकर उन्होने श्रीहरि का स्मरण किया और वे शाप-मुक्त हो गये। उन्होने वही समाधि लगाली।

मूल—तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज माया बसंत निरमयऊ॥
कुसुमति विविध विटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिविध बयारी। काम कृसानु बढावनि हारी॥
रंभादिक सुरनारि नवीना। सकल असम सर कला प्रवीना॥
करहिं गान बहु तान तरंगा। बहु बिधि क्रीडहिं पानि पतंगा॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपंच विधि नाना॥
काम कला कछु मुनिहि न व्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकई कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥

दोहा—सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बैन॥१२६॥

शब्दार्थ —मदन=कामदेव। निरमयऊ=रचा। कुसुमित=फूलो से लदे। विटप=वृक्ष। कूजहिं=कूकती हैं। बयारी=हवा। कृसानु=अग्नि। सुरनारि=देवाङ्गना, अप्सरा। असमसर कला=काम-कला। पानि=हाथ। पतंगा=गेंद। प्रपंच=मायाजाल। मनोभव=कामदेव। सीम=सीमा, मर्यादा। चाँपि=दबाना। मैन=कामदेव। गहेसि=पकड़ लिये। सुठि=सुन्दर। आरत बैन=दीन वचन।

भावार्थ—उस आश्रम में जब कामदेव गया, तब उसने अपनी माया से वहाँ वसन्त की रचना की। तरह-तरह के वृक्षो मे रंग-बिरंगे फूल खिल गये, कोयलें कूकने लगी और भौंरे गुंजारने लगे।

तीन तरह की (शीतल, मन्द और सुगन्धित) सुहावनी हवा चलने लगी जो काम की अग्नि को बढाने वाली थी। रम्भा आदि नवयुवती देवागनाएँ, जो सबकी सब कामकला मे निपुण थी—

वे बहुत सी तानों की तरंग में आकर गान करने लगीं और हाथ में गेंद लेकर नाना प्रकार से खेलने लगीं। अपने ऐसे सहायकों को देख कामदेव प्रसन्न हुआ और फिर तरह-तरह की माया रचने लगा।

पर जब कामदेव की कोई भी कला मुनि पर असर न कर सकी तब पापी कामदेव अपने ही भय से डर गया कि मेरा कुछ अनर्थ न हो जाय। (शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती !) लक्ष्मीपति भगवान् जिसके बड़े रक्षक हैं, उनकी सीमा (मर्यादा) को कौन दबा सकता है ?

अपने सभी सहायकों-सहित मन में हार मानकर कामदेव बड़ा भयभीत हुआ और उसने जाकर बहुत ही आर्त वचन कहते हुए नारदजी के चरण पकड़ लिये।

विशेष—सुन्दर पद-मैत्री, हनुमान की छटा और कामदेव की करतूत दर्शनीय है।

सभा मे जाकर उसने मुनि की सुशीलता एव अपनी करनी का सब वर्णन कर दिया। कामदेव की बातें सुनकर सबके मन मे आश्चर्य हुआ। उन सबने मुनि की प्रशसा की और श्रीहरि को सिर झुकाया।

तब नारद जी शिवजी के पास गये। उनके मन मे कामदेव को जीतने का अहकार हो गया था। उन्होने कामदेव की करतूत शिवजी को सुनाई। महादेव जी ने नारद जी को अत्यन्त प्यारा समझकर उपदेश दिया--हे मुनि! मैं तुम से बार-बार विनती करता हूँ कि जिस तरह यह बात तुमने मुझको सुनाई है, उस तरह भगवान् श्रीहरि को कभी मत सुनाना। यदि इसकी चर्चा चल भी जाय तो भी इसको छिपा लेना।

यद्यपि शिवजी ने नारद जी को यह हित की शिक्षा दी थी, पर नारद जी को यह अच्छी न लगी। याज्ञवल्क्य बोले हे भरद्वाज! अब जो कौतुक हुआ, उसे सुनो। हरि की इच्छा बडी बलवती है।

मूल—राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥
सभु बचन मुनि मन नहिं भाए। तब बिरचि के लोक सिधाए॥
एक बार करतल बर बीना। गावत हरि गुन गान प्रबीना॥
छीरसिंधु गवने मुनि-नाथा। जहँ बस श्री निवास श्रुतिमाथा॥
हरषि मिले उठि रमा निकेता। बैठे आसन रिषिन्ह समेता॥
बोले बिहँसि चराचर राया। बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया॥
काम चरित नारद सब भाषे। जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे॥
अति प्रचड रघुपति कै माया। जेहि न मोह अस को जग जाया॥
दोहा—रूख बदनि करि बचन मृदु बोले श्री भगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं, मोह मार मद मान॥१२८॥

शब्दार्थ—अन्यथा = विरुद्ध, विपरीत। बिरचि = ब्रह्मा। करतल = हाथ मे। श्रुतिमाथा = वेदो के मस्तक स्वरूप (मूर्तिमान् वेदान्ततत्व)। राया = स्वामी। जाया = पैदा हुआ। रूख बदन = रूखा मुह। जेहि = जिसको।

भावार्थ—श्रीराम जो किया चाहे, वही होता है, ऐसा कोई नही जो उसके विरुद्ध कर सके। शिवजी के वचन नारदजी के मन को अच्छे नही लगे, तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को गये।

एक बार हाथ मे सुन्दर वीणा लिये, भगवान् का यश गाने-वाले,

गानविद्या में निपुण मुनिनाथ नारदजी क्षीरसागर को गये, जहाँ लक्ष्मी के पति और वेदों के स्वामी रहते थे।

(मुनि को देख) लक्ष्मीपति प्रसन्न हो उठकर मिले और ऋषि के साथ आसन पर बैठ गये। चराचर के स्वामी भगवान् हँसकर बोले-हे मुनि! आज आपने बहुत दिनों में कृपा की।

यद्यपि शिवजी ने उन्हें पहले ही मना कर दिया था, तो भी नारदजी ने कामदेव का सारा चरित्र भगवान् को कह सुनाया। रामजी की माया बड़ी ही प्रबल है। जगत् में ऐसा कौन पैदा हुआ है, जिसे वह मोहित न कर लेती हो।

भगवान् रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले कि (हे मुनिराज!) तुम्हारे स्मरण करने से तो (दूसरों के) मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं (फिर आपके लिए तो कहना ही क्या!)

विशेष—(i) तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं' पंक्ति का एक अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि तुम्हारे स्मरण करने पर ही तुम्हारे मोह, काम, मद और मान छूटेंगे, अभी नहीं छूटे।

(ii) 'मिटहिं मोह मार मद मान' में वृत्यनुप्रास अलकार।

मूल—सुनु मुनि मोह होई मन ताकें। ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मैं सोई॥
तब नारद हरि पद सिर नाई। चले हृदयँ अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥

दोहा—बिरचेउ मग महुँ नगर तेहिं, सत जोजन बिस्तार।
श्री निवासपुर तें अधिक रचना बिबिध प्रकार॥१२९॥

शब्दार्थ—ताकें = उनके। मनोभव = कामदेव। अहमिति = अभिमान। बिरचेउ = रचा। जोजन = योजन (चार कोस या आठ मील)।

भावार्थ—(भगवान् नारायण नारद से कह रहे हैं) हे मुनि ! सुनिए, मोह तो उसके मन मे होता है जिसके हृदय मे न ज्ञान होता है और न वैराग्य। आप तो ब्रह्मचर्य व्रत मे लीन हैं तथा धीर-बुद्धि हैं। भला आपको कामदेव सता सकता है ?

यह सुन नारद जी ने अभिमान के साथ कहा—हे भगवन् ! यह सब आपकी कृपा है। करुणानिधि भगवान् ने अपने मन मे विचार कर देखा कि नारद के मन मे गर्वरूपी वृक्ष का अकुर पैदा हो गया है (कामदेव को जीतने का घमड हो गया है)। इसलिए मैं इसे तुरत ही उखाड फेंकूगा, क्योकि सेवको का हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूगा जिससे मुनि का तो हित होगा और मेरे लिए खेल होगा।

इसके बाद नारदजी हरि के चरणो मे सिर झुका कर चले गये, उस समय उनके हृदय मे अभिमान और भी बढा हुआ था। तब भगवान् ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब तुम उस माया की कठिन करतूत सुनो।

जिस रास्ते से नारद जी जा रहे थे, उस रास्ते पर भगवान् नारायण ने सौ योजन का एक नगर रचा, जो वैकुठ से भी भाँति-भाति की रचनाओ के कारण अधिक सुन्दर था।

मूल—बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनु धारी।।
तेहिं पुर बसइ सील निधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा।।
सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति निवासा।।
बिस्वमोहिनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी।।
सोइ हरिमाया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी।।
करइ स्वयंबर सो नृप बाला। आए तहँ अगनित महिपाला।।
मुनि कौतुकी नगर तेहिं गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ।।
सुनि सब चरित भूप गृहँ आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए।।

दोहा—आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहि के हृदय बिचारि।।१३०।।

शब्दार्थ—मनसिज=कामदेव। रति=कामदेव की पत्नी। हय=घोडा। गय=हाथी। बिमोह=मोहित हो जाय। जिसु=जिसका। आनि=लाकर।

उस नगर में ऐसे सुन्दर स्त्री-पुरुष बसते थे मानो बहुत से कामदेव और रति ही शरीर धारण किये हुए हों। उस नगर में शीलनिधि नामक राजा रहता था, जिनके पास अनगिनती घोड़े, हाथी और सेना के समूह थे।

उनका वैभव और विलास सौ इन्द्रों के समान था। वह बड़ा रूपवान, तेजस्वी, बली और नीतिमान् था। उसके विश्वमोहिनी नाम की एक (ऐसी रूपवती) कन्या थी, जिसके रूप को देखकर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जायें।

वह सब गुणों (सत्, रज, तम) की खान भगवान् की माया ही थी। फिर उसकी सुन्दरता का क्या वर्णन किया जा सकता है? वह राजकुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, जिसके लिए वहाँ अनगिनती राजा आये हुए थे।

खेल के शौकीन मुनि नारदजी उस नगर में गये और नगर-निवासियों से उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजा के महल में आये। राजा ने मुनि की पूजा कर (आसन पर) बैठाया।

राजा ने राजकुमारी को लाकर नारदजी को दिखाया और कहा—हे नाथ! हृदय में विचारकर इसके सब गुण और दोष कहिए।

मूल—देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरष नहिं प्रगट बखाने॥
जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥
लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप सन भाषे॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥
करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥
दोहा—एहि अवसर चाहिअ परम, सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल॥१३१॥

भावार्थ—बिरति=वैराग्य। बरइ=ब्याहेगा। बरै=विवाह करे। मेलै=पहनावे, गले में डाले।

भावार्थ.—नारद मुनि विश्वमोहिनी के रूप को देखकर वैराग्य भूल गये और बहुत देर तक उसको देखते ही रहे। उसके लक्षणों को देख कर वे

अपने आपको भूल गये, वे हृदय मे प्रसन्न होते हैं परन्तु प्रकट मे कुछ नही कहते हैं। लछणो के वारे मे विचार कर वे अपने मन मे इस तरह कहने लगे कि जो इसके साथ विवाह करेगा, वह अमर हो जायगा और रण-भूमि मे उसे कोई भी जीत न सकेगा। जिसे यह शील-निधि की कन्या व्याहेगी, उसकी सब चर और अचर सेवा करेंगे।

विश्वमोहिनी के सब लक्षणो को विचार कर नारद जी ने अपने हृदय मे रख लिया और अपनी ओर से बनाकर कुछ लक्षण राजा से कह दिये। उन्होंने राजा से कहा—तुम्हारी लडकी सुलछणा है—ऐसा कहकर नारद जी चले गये, परन्तु मन मे यह सोचते हुए कि मैं जाकर सोच-विचार कर अब वही उपाय करू जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप-तप कुछ भी न हो सकेगा। हे विधाता ! मुझे यह कन्या किस तरह मिले ?

इस अवसर पर तो अनूठी शोभा और रूप चाहिए, जिन्हे देखकर राजकुमारी रीझ जाय और गले मे जयमाला डाल दे।

मूल—हरि सम मांगों सुन्दरताई। होइहि जात गहरु अति भाई॥
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥
बहु बिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला।
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने।
अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई।
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भांति नहीं पावौं ओही॥
जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला॥

दोहा—जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार॥१३२॥

शब्दार्थ—गहरु = देर, विलम्ब। जुडाने = शीतल हो गये। अरति = दीन ओही = उसको। करब = करेंगे। मृषा = असत्य, झूठे।

भावार्थ—(विश्वमोहिनी को वरण करने के लिए नारद जी श्रीहरि से सहायता प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं) मैं भगवान् श्रीहरि से सुन्दरता मांगू, परन्तु उनके पास जाने मे तो बहुत देर हो जायगी। किन्तु श्रीहरि के

समान मेरा हितू भी कोई नही है जो इस अवसर पर मेरी सहायता करे। इसलिए उस समय नारद जी ने भगवान् की बहुत प्रकार से विनती की। फलत लीलामय और कृपालु प्रभु वही प्रकट हो गये। भगवान् को (अपने सामने (देखकर नारद जी के नेत्र शीतल हो गये। वे मन में बड़े प्रसन्न हुए कि अब काम बनने मे देरी नहीं (क्योंकि भगवान् ने उनकी विनती सुनली)।

नारद जी ने अत्यन्त दीन होकर श्रीहरि को सब कथा कह सुनाई और उनसे प्रार्थना की कि वे कृपा करके उनके सहायक बनें। नारद जी ने कहा – हे प्रभो! आपना रूप मुझे दे दीजिए, उसको (विश्वमोहिनी को) प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय है ही नहीं! नाथ! जिस प्रकार भी मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिए, मैं आपका दास हूँ।

अपनी माया का विशाल बल देखकर हृदय में हँसकर दीनदयालु भगवान् ने कहा – हे नारद जी! सुनो, जिस प्रकार आपका परमहित होगा, वही करेंगे, अन्य कुछ नही। हमारा वचन कभी असत्य नही होता।

मूल—कुपथ मांग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ॥
माया बिबस भए मुनि मूढ़ा। समुझी नहिं हरिगिरा निगूढ़ा॥
गवने तुरत तहां रिषिराई। जहां स्वयंवर भूमि बनाई॥
निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरें। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरें॥
मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा। नारद जानि सबहिं सिर नावा॥

दोहा—रहे तहाँ दुइ रुद्र गन, ते जानहिं सब भेउ।
बिप्रबेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥133॥

शब्दार्थ – रुज = रोग, बीमारी। ठयउ = करने की ठानी है। अन्तरहित – गायब। निगूढ़ा = अगूढ़ (स्पष्ट)। भोरे = भूल कर भी। भेउ = भेद।

भावार्थ – हे योगी मुनि! सुनो, रोग से व्याकुल रोगी यदि कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता, इसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने का निश्चय किया है। ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

माया के वशीभूत हुए मुनि नारद ऐसे मूढ हो गये कि वे भगवान् के बडे गूट वचन नही समझे। ऋषिराज नारद शीघ्र ही वहाँ गये, जहा स्वयवर की भूमि बनायी गयी थी।

राजा लोग अपने-अपने सिंहासनो पर खूब सजधजकर अपने समाज-सहित बैठे थे। मुनि नारद अपने मन मे प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बडा सुन्दर है। राजकन्या मुझे छोडकर किसी दूसरे को भूलकर भी नही वरेगी।

कृपानिधान भगवान् ने मुनि के हित के लिए उन्हें ऐसा बुरा रूप दिया कि जिसका वर्णन नही हो सकता। लेकिन यह चरित्र कोई भी नही जान सका, सबने उन्हे नारद मुनि जानकर सिर नवाया।

वहा महादेवजी के दो गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मण का वेश बनाकर सब लीला देखते फिरते थे, क्योकि वे बडे विनोदी थे।

विशेष (1) – इन गुणो को नारदजी का चरित्र देखने के लिए शिवजी ने तभी से उनके पीछे लगा दिया था कि जब नारदजी उन्हे अपनी कीर्ति सुनाकर ब्रह्मलोक को चले गये थे।

(11) अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

मूल—जेहिं समाज बैंठे मुनि जाई। हृदयँ रूप अहमिति अधिकाई॥
तहँ बैठे महेस गन दोऊ। बिप्रबेष गति लखइ न कोऊ॥
करहिं कूटि नारदहिं सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुन्दरताई॥
रीझिहि राजकुँअरि छबि देखि। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥
मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हसहिं संभुगन अति सचु पाएं॥
जदपि सुनहिं मुनि अटपटि बानी। समुझि न हरइ बुधि भ्रम सानी॥
काहुं न लखा सो चरित बिसेषा। सो सरूप नृप कन्या देखा॥
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥
दोहा – सखीं संग लै कुअँरि तब, चलि जनु राज मराल।
देखत फिरइ महीप सब, कर सरोज जयमाल॥१३४॥

शब्दार्थ – अहमिति = अभिमान। कूटि = व्यग्य वचन। नीकि = अच्छी। हरि = भगवान्, बन्दर – यहा यह श्लिष्ट पद है, दोनो अर्थो की ओर सकेत है। सचु = सुख। अटपटि = विचित्र सी, ठीक तरह समझ मे न आने

वाली। मर्कट = वानर। बदन = मुख। राजमराल = राजहंसिनी। सरोज = कमल।

जिस समाज में नारद मुनि अपने हृदय में रूप का बड़ा अभिमान लेकर बैठे थे, वहीं शिवजी के ये दोनों गण भी बैठे थे। लेकिन ब्राह्मण के वेष में होने के कारण उनकी गति कोई नहीं देख सका।

वे नारदजी को सुना सुनाकर व्यंग्य वचन कहते थे, भगवान् ने इनको अच्छी सुन्दरता दी है। राजकुमारी छवि देखते ही रीझ जायेगी और 'हरि' (वानर) समझकर विशेषकर इन्हे ही वरेगी।

नारद मुनि मोह के वश थे, उनका मन विराने माया के हाथ था और शिवजी के गण अति सुख (मनोरंजन का अच्छा साधन) पाकर हंस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी वाणी सुनते थे, पर बुद्धि भ्रम में सनी होने के कारण कुछ समझ में नहीं आता था।

जो विशेष चरित्र (नारजी का रूप) किसी ने नहीं देखा था, उस विशिष्ट स्वरूप को राजकुमारी ने देखा। उनका बन्दर के समान मुंह और भयंकर शरीर देखते ही उसके शरीर में क्रोध उत्पन्न हो गया।

तब राजकुमारी सखियों को संग लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही हो। वह अपने कमल समान हाथों में जयमाल लिये सब राजाओं को देखते हुए घूमने लगी।

विशेष — अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार।

मूल--जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥
धरि नृप तहं गयउ कृपाला। कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा॥
मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गांठी॥
तब हर गन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई॥
अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेषु बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढ़ा॥
दोहा — होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥१३५॥

शब्दार्थ – फूली = गर्व मे फूले हुए। तेहि = उसने। दिसि = तरफ। उकसहिं = उचकते हैं। लच्छि निवासा = लक्ष्मी निवास भगवान्। लैगे = ले गये। नाठी = नष्ट होगई। गाँठी = गाँठ। मुकुर = दर्पण। वारि = जल। सराप = श्राप।

भावार्थ—(विश्व मोहिनी की स्वयवर-सभा मे जो नारद जी की दुर्गति हुई, उसका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है) जिस तरफ नारद जी अपने रूप के घमड में फूले बैठे थे, उस तरफ विश्वमोहिनी ने भूल कर भी नही देखा। नारदजी बार-बार उचकते और छटपटाते हैं। उनकी यह दशा देख कर शिवजी के गण मुसकराते हैं। इतने ही मे कृपालु भगवान् भी राजा का शरीर धारण कर वहा आ पहुचे। राजकुमारी ने प्रसन्न होकर उनके गले मे जयमाला डाल दी। लक्ष्मी निवास भगवान् दुलहिन को ले गये। सारा नृप-समाज निराश हो गया।

मोह के कारण मुनि की बुद्धि नष्ट होगई थी, इसलिए वे राजकुमारी के हाथ से गई जान बहुत ही व्याकुल होगये, उन्हे ऐसा दु ख हुआ मानो गाठ से छूटकर कोई बहुमूल्य मणि गिर गई हो। मुनि को इस प्रकार बेचैन देख शिवजी के गणो ने मुसकरा कर कहा—जाकर अपना मुख दर्पण मे तो देखिए। ऐसा कहकर वे दोनो डर के मारे भाग गये। मुनि ने जल मे झाक कर अपना मुँह देखा। अपना ऐसा रूप देख कर नारदजी को बहुत क्रोध आया और उन्होंने शिवजी के उन दोनो गणों को अत्यत कठोर शाप दिया—

तुम दोनो कपटी और पापी हो, जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने जो हमारी हसी की, उनका फल चखो, फिर तुम किसी मुनि की हँसी करना।

विशेष—अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, उत्प्रेक्षा और लाटानुप्रास अलकार

मूल – पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदयं सतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माही। सपदि चले कमलापति पाहीं॥
देहउं श्राप की मरिहउ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहिं पंथ मिले दनुजारी। संग रमा सोइ राजकुमारी॥
बोले मधुर बचन सुरसाई। मुनि कहं चले बिकल की नाईं॥
सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥
पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरें इरिषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु। सुरन्ह प्रेरि बिष पान करायहु॥

क ।

दोहा—असुर सुरा बिष संकरहि, आपु रमा मनि चारु ॥
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहारु ॥१३६॥

शब्दार्थ—निज रूप=असली रूप । अधर=ओठ । सपदि=शीघ्र, तुरन्त । कमलापति=भगवान् विष्णु । उपहास=हँसी । दनुजारी=राक्षसों के शत्रु विष्णु भगवान् । सुरसाईं=देवताओं के स्वामी । नाई=तरह । इरिषा=ईर्ष्या, जलन । रुद्रहि=शिवजी को । बौरायहु=बावला बना दिया । सुरा=मदिरा । चारु=सुन्दर । मनि=कौस्तुभ मणि ।

शब्दार्थ—(शिवजी के गणों को शाप देने के अनन्तर नारदजी ने क्या किया ?) मुनि ने जल में अपना रूप फिर देखा, तो उन्हें अपना असली रूप प्राप्त होगया, किन्तु फिर भी उन्हें सतोष न हुआ—शांति नहीं मिली । उनके ओठ फड़क रहे थे, मन में क्रोध भरा था, तुरन्त ही वे भगवान् कमलापति के पास चल दिये । वे मन में सोचते जा रहे थे—जाकर या तो मैं उन्हें शाप दूंगा । या मैं अपने प्राण त्याग दूंगा । उन्होंने जगत् में मेरी हँसी कराई है । जब नारदजी इस तरह सोचते हुए जा रहे थे, तब बीच रास्ते में ही हरि उन्हें मिल गये—साथ में लक्ष्मी थी और वह राजकुमारी भी ।

देवताओं के स्वामी भगवान् ने मीठी वाणी में कहा-'हे मुनि ! वेचैन से कहां चले जा रहे हो ?' भगवान् के ये वचन सुनते ही नारदजी को बड़ा क्रोध आया, माया के वशीभूत होने के कारण उन्हें आत्म-बोध नहीं रहा । वे बोल उठे तुम दूसरों की सम्पदा नहीं देख सकते, तुम बहुत अधिक ईर्ष्या और कपट रखते हो । समुद्र-मन्थन के समय तुमने शिवजी को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित करके उन्हें विष-पान कराया ।

तुमने असुरों को मदिरा दी, शिवजी को विष दिया और स्वयं ने सुन्दर कौस्तुभ मणि ली । तुम सचमुच बड़े स्वार्थी और खोटे काम हो, तुम सदा कपट का व्यवहार करते हो ।

मूल—परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई । भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई ॥
भलेहि मंद मंदेहि भल करहू । बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू ॥
डहकि डहकि परिचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ॥
करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा । अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा ॥
भले भवन अब बायन दीन्हा । पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहंतुम्ह होब दुखारी॥
दोहा--श्राप सीस धरि हरषि हियं प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्हि॥१३७॥

शब्दार्थ—भावइ = अच्छा लगे। मद = बुरा। डहकि डहकि = ठग-ठग कर। परिचेहु = परीक्षा करते हो। साधा = ठीक किया। वायन दीन्हा = छेड़-छाड़ की। बंचेहु = ठगा है। जवनि देहा = जिस शरीर को। कीस = वानर। होब = होगे। करषि = खींच ली।

भावार्थ—तुम बड़े स्वतन्त्र हो, सिर पर कोई है नहीं, इसने जब जो मन में आता है, वही करते हो। भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो और अपने हृदय मे हर्ष-विषाद कुछ नहीं मानते।

सब को ठग-ठग कर तुम (ठगी के काम मे) परिचित (निपुण) हो गये हो, बड़े निडर हो, इसी से (ठगने के काम मे) मन मे सदा उत्साह रहता है। तुम्हें भले-बुरे काम की बाधा नही है (तुम यह नहीं सोचते कि वह काम अच्छा है या बुरा) और फिर अभी तक तुम्हे किसी ने सीधा भी नहीं किया है।

अब तुमने अच्छे घर वायना (निमन्त्रण) दिया है, सो जैसा तुमने किया है, वैसा ही फल पाओगे। जिस शरीर को धारन करके तुमने मुझे ठगा है, वही शरीर धारण करो, यही मेरा शाप है।

(सहायता के बदले) तुमने मेरी वन्दर की मुखाकृति बना दी, इसने वन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने (मुझे नारी-वियोगी बनाकर) मेरा बड़ा भारी अपकार किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग मे दुःखी होगे।

मुनि के शाप को सिर पर धारण कर कृपानिधान भगवान् ने हृदय मे हर्षित होते हुए अनेक प्रकार से विनती की और अपनी प्रबल माया को खेंच लिया।

विशेष—अनुप्रास, लाटानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

मूल—जब हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना॥

मृषा होउ मम श्राप कृपाला । मम इच्छा कह दीन दयाला ॥
मैं दुर्बचन कहे बहुतेरे । कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ॥
जपहु जाइ संकर सत नामा । होइहि हृदयं तुरत बिश्रामा ॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें । असि परतीति तजहुं जनि भोरें ॥
जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
अस उर धरि महि बिचरहु जाई । अब न तुम्हहि माया निअराई ॥

दोहा – बहुबिधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भए अन्तरधान ।
सत्यलोक नारद चले करत राम गुन गान ॥१३८॥

शब्दार्थ—गहे = पकड लिये । पाहि = रक्षा कीजिए । प्रनतारति (प्रनत = आरति) = शरणागत के कष्ट । मृषा = मिथ्या । परतीति = विश्वास । भोरें = भूल कर भी । निअराई = निकट आयेगी । प्रबोधि = समझा-बुझा कर ।

व्याख्या—जब भगवान् ने अपनी माया को दूर हटा लिया, तो वहाँ न लक्ष्मी रही न राजकुमारी । तब मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर भगवान् के चरण पकड़ लिये और कहा—हे शरणागत के दुःखों को हरने वाले भगवान् ! मेरी रक्षा कीजिये ।

हे कृपालु ! मेरा शाप झूठा हो जाय । तब दीनों पर दया करने वाले भगवान् ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा से हुआ है (तुम चिन्ता मत करो) । मुनि ने कहा – मैंने आपको बहुत से वचन कहे हैं, मेरा यह पाप कैसे मिटेगा ?

(भगवान् ने कहा) जाकर शिवजी के शतनाम का जाप करो इससे हृदय में तुरन्त शान्ति होगी । शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है । इस विश्वास को भूलकर भी नहीं छोडना ।

हे मुनि ! जिस पर शिवजी का जाप नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता । ऐसा हृदय में धारण करके तुम पृथ्वी पर विचरण करते रहो । अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं जावेगी ।

व्याख्या – तब मुनि को अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर प्रभु अन्तर्धान हो गये और नारदजी श्रीराम के गुण गाते हुए सत्यलोक को चले ।

इसके बाद मुनि को अनेक प्रकार से समझा बुझा कर भगवान् अन्तर्धान होगये और राम के गुणों को गाते हुए नारदजी भी सत्य-लोक को चल दिये ।

मूल – हर गन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेषी ॥
अति सभीत नारद पहिं आए। गहि पद आरत बचन सुनाए ॥
हर गन हम न बिप्र मुनिराया। बड़ अपराध कीन्ह फल पाया ॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीन दयाला ॥
निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ ॥
भुज बल बिस्व जितब तुम जहिआ। धरिहहिं बिष्णु मनुज तनु तहिआ ॥
समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि संसारा ॥
चले जुगल मुनि पद सिर नाई। भए निसाचर कालहि पाई ॥

दोहा – एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रंजन सज्जन सुखद हरि भंजन भुवि भार ॥१३९॥

शब्दार्थ—अनुग्रह = कृपा। जितब = जीतोगे। जहिआ = जब। तहिआ = तब। जुगल = दोनो। रंजन = प्रसन्न करना। भुवि = पृथ्वी।

भावार्थ— शिवजी के गणों ने मुनि को मार्ग मे जाते हुए देखा—वे मोह-रहित और मन मे बहुत प्रसन्न थे। तब वे डरते हुए नारदजी के पास आये और उनके चरण पकड कर दीन वचन बोले—हे मुनिराज ! हम ब्राह्मण नहीं हैं, हम तो शिवजी के गण हैं। हमने बडा अपराध किया, जिसका फल हमें मिल गया। हे कृपालु ! अब आप शाप दूर करने की कृपा करें। तब दीनो पर दया करने वाले नारदजी ने कहा—तुम दोनो जाकर राक्षस हो जाओ, तुम्हे महान् ऐश्वर्य, तेज और बल प्राप्त हो। जब तुम अपनी भुजाओं के बल से सारे ससार को जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु मनुष्य-शरीर धारण करेंगे। युद्ध मे तुम्हारी मृत्यु हरि के हाथ से होगी, जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर तुम्हे ससार मे जन्म न लेना पडेगा। शिवजी के वे दोनों गण मुनि के चरणो मे सिर नवा कर चले गये और समय पाकर फिर वे राक्षस हुए।

देवताओ को प्रसन्न करने वाले, सज्जनो को सुख देने वाले और पृथ्वी के भार को हरने वाले भगवान् ने एक कल्प में इसी कारण मनुष्य का अवतार लिया था।

विशेष—अनुप्रास अलकार।

मूल – एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुन्दर सुखद बिचित्र घनेरे ॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं ॥

तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई॥
बिबिध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥
हरि अनंत हरि कथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥
रामचन्द्र के चरित सुहाये। कल्प कोटि लगि जाहिं न गाये॥
यह प्रसंग मैं कहा भवानी। हरिमाया मोहहिं मुनि ज्ञानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हित कारी। सेवत सुलभ सकल दुखहारी॥
सोरठा—सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं, भजिय महामाया पतिहि॥१४०॥

शब्दार्थ—केरे=के। प्रबन्ध बनाई=काव्य रचना करके। प्रनत=शरणागत। कौतुकी=लीलामय।

भावार्थ—इस प्रकार भगवान् के जन्म और कर्म, सुन्दर, सुखदाई और बड़े विचित्र हैं। प्रत्येक कल्प में भगवान् अवतार लेते हैं और तरह-तरह के अच्छे-अच्छे चरित्र करते हैं।

तब-तब की कथाओं को मुनीश्वरों ने बड़े-बड़े पवित्र ग्रन्थ रचकर गाया है और भाँति-भाँति के अनुपम प्रसंगों का वर्णन किया है, जिनको सुनकर विवेकी जन आश्चर्य नहीं करते।

भगवान् अनन्त हैं और उनकी कथा भी अनन्त है। सब सन्तलोग उसे बहुत तरह से कहते-सुनते हैं। श्रीराम के सुन्दर चरित्र करोड़ों कल्पों में भी गाये नहीं जा सकते।

(महादेवजी कहते हैं) हे पार्वती! यह प्रसंग मैं तुमसे कह चुका हूँ कि ज्ञानी मुनि भी भगवान् की माया से मोहित हो जाते हैं, प्रभु लीलामय हैं और शरणागत का हित चाहने वाले हैं। वे सेवा करने से बहुत सुलभ हैं और सब प्रकार के दुःखों को हरने वाले हैं।

कोई ऐसा देवता, मनुष्य और मुनि नहीं है, जिसे भगवान् की प्रबल मोहमाया ने मोहित न किया हो। मन में ऐसा विचार कर महामाया के स्वामी भगवान् का ही भजन करना चाहिये।

मूल—अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥

जो प्रभु विपिन फिरत तुम्ह देखा। बन्धु समेत धरें मुनि बेषा ॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी ॥
अजहुं न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनि भ्रम रुजहारी ॥
लीला कीन्हि जो तेहिं अवतारा। सो सब कहिहउं मति अनुसारा ॥
भरद्वाज सुनि संकर बानी। सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी ॥
लगे बहुरि बरनैं वृषकेतू। सो अवतार भयउ जेहि हेतू ॥

दोहा—सो मैं तुम्ह सन कहउं सबु, सुनु मुनीस मन लाइ।
राम कथा कलिमल हरनि, मंगल करनि सुहाइ ॥१४१॥

शब्दार्थ—अपर = दूसरा। बौरानी = बावली। रुज = रोग। सुहाई = सुन्दर।

भावार्थ—हे पार्वती! अब भगवान् के अवतार का दूसरा कारण सुनो, उसकी विचित्र कथा मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ—जिस कारण से जन्म-रहित, निर्गुण और रूपरहित ब्रह्म अयोध्या के राजा हुए।

जिन भगवान् को तुमने भाई के साथ मुनियों का सा वेष धारण किये वन में फिरते देखा था और हे भवानी! जिनके चरित्र को देखकर सती के शरीर में तुम बावली सी हो गयी थी—

और अभी भी तुम्हारे उस बावलेपन की छाया मिटी नहीं है। उन्हीं श्रीराम के भ्रमरूपी रोग के हरण करने वाले चरित्र सुनो। उस अवतार में श्रीराम ने जो-जो लीलाएँ की हैं, वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें कहूँगा।

(याज्ञवल्क्य ने कहा) हे भरद्वाज! शिवजी की वाणी सुनकर पार्वतीजी सकोच और प्रेम से मुसकराईं। फिर शिवजी जिस कारण से भगवान् का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे।

वही सब मैं तुमसे कहता हूँ। हे मुनीश्वर भरद्वाज! मन लगाकर सुनो। श्रीराम की कथा कलियुग के पापों को हरने वाली, कल्याण करने वाली और बड़ी सुन्दर है।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—स्वयंभू मनु अरु सतरूपा । जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ॥
दंपति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू । ध्रुव हरि भगत भयउ सुत जासू ॥
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही । बेद पुरान प्रसंसहिं जाही ॥
देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥
आदि देव प्रभु दीनदयाला । जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ॥
सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना । तत्त्व बिचार निपुन भगवाना ॥
तेहिं मनु राज कीन्ह बहु काला । प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला ॥

दोहा—होइ न बिषय बिराग, भवन बसत भा चौथपन ।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥१४२॥

शब्दार्थ—स्वायंभू = स्वायंभुव । सतरूपा = शतरूपा । भै = हुई । लीका = मर्यादा । जठर = पेट । प्रभू आयसु = भगवान् की आज्ञा । चौथपन भा = बुढ़ापा आगया । गयउ = बीत गया ।

भावार्थ – (याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कह रहे हैं) स्वायंभुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई, दोनों पति-पत्नी भले प्रकार धर्म और आचरण रख रहे थे । आज भी वेद जिनकी मर्यादा का गान करते हैं । राजा उत्तानपाद उन्हीं के पुत्र थे, जिनके प्रसिद्ध हरिभक्त ध्रुव उत्पन्न हुए । उन मनुजी के छोटे लड़के का नाम प्रियव्रत था, जिसकी वेद और पुरान प्रशंसा करते हैं । फिर देवहूति नाम की उनके एक कन्या हुई जो कर्दम मुनि की प्यारी पत्नी बनी, जिसने भगवान् कपिल को जो आदिदेव, दीनदयालु एवं कृपालु हैं, गर्भ में धारण किया । कपिल तत्वों के विचार करने में निपुण थे और उन्होंने प्रत्यक्ष में सांख्यदर्शन का प्रतिपादन किया ।

उन स्वायंभुव मनु ने बहुत काल तक राज्य किया और भगवान् की आज्ञाओं का सब प्रकार से पालन किया शास्त्रों की मर्यादा का पालन करते हुए, राज्य किया) ।

यद्यपि मनु का घर में रहते-रहते बुढ़ापा आगया, तथापि उन्हें विषयों से विरक्ति नहीं हुई । यह सोचकर उन्हें बहुत दुःख हुआ कि बिना भगवान् की भक्ति के जन्म यों ही चला गया ।

मूल—बरबस राज सुतहि तब दीन्हा । नारि समेत गवन बन कीन्हा ॥
तीरथ वर नैमिष विख्याता । अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥
बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा । तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा ॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा । ग्यान भगति जनु धरें सरीरा ॥
पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा । हरषि नहाने निरमल नीरा ॥
आए मिलन सिद्ध मुनि ग्यानी । धरम धुरंधर नृपरिषि जानी ॥
जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाए । मुनिन्ह सकल सादर करवाए ॥
कृस सरीर मुनि पट परिधाना । संत समाज नित सुनहिं पुराना ॥

दोहा—द्वादस अच्छर मंत्र पुनि, जपहिं सहित अनुराग ।
वासुदेव पद पंकरुह, दंपति मन अति लाग ॥१४३॥

शब्दार्थ—नैमिष = नैमिषारण्य । वर = श्रेष्ठ । मतिधीरा = धीर बुद्धि वाले । धेनु-मति = गोमती । नृपरिषि = राजर्षि । पट = वस्त्र । द्वादस अच्छर मंत्र = बारह अक्षरो वाला मंत्र । (ओम नम भगवते वासुदेवाय) पंकरुह = कमल ।

भावार्थ – तब मनुजी ने विवश हो अपने पुत्र को राज्य दे दिया और स्वयं पत्नी-सहित वन को चले गये । नैमिषारण्य एक बड़ा प्रसिद्ध और सुन्दर तीर्थ है, जो अत्यन्त पवित्र और साधको को सिद्धि देने वाला है ।

वहाँ मुनियो और सिद्धो का समाज रहता था । राजा मनु हृदय मे प्रसन्न होकर वही चले । ये धीरबुद्धि वाले रास्ते मे जाते हुए ऐसे शोभित हो रहे थे मानो ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किये जा रहे हों ।

चलते-चलते वे गोमती नदी के किनारे पहुंचे और हर्षित होकर उन्होने निर्मल जल मे स्नान किया । राजा मनु को धर्म-धुरंधर राजर्षि जानकर सिद्ध, मुनि और ज्ञानी उनसे मिलने आये ।

जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, उन सबके दर्शन मुनियो ने उन्हे आदर से करा दिये । उनका शरीर दुबला हो गया था, वे मुनियो के से वस्त्र पहिने थे तथा संतो के समाज मे नित्य पुराण सुनते थे ।

वे भगवान् के द्वादशाक्षर मंत्र (ओम नमो भगवते वासुदेवाय) को प्रेम से जपा करते थे और उन दोनो का मन भगवान् वासुदेव के चरण-कमलो मे भली भाँति लग गया ।

विशेष—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और रूपक अलङ्कार।

मूल—करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे॥ बारि अधार मूल फल त्यागे॥
उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनन्त अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथवादी॥
नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥
सभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहिं अभिलाषा॥

दोहा—एहि बिधि बीते बरस षट, सहस बारि अहार।
संबत सप्त सहस्त्र पुनि, रहे समीर अधार॥१४४॥

शब्दार्थ—कंदा = जमींकंद। बारि = जल। परमारथबादी = ब्रह्मज्ञानी, तत्ववेत्ता। चिंतहिं = चिन्तन करते हैं। निरुपाधि = उपाधि रहित। लीलातनु = लीलामय शरीर। गहई = धारण करते हैं। पूजिहिं = पूरी होगी। समीर = वायु।

भावार्थ—वे साग, फल और कंद का आहार करते और सच्चिदानंद ब्रह्म का स्मरण करते थे। फिर वे भगवान् श्रीहरि के लिए तप करने लगे और मूल फल को त्यागकर केवल पानी के आधार पर रहने लगे।

उनके हृदय में सदा यही कामना रहा करती थी कि हम उन परम प्रभु को आँखों से देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि है और जिनका परमार्थवादी चिन्तन किया करते हैं।

जिनका वेद ने नेति-नेति कहकर निरूपण किया है और जो आनन्दस्वरूप उपाधिरहित और अनुपम है एवं जिनके अंश से अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णु उत्पन्न होते हैं।

ऐसे (महान्) प्रभु भी अपने दास के वश में रहते हैं और भक्तों के लिए लीला से शरीर धारण करते हैं। यदि वेदों का यह वचन सत्य है, तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी।

इस प्रकार जल का आहार करके तप करते छः हजार वर्ष बीत गये। फिर सात हजार वर्ष वे पानी के आधार से रहे।

विशेष—अनुप्रास अलकार ।

मूल—बरस सहस दस त्यागेउ सोऊ । ठाढे रहे एक पद दोऊ ॥
विधि हरि हर तप देखि अपारा । मनु समीप आए बहु बारा ॥
माँगहु वर बहु भाति लोभाए । परम धीर नहि चलहि चलाए ॥
अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा । तदपि मनाग मनहि नहि पीरा ॥
प्रभु सर्वग्य दास निज जानी । गति अनन्य तापस नृप-रानी ॥
मागु मागु बरु भै नभ बानी । परम गभीर कृपामृत सानी ॥
मृतक जिआवनि गिरा सुहाई । स्रवन रध्र होइ उर जब आई ॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए । मानहुँ अबहि भवन ते आए ॥

दोहा—स्रवन सुधा सम बचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात ।
बोले मनु करि दडवत, प्रेम न हृदय समात ॥१४५॥

शब्दार्थ—चलहि = विचलित होते हैं । मनाग = थोडी सी भी, जरा भी । भै = हुई । गिरा = वाणी । स्रवन-रध्र = कानो के छेद ।

भावार्थ—और दस हजार वर्ष तक पानी का सहारा भी छोडकर, दोनो एक पैर से खडे रहे । उनके इस अपार तप को देखकर ब्रह्मा, विष्णु महेश कई बार मनुजी के पास आये ।

उन्होंने इन्हे अनेक प्रकार से ललचाया और कहा—कुछ वर मागो, पर वे परम धैर्यवान् राजा-रानी डिगाये नही डिगे । यद्यपि उनका शरीर हड्डि का ढाचामात्र रह गया था, फिर भी उनके मन मे किसी प्रकार की पीडा नही थी ।

सर्वज्ञ प्रभू ने अनन्य गति वाले तपस्वी राजा-रानी को निज दास जाना । तब बडी-गम्भीर और कृपा-रूपी अमृत से सनी हुयी आकाशवाणी हुई कि वर माँगो, वर मागो ।

जब मुर्दे को जिलाने वाली यह सुन्दर वाणी कानो के छेदो मे होकर हृदय मे आयी तब राजा-रानी के शरीर ऐसे सुन्दर और हृष्टपुष्ट हो गये मानो अभी घर मे आये है ।

कानो मे अमृत के समान वचन सुनकर उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया । (प्रभू को देख) मनुजी दण्डवत करके बोले, उस समय उसके हृदय मे प्रेम समाता नही था ।

विशेष—अनुप्रास उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा अलंकार।

मूल—सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥
जौ अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होई यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मनमाही। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥
दंपति वचन परम प्रिय लागे। मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

दोहा—नील सरोरुह नील मनि नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥१४६॥

शब्दार्थ—सुरतरु = कल्पवृक्ष। सुरधेनु = कामधेनु। पद रेनू = चरन-रज। मन-मानस = मन रूपी मानसरोवर। प्रनतारति मोचन = शरणागत के दुःख मिटाने वाले। भगत बछल = भक्त वत्सल (भक्तों को प्यार करने वाले)। सरोरुह = कमल। नीरधर = बादल। जौं = यदि।

नील कमल, नीलमणि और सजलनीलमेघ के समान भगवान् के श्यामवर्ण शरीर की शोभा का देखकर करोडो कामदेव भी लजा जाते है ।

विशेष – सुनु सेवक सुरतरु सुर धेनु' तथा 'सेवत सुलभ सकल सुख दायक' मे वत्यनुप्रास अलकार। 'सुरतरु सुरधेनु' मे उसी अर्थ मे 'सुर' की आवृति होने से तथा इसी प्रकार 'सगुन अगुन' मे 'गुन' की आवृत्ति उसी अर्थ मे होने से लाटानुप्रास अलकार। 'मन मानस हसा' मे परम्परित रूपक दोहे मे 'नील' शब्द की उसी अर्थ मे आवृत्ति होने से लाटानुप्रास तथा 'कोटि-कोटि' मे पुनरुक्ति प्रकाश अलकार।

मूल—सरद मयंक बदन छवि सींवा । चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा ।।
अधर अरुन रद सुन्दर नासा । बिधुकर निकर बिनिंदक हासा ।।
नव अंबुज अंबक छबि नीकी । चितवनि ललित भावँती जी की ।।
भृकुटि मनोज चाप छबिहारी । तिलक ललाट पटल दुतकारी ।।
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा । कुटिल केस जनु मधुप समाजा ।।
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला । पदिक हार भूषन मनि जाला ।।
केहरि कंधर चारु जनेऊ । बाहु बिभूषन सुन्दर तेऊ ।।
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा । कटि निषग कर सर कोदंडा ।।

दोहा—तडित बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि ।
नाभि मनोहर लेती जनु जमुन भवँर छबि छीनी ।।१४७।।

शब्दार्थ—मयंक = चन्द्रमा । बदन = मुख । कपोल = गाल । चिबुक = ठोडी । दर = शख । ग्रीवा = गर्दन । अरुन = लाल । रद = दाँत । नासा = नाक बिधुवर निकर = चन्द्रमा की किरणो का समूह । अंबुज = कमल । अंबक – नेत्र ललित = मनोहर । भावती = प्यारी लगने वाली । चाप = धनुष । दुतिकारी = प्रकाशमय । मकर = मछली । भ्राज्या = सुशोभित था । कुटिल = टेढे । पदिक हार = रत्न जटित हार । केहरि कंधर = सिंह के कंधे । करि कर = हाथी की सूंड । सरिस = समान । निषग = तरकश । कोदंडा = धनुष । तडित = बिजली बिनिंदक = लजाने वाला ।

भावार्थ—सुन्दरता की सीमा अर्थात् शरद् के परम सुन्दर चन्द्रमा के समान मुख, सुन्दर गाल और ठोडी और शख के समान उनका कठ था । तथा

उनके लाल होंठ, सुन्दर दाँत और नाक तथा चन्द्रमा की किरणों के पुंज की निन्दा करने वाली हँसी थी।

हाल में खिले हुए कमल के समान उनके नेत्रों की छवि बड़ी सुन्दर थी तथा उनकी मनोहर चितवन मन को भाने वाली थी। उनकी टेढ़ी भौंहें कामदेव के धनुष की शोभा को हरने वाली थीं और ललाट पर प्रकाशमय तिलक था।

कानों में मछली के आकार के कुंडल और सिर पर मुकुट शोभायमान था। उनके घुंघराले बाल ऐसे मालूम होते थे मानो भौंरों का झुंड हो। उनके हृदय पर श्रीवत्स का चिन्ह, सुन्दर वनमाला, रत्न-जटितहार और मणियों के जाल में गुँथे हुए आभूषण शोभित थे।

सिंह के से कन्धे पर पड़ा हुआ सुन्दर जनेऊ था और भुजाओं में जो गहने थे, वे भी सुन्दर थे। हाथी की सूँड के समान उनके सुन्दर भुजदण्ड थे तथा उनकी कमर में तरकस तथा हाथ में धनुषबाण शोभायमान थे।

बिजली की निन्दा करने वाला पीताम्बर और पेट पर सुन्दर तीन रेखाएँ थीं। नाभी ऐसी मनोहर थी, मानो यमुनाजी के भँवरों की छवि छीने ही लेती हो।

विशेष—उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार। 'कर निकर' में यमक।

मूल—पद राजीव बरनि नहिं जाहीं। मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छवि निधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
छवि समुद्र हरि रूप विलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥
हरष विवस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाए करुना पुंजा॥

दोहा—बोले कृपा निधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥१४८॥

भावार्थ—भगवान् के उन चरण कमलों का, जिनमें मुनियों के मन रूपी भौंरे बसते हैं, वर्णन नहीं किया जा सकता। भगवान् के वाम भाग में सदा अनुकूल रहने वाली आदि शक्ति सुशोभित थी, जो शोभा की राशि और जगत् की मूल कारण रूपा है। जिनके अंश से गुणों की खान अनगिनती लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी (तीनों देवों की तीन शक्तियाँ) उत्पन्न होती हैं, तथा जिनके भृकुटि विलास से ही जगत् की रचना हो जाती है, वही सीता राम के बायीं ओर स्थित हैं। (श्रीहरि—भगवान् विष्णु राम हैं और आदि शक्ति सीता हैं)।

राजा मनु और रानी शतरूपा शोभा-सागर विष्णु भगवान् का यह रूप देखकर पलकों की गति को रोक एक टक देखते रहे, आदर-पूर्वक भगवान् के उस रूप को निरखते-निरखते तृप्त नहीं होते थे। वे इतने आनन्द मग्न हो गये कि उन्हें अपने शरीर की सुधि भी नहीं रही, वे अपने हाथों से भगवान् के चरण पकड़ कर लकड़ी की तरह पृथ्वी पर सीधे पड़ गये। करुणा निधान भगवान् ने अपना अभयहस्त उनके सिर पर रखकर उन्हें उठा लिया।

तदनन्तर भगवान् ने कहा कि मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे तुम बड़ा भारी दानी समझकर, जो वर तुम्हें अच्छा लगे (तुम्हारे मन को भाये), वही माग लो।

विशेष—रूपक अलंकार।

मूल – सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोले मृदु बानी ॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ॥
एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं ॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाई ॥
जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई ॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदय मम संसय होई ॥
सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥
सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही ॥

दोहा— दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सति भाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ। १४९ ॥

शब्दार्थ-जुग पानी = दोनों हाथ। आगम = कठिन। कृपनाई = कृपणता (दीनता) बिबुधतरु = कल्पवृक्ष। पुरवहु = पूर्ण करो। सकुच बिहाइ = संकोच छोड़कर। भाति साद = सच्चा भाव। दुराव = छिपाव, छिपाना।

भावार्थ—प्रभु के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजा ने कोमल वाणी से कहा—नाथ! आपके चरण-कमलों के दर्शन कर अब हमारी सब कामनायें पूर्ण हो गयी।

हमारे मन में एक बड़ी लालसा है। उसका पूर्ण होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसी से उसका वर्णन कहते नहीं बनता। हे स्वामी! आपको देने में तो बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता के कारण अत्यन्त कठिन लगती है।

जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष को पाकर भी अधिक सम्पत्ति माँगने में संकोच करता है, क्योंकि वह उसके प्रभाव को नहीं जानता, वैसा ही संदेह मेरे मन में हो रहा है।

सो हे अन्तर्यामी प्रभु! आप स्वयं उसे जानते हैं। हे स्वामी! मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये। (भगवान् ने कहा) हे राजन! संकोच को त्यागकर मुझसे (जो चाहो) माग लो, क्योंकि मेरे यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तुमको देने योग्य नहीं हो।

(राजा ने कहा) हे दयासागर! आप दानियों के शिरोमणि हैं। हे स्वामी! मैं अपने मन का सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभु से भला क्या छिपाना।

विशेष—रूपक, लाटानुप्रास, उदाहरण और उपमा अलंकार।

मूल – देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥
सतरूपहि बिलोकि कर जोरे। देबि मागु बरु जो रुचि तोरें॥
जो बरु नाथ चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥
प्रभु परन्तु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सोहाई॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरजामी॥
अस समुझत मन संसय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

दोहा – सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु ।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहि कृपा करि देहु ।।१५० ।।

शब्दार्थ—अमोले = अमूल्य । एवमस्तु (ऐसा ही हो) । तनय = पुत्र । होव = होऊगा । सोहाई = अच्छी लगती है । प्रवान = सत्य । अहही = हैं । लहही = पाते है ।

भावार्थ—(भगवान् राजा मनु और रानी शतरूपा को वर प्रदान कर रहे हैं) करुणा-निधान भगवान् ने राजा का प्रेम देख कर तथा उसके अमूल्य वचनो को सुन कर कहा—'ऐसा ही हो' । हे राजन ! मै अपने-जैसा अन्य कहाँ जाकर खोजूँ इसलिए मै स्वय ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूगा । तदनन्तर भगवान् ने शतरूपा को हाथ जोडे देख कर कहा—हे देवि ! तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर मागलो । हे कृपालु भगवन ! जो वर चतुर राजा ने मागा है, वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा । परन्तु हे प्रभो ! यह बहुत ढिठाई हो रही है और भक्त हितार्थ यह आपको अच्छी ही लगती है । आप ब्रह्मा आदि के उत्पन्न करने वाले हो तथा ससार के स्वामी हो, और सब के हृदय के भीतर की जानने वाले ब्रह्म हो ।

इस प्रकार समझते हुए (कि आप ब्रह्म है और हमारे पुत्र रूप मे अवतरित होगे) मन मे सदेह होता है । फिर भी हे प्रभो ! आपने जो कुछ कहा है, वही प्रमाण (सत्य) है । हे नाथ ! मैं तो आपसे यह मांगती हूं कि आपके जो निज जन (भक्त) हैं और वे जो सुख पाते हैं और जिस परम गति को प्राप्त होते हैं, वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणो मे प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन सहन हे प्रभो ! आप कृपा करके हमे दीजिए ।

विशेष—उपमा, अनुप्रास और लाटानुप्रास अलंकार ।

मूल—सुनि मृदु गूढ रुचिर वर रचना । कृपा सिंधु बोले मृदु वचना ।।
जो कछु रुचि तुम्हरे मनमाहीं मै सो दीन्ह सब संसय नाहीं ।।
मातु विवेक अलौकिक तोरे । कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें ।।
बन्दि चरन मनु कहेउ बहोरी । अवर एक विनती प्रभु मोरी ।।
सुत विषइक तव पद रति होऊ । मोहि बड़ मूढ कहै किन कोऊ ।।
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना । ममजीवन तिमि तुम्हहि अधीना ।।

अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥

सोरठा—तहँ करि भोग बिसाल, तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत॥१५१॥

शब्दार्थ—रुचिर = मनोहर। बर रचना = सुन्दर वाक्य रचना। रुचि = इच्छा। तोरें = तुम्हारा। बहोरी = फिर। अपर = और। फनि = साँप। अनुसासन = आज्ञा। सुरपति राजधानी = अमरावती। भुआल = राजा।

भावार्थ—(रानी के) कोमल, गूढ़ और परम सुन्दर वचनों की रचना सुनकर कृपा के समुद्र भगवान् कोमल वचन बोले कि तुम्हारे मन में जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

हे माता! मेरी कृपा से तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट नहीं होगा फिर मनु ने भगवान के चरणों की वन्दना करते हुए कहा—हे प्रभो! मेरी एक विनती और है।

(हे प्रभो!) आपके चरणों में मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्र के लिए पिता की होती है, भले ही कोई मुझे बड़ा भारी मूर्ख क्यों न कहे। जैसे मणि के बिना साँप और जल के बिना मछली नहीं रह सकती वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे।

ऐसा कह कर राजा चरण पकड़ कर रह गये, तब दयानिधान भगवान ने कहा—ऐसा ही हो। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इन्द्रलोक में जाकर निवास करो।

हे तात! वहाँ बहुत से भोग भोगकर और कुछ काल बीत जाने पर तुम अवध के राजा होंगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।

विशेष—अनुप्रास, विनोक्ति और उपमा अलंकार।

मूल—इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारे॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा ॥
पुनि-पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना ॥
दंपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला ॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा ॥

दोहा – यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही वृष केतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु ॥१५२॥

शब्दार्थ – निकेत = घर। पुरउब = पूरी करूंगा। अनयासा = बिना किसी कष्ट के। अपर = अन्य दूसरा।

भावार्थ – अपनी इच्छा से मनुष्य रूप धरकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊंगा और हे तात! मैं अपने अंशों-सहित शरीर धारण कर भक्तों को सुख देने वाला चरित्र करूंगा।

जिनको आदर से सुनकर भाग्यशाली मनुष्य ममता और मद त्यागकर संसार से तर जायेंगे। आदि शक्ति मेरी यह माया भी जिसने जगत को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी।

मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूंगा। मेरा यह वचन सत्य है, सत्य है, सत्य है। बार-बार ऐसा कहकर कृपानिधान भगवान अन्तर्धान हो गये।

वे दोनों स्त्री पुरुष भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान को हृदय में धारण कर कुछ काल तक वहां रहे। फिर उन्होंने समय पाकर बिना किसी कष्ट के ही शरीर त्याग कर इन्द्रपुरी में जाकर निवास किया।

इस अत्यन्त पावन इतिहास को शिवजी ने पार्वतीजी से कहा था। (याज्ञवल्क्यजी कहते हैं) हे भरद्वाज! अब श्रीराम के जन्म का दूसरा कारण सुनो।

विशेष – अनुप्रास, लाटानुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।

मूल – सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति संभु बखानी ॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसइ नरेसू ॥
धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना ॥
तेहि कें भए जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा ॥

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रताप भानु अस ताही॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा॥
भाइहि भाइहि परम समीती। सकल दोष छल बरजित प्रीती॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा। हरि हित आपु गवन बन कीन्हा॥

दोहा—जब प्रतापरबि भयउ नृप, फिरि दोहाइ देस।
प्रजा पाल अति बेदबिधि, कतहुँ नहीं अघ लेस॥१५३॥

शब्दार्थ – पुनीत = पवित्र। जुगल = दो। बीरा = वीर। राजधनी – राज्य का उत्तराधिकारी। आही – था। ताही – उसका। अपर – दूसरा। समीते – मेल। बरजित – रहित। प्रतापरवि – प्रतापभानु।

भावार्थ —हे मुनिराज! वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो जो शिव जी ने पार्वतीजी से कही थी। विश्व में विख्यात एक कैकय देश है, जहां सत्यकेतु नाम का राजा रहता था।

वह धर्मधुरंधर, नीति की खान, तेजस्वी, प्रतापी, शीलवान और बली था। उनके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणों के भण्डार और बडे ही रणधीर थे।

राज्य का उत्तराधिकारी जो बडा पुत्र था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे बेटे का नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओं में अपार बल था और युद्ध में अटल था।

(परस्पर) भाई-भाई में बडा मेल था और सब दोषों तथा छलों से रहित सच्ची प्रीति थी। राजा ने जेठे पुत्र को राज्य दे दिया और आप भगवान का भजन करने के लिए वन में चला गया।

जब प्रतापभानु राजा हुआ तब देशभर में उनकी दुहाई फिर गयी। वह वेद की उत्तम रीति से प्रजा का पालन करने लगा, जिससे उसके राज्य में पाप का लेश भी नहीं रहा।

विशेष —छेकानुप्रास, लाटानुप्रास अलंकार।

मूल—नृप हितकारक सचिव सयाना। नाम धरमरुचि सुक्र समाना॥
सचिव सयान बंधु बलबीरा। आपु प्रताप पुंज रन धीरा॥
सेन संग चतुरंग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना॥

विजय हेतु कटकई बनाई । सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ॥
जहँ तहँ परी अनेक लराईं । जीते सकल भूप बरि आईं ॥
सप्तदीप भुजबल बस कीन्हे । लै लै दंड छाडि नृप दीन्हे ॥
सकल अवनि मंडल तेहि काला । एक प्रतापभानु महिपाला ॥

दोहा—स्वबस विस्व करि बाहुबल, निजपुर कीन्ह प्रवेसु ।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवइ समयँ नरेसु ॥१५४॥

शब्दार्थ—सचिव = मत्री । सयाना = बुद्धिमान । सुक्र = शुक्राचार्य । सुभट = योद्धा । जूझारा = जूझ मरने वाले । गहगहे = घमाघम (जोर-शोर से)। निसाना = नगाडे । कटकई = सेना । वरिआई = वलपूर्वक । अवनि = पृथ्वी ।

भावार्थ —राजा का हितू और शुक्राचार्य के समान बुद्धिमान धर्मरुचि नामक उसका मत्री था इस प्रकार चतुर मत्री तथा शूरवीर भाई के साथ राजा भी स्वय वडा ही प्रतापी और रणधीर था ।

साथ मे अपार चतुरङ्गिनी सेना थी, जिसमे अनगिनती योद्धा थे, जो सबके सब लडाई मे जूझ मरने वाले थे । अपनी सेना को देखकर राजा बहुत ही हर्षित हुआ और घमाधम नगाडे वजने लगे ।

विजय के लिए सेना सजाकर, राजा शुभ दिन साधकर और डका वजा कर चला । जहा-तहा अनेक लडाइयाँ लडी और (अन्त मे) उसने सब राजाओ को अपनी शक्ति से जीत लिया ।

उसने अपनी भुजाओ के वल से सातो दीपो को वश मे कर लिया और वहा के राजाओ से दण्ड ले-ले कर उन्हे मुक्त कर दिया । उस समय समस्त भूमण्डल का एकमात्र प्रतापभानु ही राजा था ।

अपनी भुजाओ के वल से ससार को वश मे करके राजा ने अपने नगर मे प्रवेश किया और समयानुसार धर्म, अर्थ, काम आदि के सब सुखो का सेवन करने लगा ।

मूल—नृप प्रतापभानु बल पाई । कामधेनु भै भूमि सुहाई ॥
सब दुख बरजित प्रजा सुखारी । धरम सील सुन्दर नर नारी ॥

सचिव धरम रुचि हरिपद प्रीती । नृप हित हेतु सिखव नित नीती ॥
गुर सुर संत पितर महिदेवा । करइ सदा नृप सब कै सेवा ॥
भूप धरम जे बेद बखाने । सकल करइ सादर सुख माने ॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना । सुनइ सास्त्र बर बेद पुराना ॥
नाना बापी कूप तडागा । सुमन बाटिका सुन्दर बागा ॥
बिप्रभवन सुरभवन सुहाए । सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए ॥

दोहा—जहँ लगि कहे पुरान श्रुति, एक एक सब जाग ।
बार सहस्र सहस्र नृप, किए सहित अनुराग ॥१५५॥

शब्दार्थ—कामधेनु = मनचाही वस्तु देने वाली । भै = हो गई । महिदेवा = ब्राह्मण । बापी = बावड़िया । सुर भवन = देव-मन्दिर । जाग = यज्ञ ।

भावार्थ :—(राजा प्रतापभानु के दान, धर्म आदि का वर्णन किया जा रहा है) राजा प्रतापभानु का बल पाकर भूमि सुन्दर कामधेनु हो गई उसके राज्य में प्रजा सब दुखों से रहित होकर सुखी बन गई और सब स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे ।

मन्त्री धर्मरुचि की हरि के चरणों में प्रीति थी । वह राजा के हित के लिए सदा उसको नीति सिखाया करता था । राजा सदा गुरु, देवता, संत पितर और ब्राह्मण-इन सबकी सेवा करता था ।

वेद में जो राजाओं के धर्म बताए गए हैं, उन सबको वह आदर पूर्वक और सुख मान कर करता था । प्रतिदिन वह अनेक प्रकार के दान देता था और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुनता था ।

उसने बहुत-सी बावड़िया, कुएं, तालाब, पुष्पवाटिकाएं और सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणों के लिए घर तथा सुन्दर देव-मन्दिर सब तीर्थों में बनवा दिये ।

वेद पुराणों में जितने प्रकार के यज्ञ कहे गये हैं, राजा ने एक-एक करके उन सबको हजार-हजार बार बड़े प्रेम के साथ कर डाले ।

विशेष—अनुप्रास, लाटानुप्रास तथा पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार ।

मूल—हृदयँ न कछु फल अनुसंधाना । नृप बिबेकी परम सुजाना ॥
करइ जे धरम करम मन बानी । बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥
चढ़ि बर बाजि बार एक राजा । मृगया कर सब साजि समाजा ॥
बिंध्याचल गभीर बन गयऊ । मृग पुनीत बहु मारत भयऊ ॥

फिरत विपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥
बड़ बिधु नहिं समात मुख माहीं। मनहुँ क्रोध बस उगिलत नाहीं ॥
कोल कराल दसन छबि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई ॥
घुरघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ ॥

दोहा—नील महीधर सिखर सम, देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाँकि न होइ निबाहु ॥१५६॥

शब्दार्थ—अनुसधाना = टोह, कामना। बाजि = घोड़ा। मृगया = शिकार। पुनीत = पवित्र, उत्तम। बराहू = सूअर। दुरेउ = छिप गया। बिधु = चन्द्रमा। कोल = सूअर। कराल = भयकर। दसन = दांत। पीवर = भरा-पूरा मोटा। हय आरौ = घोड़े की आहट। महीधर = पर्वत। चपरि = शीघ्र, वेग से। सुटुकि = चाबुक मार कर। सुजाना = ज्ञानी। हाँकि = ललकार कर।

भावार्थ—राजा ने हृदय में (उन यज्ञों के) फल की कुछ भी कामना नहीं की। वह परम चतुर और ज्ञानी था। मन, वाणी और कर्म से वह ज्ञानी राजा जो कुछ भी धर्म (कर्म) करता था, उन्हे भगवान् वासुदेव के अर्पण करके करता था।

एक बार वह राजा सुन्दर घोड़े पर चढकर और शिकार का सब सामान सजाकर विन्ध्याचल के घने जगल मे गया और वहा उसने बहुत से पवित्र (निषेध-रहित) पशुओ को मारा।

राजा ने उस वन मे घूमते हुए एक सूअर को देखा, जो ऐसा मालूम होता था मानो चन्द्रमा को ग्रसकर राहु वन मे आ छिपा हो। (उसके मुह से निकले हुए दांत ऐसे मालूम होते थे) मानो चन्द्रमा बडा होने से उसके मुह मे समाता नहीं है और क्रोधवश होने से वह उसे उगलता भी नहीं है।

मैंने उस भयानक सूअर के डरावने दातो की शोभा कही। उस का शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था। घोड़े की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाकर चकित हो देखने लगा।

नीले पर्वत के शिखर के समान उस विशाल सूअर को देखकर राजा घोड़े को चाबुक लगाकर तेजी से चला और उसने सूअर को ललकारते हुए कहा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता।

विशेष—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और उपमा अलंकार।

मूल—आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ बराह मरुत गति भाजी॥
तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना॥
तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस नृप चलेउ संग लागा॥
गयउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू॥
कोल बिलोकि नृप बड़ धीरा। भागि पैठ गिरिगुहाँ गँभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महाबन परेउ भुलाई॥

दोहा—खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत॥१५७॥

शब्दार्थ—रव = शब्द (टापों की आवाज)। बाजी = घोड़ा। मरुत = हवा। अकेल = अकेला। कोल = सूअर। गिरिगुहा = पहाड़ की गुफा। परेउ भुलाई = रास्ता भूल गया। खेद खिन्न = अत्यधिक श्रम से थका हुआ। छुद्धित = भूखा।

भावार्थ—घोड़े को बहुत शब्द करते हुए (बहुत तेजी से अपनी ओर) आता देखकर सूकर पवन वेग से भाग चला। राजा ने शीघ्र ही बाण चढ़ाया जिसे देखते ही वह धरती में दुबक गया।

राजा तक-तक कर तीर चलाता था। पर सूअर छल करके शरीर बचाता था। वह सूअर कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भाग चला, राजा भी क्रोध के वश होकर उसके साथ ही लगा चला गया।

सूअर बहुत दूर ऐसे घने वन में चला गया, जहाँ हाथी घोड़े का निर्वाह न था। (यद्यपि) राजा अकेला था और वन में क्लेश भी बहुत था, तो भी उसने सूअर का पीछा नहीं छोड़ा।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—फिरत विपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिवेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छड़ाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥
समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी॥
रिस उर मारि रंक जिमि राजा। विपिन बसइ तापस के साजा॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रताप रवि तेहि तब चीन्हा॥
राउ तृषित नहिं सो पहिचाना। देखि सुवेष महामुनि जाना॥
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा॥

दोहा—भूपति तृषित बिलोकी तेहिं, सरवरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ॥१५८॥

शब्दार्थ—लीन्ह छडाई = छीन लिया था। पराई गयेउ = भाग गया था। चीन्हा = पहचान लिया। तुरग = घोडा। हय = घोडा।

भावार्थ—वन मे फिरते-फिरते प्रतापभानु ने एक आश्रम देखा जहा एक राजा कपट से मुनि का वेश धर कर रहता था, जिनका कि देश राजा प्रतापभानु ने छीन लिया था और जो सेना को छोडकर युद्ध से भाग गया था। उस समय प्रतापभानु का अच्छा और अपना बुरा समय समझ कर उनके मन मे बडी ग्लानि उत्पन्न हुई। इससे वह न तो घर गया और न वह अभिमानी राजा प्रतापभानु से ही मिला (उससे भी अभिमान-वश मेल नही किया।)

वह राजा दरिद्र की भाति क्रोध को मन ही मे रख कर तपस्वी के वेश मे वन मे रहता था। राजा प्रतापभानु जब उनके समीप गया, तब उसने तुरन्त पहचान लिया कि यह राजा प्रतापभानु ही है। प्रतापभानु प्यास से बहुत व्याकुल था, अत उसने उसको पहचाना। उसके तपस्वी के सुन्दर वेश को देखकर राजा ने उसे महामुनि समझा। उसने घोडे से उतर कर उसको प्रणाम किया। राजा परम चतुर था, अत उसने उसको अपना नाम नही बताया।

मुनिवेषी राजा ने प्रतापभानु को प्यासा देखकर सरोवर दिखला दिया। राजा ने हर्षित होकर घोडे सहित उसमे स्नान और जलपान किया।

विशेष—अनुप्रास और उपमा अलंकार।

मूल—गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ॥
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी॥
को तुम्ह कस बन फिरहु अकेलें। सुन्दर जुबा जीव परहेलें॥
चक्रबर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरें॥
नाम प्रतापभानु अवनीसा। तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बड़ें भाग देखेउँ पद आई॥
हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौं कछु भल होनिहारा॥
कह मुनि तात भयउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगरु तुम्हारा॥

दोहा—निसा घोर गंभीर बन, पंथ न सुनहु सुजान।
बसहु आजु अस जानि तुम्ह, जाएहु होत बिहान ॥१५८॥ (क)
तुलसी जसि भवतब्यता, तैसी मिलइ सहाइ।
आपुनु आवइ ताहि पहिं, ताहि तहाँ लै जाइ ॥१५९॥ (ख)

शब्दार्थ—तापस=तपस्वी। जुबा=युवक। जीव परहेलें=हथेली पर प्राण लिये, जीवन की परवाह न करके। अवनीसा=राजा। अहेरें=शिकार के लिए। जोजन=योजन (चार कोस का एक योजन होता है)। बिहान=सबेरा। भवितब्यता=होनहार। सहाइ=सहायता। पहिं=पास।

भावार्थ—सब थकावट दूर हो गई और राजा (स्नान एवं जलपान कर) सुखी हुआ, तब वह तपस्वी उसे अपने आश्रम में ले गया और सूर्यास्त का समय जानकर (बैठने के लिए) आसन दिया, फिर वह तपस्वी कोमल वाणी से बोला—

होने वाला है। मुनि बोला–हे तात! अंधेरा हो गया और तुम्हारा नगर यहां से सत्तर योजन (२८० कोस) पर है।

हे सुजान! सुनो, घोर अंधेरी रात है, गहरा जंगल है और रास्ता सूझता नहीं है, यह जानकर आज तुम यहीं रहो, सवेरा होते ही चले जाना।

तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसी होनहार होती है, वैसी ही उसे सहायता मिल जाती है। या तो वह आप ही उसके पास आती है या उसको वहां ले जाती है।

मूल—भलेहिं नाथ आयसु धरि सीसा। बांधि तुरग तरु बैठ महीसा॥
नृप बहु भांति प्रसंसेउ ताही। चरन बंधि निज भाग्य सराही॥
पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करउं ढिठाई॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज हरहु बखानी॥
तेहिं न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहइ निज काजा॥
समुझि राजसुख दुखित अराती। अवां अनल इव सुलगइ छाती॥
सरल वचन नृप के सुनि काना। बयर संभारी हृदयं हरषाना॥

दोहा—कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत॥१६०॥

शब्दार्थ—भलेहिं = बहुत अच्छा। आयसु = आज्ञा। तुरग = घोड़ा। सो = वह। सुहृद = साफ दिल वाला। अराती = शत्रु। बयर = बैर। संभारि = स्मरण करके। बोरि = डुबोकर। जुगुति = युक्ति। निकेत = घर।

भावार्थ–राजा ने कहा–हे नाथ! बहुत अच्छा-(आज रात यहीं रह जाऊंगा), ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिर पर धारण कर राजा घोड़े को पेड़ से बांध कर बैठ गया। राजा ने उस तपस्वी की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और उसके चरणों की वन्दना कर अपने भाग्य की सराहना की।

फिर सुन्दर कोमल वाणी से कहा—हे प्रभो! (मैं आपको) पिता समझकर एक ढिठाई करता हूं। हे मुनिराज! मुझे अपना पुत्र और सेवक समझकर हे स्वामी! अपना नाम (धाम) विस्तार से कहिये।

राजा ने उसे नहीं पहिचाना, पर वह (तपस्वी) राजा को पहिचान गया था। क्योंकि राजा तो शुद्धहृदय था और वह कपट में चतुर था। एक

तो वह वैरी, दूसरे जाति का क्षत्रिय और तीसरे राजा—इसी से वह छल-बल से अपना काम बनाना चाहता था।

वह शत्रु राज्य का सुख स्मरण करके दुखी हो रहा था और उसकी छाती कुम्हार के आँवे की आग के समान सुलग रही थी। राजा के सरल वचन कान से सुनकर उसने अपने वैर को याद किया और हृदय में प्रसन्न हुआ।

फिर वह बड़ी युक्ति से कपट में सानकर कोमल वाणी बोला—अब हमारा नाम भिखारी है क्योंकि हम निर्धन और घर-रहित हैं।

विशेष—अनुप्रास और उपमा अलंकार।

मूल—कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना॥
सदा रहहिं अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ॥
तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें। परम अकिंचन प्रिय हरि केरें॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा॥
जोसि सोसि तव चरन नमामी। मो पर कृपा करिअ अब स्वामी॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु बिषय बिस्वास बिसेषी॥
सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सतिभाउ कहउँ महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला॥

दोहा—अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मैं न जनावउँ काहु।
लोकमान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु॥१६१॥ (क)

सोरठा—तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुन्दर केकिहि पेखु, बचन सुधा सम असन अहि॥१६१॥ (ख)

शब्दार्थ—सारिखे = सदृश। अपनपौ = अपने स्वरूप को। दुराए = छिपाये रहते हैं। टेरें = पुकार कर। अकिंचन = गरीब। अगेहा = घर रहित। बिरंचि = ब्रह्मा। जोसि सोसि = आप जो कोई भी हो। बिसेषी = अधिक। अपनाई = अपने वश में करके। सतिभाउ = सत्य। जनावउँ = प्रकट करता हूँ। लोकमान्यता = लोक की प्रतिष्ठा, मानमर्यादा। अनल = अग्नि। कानन = वन। केकिहि = मोर को। पेखु = देखो। असन = भोजन, आहार। अहि = सर्प।

भावार्थ—राजा प्रतापभानु ने कहा–हे मुनीश्वर ! जो आप जैसे विज्ञान के निधान है तथा सर्वथा अभिमान रहित हैं, वे सदा अपने वास्तविक रूप को छिपाये रहते हैं, क्योंकि कुवेष धारण कर रहने मे ही सब तरह का कल्याण है (अथवा वे सब तरह से चतुर होते है; परन्तु दिखाने को बुरा वेष बनाये रखते हैं, जिससे उन्हे कोई पहचान न सके) ।

इसीलिए तो सत और वेद पुकार-पुकार कर कहते है कि हरि को वे ही प्रिय होते है जो अति दीन होते हैं (जिनके पास कुछ भी नहीं होता) । आप जैसे निर्धन भिखारी और गृह-विहीनो को देखकर ब्रह्मा और शिवजी को भी सदेह हो जाता है कि ये वास्तव मे सत हैं या भिखारी ।

राजा कहता है—आप जो कोई भी हो, मै आपके चरणो मे नमस्कार करता हूँ । हे स्वामी ! अब आप मुझ पर कृपा कीजिए ।

मुनि-वेषी शत्रु-राजा ने, जब राजा की, अपने ऊपर स्वाभाविक प्रीति और अपने विषय मे उसका अत्यधिक विश्वास देखा तब उसने यह जानकर कि राजा सब प्रकार से अपना बन गया है अर्थात् वश मे हो गया है, अत्यधिक स्नेह जताकर कहा—हे राजन् ! सुनो, मै तुमसे सत्य कहता हूँ- मुझे यहा रहते हुए बहुत समय बीत गया ।

अब तक मुझ से न कोई मिला और न मैंने ही अपने-आपको कभी किसी पर प्रकट किया; क्योकि लोक मे जो मान (सम्मान या प्रतिष्ठा) प्राप्त होता है, वह अग्नि के समान है जो तपरूपी वन को भस्म कर डालता है । (लोगो द्वारा मान्यता प्राप्त कर साधु को अहकार हो जाता है और अहकार तप को नष्ट कर देता है) ।

तुलसीदास जी कहते हैं—मूर्खों की बात ही जाने दो, सुन्दर वेष देख कर चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं । सुन्दर मोर को देखो, वचन तो बोलता है अमृत के समान और निगल जाता है साँप को भी (मयूर का रूप-रग सुन्दर और वाणी अमृतोपम किन्तु आहार साप का) ।

विशेष—उपमा और अलकार ।

मूल – तातें गुपुत रहउँ जग माहीं । हरि तजि किमपि प्रयोजन नाहीं ।।
प्रभु जानत सब बिनहिं जनाएँ । कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ ।।

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरे । प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे ॥
अब जौं तात दुरावउँ तोहि । दारुन दोष घटइ अति मोहि ॥
जिमि जिमि तापसु कथइ उदासा । तिमि तिमि नृपहि उपज बिस्वासा ॥
देखा स्वबस कर्म मन बानी । तब बोला तापस बगध्यानी ॥
नाम हमार एकतनु भाई । सुनि नृप बोलेउ पुनि सिर नाई ॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी । मोहि सेवक अति आपन जानी ॥

दोहा—आदि सृष्टि उपजी जबहिं, तब उतपति भै मोरि ।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—जनि आचरजु करहु मन माहीं। सुत तप ते दुर्लभ कछु नाहीं॥
तप बल तें जग सृजइ विधाता। तपबल विष्नु भये परित्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा। तप तें अगम न कछु ससारा॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा॥
करम धरम इतिहास अनेका। करइ निरूपन बिरति बिवेका॥
उदभव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी॥
सुनि महीप तापस बस भयऊ। आपन नाम कहन तब लयऊ॥
कह तापस नृप जानउँ तोही। कीन्हेउ कपट लाग भल मोही॥

सोरठा—सुनु महीस असि नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, सोइ चतुरता विचारि तव ॥१६३॥

शब्दार्थ—परित्राता = पालन करने वाला। पुरातन = पुरानी।

भावार्थ—हे पुत्र ! मन मे आश्चर्य मत करो, तप से कुछ भी दुर्लभ नही है। तप के बल से ही विधाता विश्व को बनाता है और तप के बल से ही ही विष्णु ससार का पालन करने वाले बने हैं।

तप के बल से ही शिवजी (जगत का) नाश करते हैं। इस प्रकार ससार मे कोई ऐसी वस्तु नही, जो तप से न मिल सके। यह सुन राजा को बड़ा प्रेम हुआ। तब वह तपस्वी पुरानी कथाएँ कहने लगा।

वह कर्म धर्म, अनेको प्रकार के इतिहास और ज्ञान एवम् वैराग्य का निरूपण करने लगा। उसने सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और सहार की अनेक आश्चर्यजनक कथाओ का विस्तार से वर्णन किया।

(उपर्युक्त कथाएं) सुनते ही राजा तपस्वी के वश मे हो गया और तब वह अपना नाम बताने लगा। तपस्वी ने कहा—हे राजन् ! मै तुम्हें जानता हूँ। तुमने मेरे से कपट किया, पर वह मुझे अच्छा लगा।

हे राजन् ! सुनो, ऐसी नीति है कि राजा लोग जहा-तहा अपना नाम नही कहते हैं। तुम्हारी उसी चतुरता को देखकर मेरी तुम पर बहुत प्रीति हो गयी है।

मूल—नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु पिता नरेसा॥
गुर प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिअ न आपन जानि अकाजा॥

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीत नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममता मन मोरे। कहउँ कथा निज पूछे तोरे॥
अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं। माँगु जो भूप भाव मन माहीं॥
सुनि सुबचन भूपति हरषाना। गहि पद बिनय कीन्हि बिधि नाना॥
कृपासिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥
प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी। माँगि अगम बर होउँ असोकी॥

दोहा—जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनि कोउ।
एक छत्र रिपुहीनमहि, राज कलप सत होउँ ॥१६४॥

शब्दार्थ—प्रताप दिनेसा = प्रतापभानु। अकाजा = हानि। सुधाई = सीधापन। तोरे = तेरे, तुम्हारे। भाव = अच्छा लगे। अगम = दुर्लभ।

भावार्थ—हे राजन्! तुम्हारा नाम प्रतापभानु है और सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे। हे राजन्! गुरु की कृपा से मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझकर कुछ कहता नहीं।

हे तात! तुम्हारी स्वाभाविक सरलता, प्रेम, विश्वास और नीति-निपुणता देखकर मेरे मन में तुम्हारे लिए ममता उत्पन्न हो गयी है, इसीसे मैं तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कहता हूँ।

मैं अब प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं। हे राजन्! जो तुम्हारे मन में अच्छा लगे सो माँगो। मुनि के सुन्दर वचन सुनकर राजा हर्षित हुआ और उसने (मुनि के) पैर पकड़ कर अनेक प्रकार से विनती की।

हे दयासागर मुनि! आपके दर्शन से (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चारों पदार्थ मेरी मुट्ठी में आ गये (मुझे प्राप्त हो गये)। तो भी स्वामी को प्रसन्न देखकर मैं कोई दुर्लभ वर माँगकर शोक-रहित क्यों न हो जाऊँ।

मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दुःख से रहित हो युद्ध में मुझे कोई जीत न सके। मेरा शत्रुहीन एकछत्र राज्य सौ कल्प तक पृथ्वी पर रहे।

विशेष—अलंकार उल्लास।

मूल—कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालउ तुअ पद नाइहि सीसा। एक बिप्रकुल छाड़ि महीसा॥
तप बल बिप्र सदा बरिआरा। तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुअ बस बिधि बिष्नु महेसा॥

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई । सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई ॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला । तोर नास नहिं कवनेहु काला ॥
हरषेउ राउ बचन सुनि तासू । नाथ न होइ मोर अब नासू ॥
तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना । मो कहुँ सर्व काल कल्याना ॥

दोहा—एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटील बहोरि ।
मिलब हमार भुलाब निज, कहहुत हमहि न खोरि ॥१६५॥

शब्दार्थ—बरि आरा = बलवान । बरिआई = जोर-जबरदस्ती । कवनेहुँ = किसी भी । तासू = उसके । एवमस्तु = ऐसा ही हो । भुलाव = राह भूल जाना । खोरि = दोष ।

भावार्थ—(कपटी मुनि राजा प्रतापभानु से कह रहा है) तपस्वी बोला—हे राजन ! ऐसा ही हो, किन्तु इसमे एक बडी भारी अडचन है, उसे भी सुनलो । हे पृथ्वीपति ! एक ब्राह्मण-कुल को छोडकर काल तक तेरे चरणो मे सिर झुकायेंगे ।

तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान् हैं, उनके क्रोध से रक्षा करनेवाला कोई नही है । हे नरेश ! यदि तुम ब्राह्मणो को अपने वश मे करलो, तो ब्रह्मा विष्णु और महेश भी तुम्हारे वश मे हो जायेंगे ।

ब्राह्मण-कुल के साथ जोर-जबरदस्ती नही चल सकती, यह सत्य बात मैं दोनों भुजा उठाकर कहता हूँ । हे पृथ्वी-पालक ! सुनो, बिना ब्राह्मण के शाप के तुम्हारा नाश किसी भी काल मे नही होगा ।

राजा उसके वचन सुनकर बडा प्रसन्न हुआ और बोला हे नाथ ! अब मेरा नाश नही होगा । हे कृपानिधि प्रभु ! आपकी कृपा से सदा मेरा ही कल्याण ही होगा ।

'ऐसा ही हो' ऐसा कह कर वह कपटी दुष्ट मुनि फिर बोला—हे राजन् ! मेरे मिलने और अपने मार्ग भटकने की बात किसी से न कहना, यदि कह दोगे, तो हमारा दोष नही ।

विशेष—अनुप्रास अलकार ।

मूल – तातें मैं तोहि बरजउँ राजा । कहें कथा तव परम अकाजा ॥
छठें श्रवत यह परत कहानी । नास तुम्हार सत्य मम बानी ॥

यह प्रकटे अथवा द्विज श्रापा। नास तोर सुनु भानु प्रतापा॥
आन उपायँ निधन तव नाहीं। जौं हरि हर कोपहिं मन माहीं॥
सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥
राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जगत्राता॥
जौं न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहिं सोच हमारे॥
एकहिं डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥

दोहा – होहिं बिप्र बस कवन बिधि, कहहु कृपा करि सोउ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज, हितू न देखउँ कोउ॥१६६॥

शब्दार्थ – बरजउँ = मना करता हूँ। कहें कथा = इस प्रसंग को अन्यत्र कहने पर। अकाजा = हानि। निधन = मृत्यु। भाषा = कहा। सोउ = वह भी।

भावार्थ—हे राजन्! मैं इसलिए तुमसे मना करता हूँ क्योंकि यह बात कह देने से तुम्हारी बड़ी हानि होगी छठे कान में इस कहानी के पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा—मेरी यह वाणी सत्य है।

हे प्रतापभानु! सुनो, या तो इस बात के खुलने से या ब्राह्मणों के शाप से तुम्हारा नाश होगा। यदि भगवान् विष्णु और महादेव भी अपने मन में क्रोध करें तो किसी अन्य उपाय से तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी।

राजा ने मुनि के चरण पकड़कर कहा—हे स्वामी! सत्य ही है। ब्राह्मण और गुरु के कोप से भला कौन रक्षा करता है। यदि विधाता भी क्रोध करें तो गुरु बचा लेता है, परन्तु गुरु से विरोध करने पर संसार में कोई भी बचाने वाला नहीं है।

जो मैं आपके कहने पर नहीं चलूँगा, तो मेरा नाश हो जाए। इसका सोच मुझे नहीं है। लेकिन हे प्रभो! मेरा मन तो एक ही भय से डर रहा है कि ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयानक होता है।

वे ब्राह्मण किस प्रकार वश में हों, कृपा करके वह भी कहिये। हे दीनदयालु! आपको छोड़ अन्य किसी को मैं अपना हितकारी नहीं समझता।

विशेष—अनुप्रास तथा 'डर डरपत' में सार्थक-निरर्थक 'डर' शब्द की आवृत्ति से यमक अलंकार।

मूल – सु नृप विविध जतन जग माहीं । कष्टसाध्य पुनि होहिं कि नाहिं ॥
अहइ एक अति सुगम उपाई । तहाँ परन्तु एक कठिनाई ॥
मम आधीन जुगुत नृप सोई । मोर जाब तव नगर न होई ॥
आजु लगे घरु जब तें भयऊँ । काहू के गृह ग्राम न गयऊँ ॥
जौं न जाउँ तव होइ अकाजू । बना आइ असमंजस आजू ॥
सुनि महीस बोलेउ मृदु बानी । नाथ निगम असि नीति बखानी ॥
बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं । गिरी निज सिरनि सदा तृन धरहीं ॥
जलधि अगाध मौलि वह फेनू । संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥

दोहा – अस कहि गहे नरेश पद, स्वामी होहु कृपाल ।
मोहि लागि दुख सहिल प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

शब्दार्थ—जतन = यत्न, उपाय । कष्टसाध्य = बड़ी कठिनता से सिद्ध होने वाले । अहइ = है । जाब = जाना । असमंजस – दुविधा । मौलि = मस्तक पर । वह = धारण करता है । फेनू = फेन, झाग ।

भावार्थ—(तपस्वी बोला) हे राजन् ! सुनो, ससार मे उपाय तो बहुत है परन्तु वे सभी कष्टसाध्य हैं और फिर उनकी सफलता भी निश्चित नही है, वे सिद्ध हो या न हो । हा, एक उपाय बहुत सरल है, परन्तु उसमे भी एक कठिनाई है ।

हे राजन् ! वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर तुम्हारे नगर मे मेरा जाना नही हो सकता । जबसे मैं पैदा हुआ हूँ, तब से आज तक किसी के घर या ग्राम मे नही गया हूँ ।

यदि मैं (तुम्हारे साथ) नही जाता हूँ, तो तुम्हारा काम बिगडता है । आज कैसा असमञ्जस आ पडा है ? यह सुन राजा कोमल वाणी से बोला—हे नाथ ! वेदो मे ऐसी नीति कही है—

बडे छोटो पर स्नेह करते हैं । (इसलिए) पर्वत अपने सिर पर सदा तृण धारण किए रहते है । अथाह समुद्र अपने मस्तक पर फेन को धारण करते हैं और पृथ्वी सदा अपने सिर धूल को धारण करती है ।

हे स्वामी ! कृपा कीजिए-ऐसा कहकर राजा ने मुनि के चरण पकड लिये । हे प्रभो ! मेरे लिए इतना कष्ट सहिये, क्योकि आप बडे सज्जन और दीनदयालु हैं ।

विशेष—अनुप्रास और दृष्टान्त अलकार ।

मूल—जानि नृपहि आपन आधीना । बोला तापस कपट प्रवीना ।।
सत्य कहउ भूपति सुनु तोही । जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही ।।
अवसि काज मैं करिहउं तोरा । मन तन वचन भगत तैं मोरा ।।
जोग जुगुति तप मंत्र प्रभाऊ । फलइ तबहि जब करिअ दुराऊ ।।
जौं नरेश मैं करौं रसोई । तुम्ह परुसहु मोहि जानन कोई ।।
अन्न सो जोई जोई भोजन करई । सोई सोई तव आयसु अनुसरई ।।
पुनि तिन्ह के गृह जेवंइ जोऊ । तव वस होइ भूप सुनु सोऊ ।।
जाइ उपाय रचहु नृप एहू । संवत भरि सकल्प करेहू ।।
दोहा—नित नूतन द्विज सहज सत, वरेहु सहित परिवार ।
मैं तुम्हारे सकलप लगि, दिनहिं करबि जेवनार ।।१६८।।

भावार्थ—(कपटी मुनि राजा प्रतापभानु को ब्राह्मणो को वश मे करने का उपाय बता रहा है) राजा को सब तरह से अपने वश मे जानकर वह चतुर कपटी तपस्वी बोला—हे राजन् ! सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि ससार मे मेरे लिए कोई वस्तु दुर्लभ नही है । मैं तुम्हारा काम अवश्य करूंगा, क्योंकि तू मेरा मन, वचन, कर्म से भक्त है । किन्तु योग, युक्ति, तप और मन्त्रो का प्रभाव तभी फलीभूत होता है जब वे छिपकर किये जाते हैं ।

हे राजन् ! यदि मे रसोई बनाऊ और तुम परोसो, और मुझको कोई न जाने, तो जो-जो उस अन्न खायेगा, वह तुम्हारे वश में हो जायगा । फिर उन लोगो के घर मे जो भोजन करेगा, हे राजन सुनो, वह भी तुम्हारे वश में हो जायगा । हे राजन ! तुम घर जाकर यही उपाय करो और वर्ष भर ब्राह्मणो को भोजन कराने का सकल्प कर लो ।

तुम नित्य नये एक लाख ब्राह्मणो को कुटुम्ब सहित निमन्त्रित करना और मैं तुम्हारे सकल्प-काल तक अर्थात् एक वर्ष तक भोजन बना दिया करूंगा ।

मूल—एहि विधि भूप कष्ट अति थोरें । होइहहिं सकल विप्र वस तोरें ।।
करिहहिं विप्र होम मख सेवा । तेहिं प्रसग सहजेहिं वस देवा ।।
और एक तोहि कहउं लखाऊ । मैं एहिं वेष न आउब काऊ ।।
तुम्हरे उपरोहित कहुं राया । हरि आनब मैं करि निज माया ।।

तपवल तेहि करि आपु समाना । रखिहउँ इहां वरस परवाना ॥
मैं धरि तासु वेषु सुनु राजा । सब विधि तोर सँवारन काजा ॥
गै निसि बहुत सयन अब कीजे । मोहि तोहि नृप भेंट दिन तीजे ॥
मैं तपबल तोहि तुरग समेता । पहुँचैहउँ सोवतहि निकेता ॥
दोहा—मैं आउव सोइ वेषु धरि, पहिचानेहु तब मोहि ।
जब एकात बोलाइ सब, कथा सुनावौं तोहि ॥१६९॥

भावार्थ—हे राजन् ! इस प्रकार थोडे ही कष्ट से सब ब्राह्मण तुम्हारे वश मे हो जायेंगे । ब्राह्मण होम, यज्ञ और भगवान् की सेवा-पूजा करेंगे, इस प्रसग से सब देवता भी सहज मे ही वश मे हो जायेंगे ।

एक वात और भी तुमसे कहता हूँ कि मैं इस रूप मे कभी नही आऊँगा । हे राजन् ! मैं अपनी माया से तुम्हारे पुरोहित को हर ले जाऊगा ।

तप के वल से उसे अपने समान करके एक वर्ष तक यहा रक्खूगा, और हे राजन् ! सुनो, मैं उसका वेष धरकर सब तरह से तुम्हारा काम करूगा ।

रात बहुत बीत गई, अब सो जाओ । हे राजन् ! मेरा और तुम्हारा मिलना तीसरे दिन होगा । मैं तप के बल से तुम्हें घोडे-सहित सोते ही सोते घर पहुँचा दूगा ।

मैं वही (पुरोहित) का वेष धारण करके आऊंगा । जब मैं एकान्त मे तुम्हें बुलाकर सब कथा सुनाऊँ, तब तुम मुझे पहिचान लेना ।

मूल—सयन कीन्ह नृप आयसु मानी । आसन जाइ बैठ छल ग्यानी ॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई । सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥
कालकेतु निसिचर तहँ आया । जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥
परम मित्र तापस नृप केरा । जानइ सो अति कपट घनेरा ॥
तेहि के सत अरु दस भाई । खल अति अजय देव दुखदाई ॥
प्रथमहि नृप समर सब मारे । विप्र संत सुर देखि दुखारे ॥
तेहि खल पाछिल वयरु संभारा । तापस नृप मिलि मंत्र विचारा ॥
जेहि रिपु छय सोइ रचेन्हि उपाऊ । भावी वस न जान कछु राऊ ॥
दोहा—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।
अजहुं देत दुख रवि ससिहि, सिर अवसेषित राहु ॥१७०॥

शब्दार्थ—सयन = शयन (सोना)। छल ग्यानी = कपट ज्ञानी। श्रमित = थका हुआ। भुलावा = भटकाया था। पाछिल बयरु = पिछला बैर। सँभारा = स्मरण किया। मंत्र बिचारा = षड्यन्त्र रचा। छल = चाल, दाँव। नृप = राजा। तेजसी = तेजस्वी। गनिअ = समझना चाहिए। सिर अवसेषित = सिर मात्र बचा हुआ।

भावार्थ – कपटी मुनि की आज्ञा मान कर राजा ने शयन किया और वह कपटज्ञानी अपने आसन के ऊपर जा बैठा। राजा थका हुआ था, इसलिए उसे खूब नींद आ गई, किन्तु वह (कपटीज्ञानी) कैसे सोता उसे तो (बदला लेने की) बहुत चिन्ता हो रही थी।

उसी समय वहाँ कालकेतु नामका राक्षस आया, जिसने सूअर बनकर राजा को भटकाया था। वह तपस्वी राजा का बड़ा मित्र था और खूब छल-प्रपंच जानता था। उसके सौ पुत्र और दस भाई थे जो बड़े दुष्ट थे, किसी से न हारने वाले और देवताओं को दुःख देने वाले थे। ब्राह्मणों, सन्तों और देवताओं को दुखी देखकर राजा प्रतापभानु ने उन सबको पहले ही युद्ध में मार डाला था।

इस दुष्ट ने भी, अपनी पुरानी शत्रुता को याद किया और उसने तपस्वी राजा से मिलकर सलाह की (षड्यन्त्र रचा) और जिस प्रकार शत्रु का नाश हो, वही उपाय रचा। होनहार-वश राजा प्रतापभानु कुछ भी न समझ सका।

तेजस्वी शत्रु अकेला भी हो तो भी उसे छोटा नहीं समझना चाहिए। जिसका सिर मात्र बचा था, वह राहु आज तक भी सूर्य-चन्द्रमा को दुःख देता है।

विशेष—अनुप्रास और अर्थान्तरन्यास अलंकार (सामान्य का विशेष से समर्थन)।

मूल – तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई॥
अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौं तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई॥

कुल समेत रिपु मूल बहाई । चौथे दिवस मिलब मैं आई ॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी । चला महा कपटि अति रोषी ॥
भानु प्रताप बाजि समेता । पहुँचाएसि छन माँझ निकेता ॥
नृपहि नारि पहिं सयन कराई । हय गृहँ बाँधेसि बाजि बनाई ॥

दोहा – राजा के उपरो हितहि, तिह हरि लै गयउ बहोरि ।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ, माया करि मति भोरि ॥ १७१ ॥

शब्दार्थ—सखहि = मित्र को । निहारी = देखकर । जातुधान = राक्षस (कालकेतु) साधेउँ = काबू मे कर लूँगा । बिआधि = व्याधि, बीमारी । मूल = जड । बाजि = घोडा । छन माझ = क्षण भर मे । पहिं = पास । हयगृहँ = घुडसाल मे । बनाइ = अच्छी तरह से । बहोरि = फिर । गिरि खोह = पहाड की गुफा । भोरि = भ्रम मे डाल कर ।

तपस्वी राजा अपने मित्र को देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ । उसने मित्र को सब कथा कह सुनाई (जिसे सुनकर कालकेतु) राक्षस सुख पाकर बोला—

हे राजा ! सुनो, जो तुमने मेरे कहने के अनुसार काम किया, तो (समझो) अब वैरी को वश मे कर लिया । तुम अब चिन्ता छोड़कर सो जाओ, क्योंकि विधाता ने बिना ही दवा के रोग दूर कर दिया ।

कुल-सहित शत्रु को जड-मूल से बहाकर मैं आज से चौथे दिन तुमसे आकर मिलूँगा । (इस प्रकार) तपस्वी राजा को बहुत ढाढस बधाकर, वह महाकपटी और अत्यन्त क्रोधी राक्षस चला ।

उसने राजा प्रतापभानु को घोडे-सहित क्षण भर मे घर पहुँचा दिया । राजा को रानी के पास सुला कर घोडे को घुडसाल मे बाँध दिया ।

फिर वह राजा के पुरोहित को उठा ले गया और उसे पर्वत की खोह मे रक्खा और (अपनी) माया से उसकी बुद्धि को भ्रम मे डाल दिया ।

मूल—आपु बिरचि उपरोहित रूपा । परेउ आइ तेहि सेज अनूपा ॥
जागेउ नृप अनभएँ बिहाना । देखि भवन अति अचरजु माना ॥

मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहिं जेहिं जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढ़ि तेहीं। पुर नर नारि न जानेउ केहीं॥
गएँ जाम जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोकि सुमिरि सोइ काजा॥
जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनि पद रह मति लीनी॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समुझावा॥

दोहा— नृप हरषेउ पहिचानी गुरु, भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर, बिप्र कुटुंब समेत॥१७२॥

शब्दार्थ—बिरचि = बनाकर। अनूपा = अनुपम, सुन्दर। अनभएं = न होने पर। बिहाना = सवेरा। गवँहि = धीरे से। जाम जुग = (याम युग) दो पहर। मते = मन्त्रणा के अनुसार। बरे = निमन्त्रण दे दिया।

भावार्थ—फिर आप पुरोहित का रूप बनाकर उसकी सुन्दर सेज पर जा लेटा। राजा सवेरा होने से पहले ही जागा और अपने को महल में देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ।

मुनी की महिमा का मन में अनुमान करके राजा चुपके से उठा, जिससे रानी न जानले। फिर उसी घोड़े पर चढ कर वन को चला गया। नगर के किसी भी स्त्री-पुरुष ने नही जाना।

दोपहर बीत जाने पर राजा (नगर मे) आया, तब घर-घर में उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा। जब राजा ने पुरोहित को देखा, तो उस कार्य का स्मरण कर चकित हो उसे देखने लगा।

राजा को तीन दिन एक युग के समान बीते और उसकी मति कपटी मुनि के चरणो मे लगी रही। उचित समय जानकर पुरोहित (बना हुआ राक्षस) आया और उसके सब मत (भावी कार्यक्रम) कह कर राजा को समझाया।

राजा गुरु को पहचानकर प्रसन्न हुआ और भ्रम में होने के कारण उसे कुछ चेत (ज्ञान) नहीं रहा। उसने शीघ्र ही एक लाख ब्राह्मणों को कुटुम्ब-सहित निमन्त्रण दे दिया।

मूल--उपरोहित जेवनार बनाई। छरस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
माया मय तेहिं कीन्हि रसोई। बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥
बिबिध मृगन्ह कर आमिष रांधा। तेहि महुँ बिप्र मांसु खल सांधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाए॥
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकास बानी तेहि काला॥
बिप्रबृन्द उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू॥
भयउ रसोईं भूसुर मांसू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू॥
भूप बिकल मति मोहँ भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी॥

दोहा - बोले बिप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ़ सहित परिवार॥१७३॥

शब्दार्थ - उपरोहित = पुरोहित। जेवनार = भोजन-सामग्री, रसोई। जसि = जैसा। बिंजन = व्यञ्जन, भोज्य पदार्थ। मृगन्ह = पशुओं का। आमिष = मांस। खल = दुष्ट। सांधा = मिला दिया। भूसुर = ब्राह्मण। मूढ़ - मूर्ख।

भावार्थ - पुरोहित बने कालकेतु ने छ रस और चार प्रकार की भोजन-सामग्री बनाई, जैसा कि वेदो मे वर्णन किया गया है। उसने माया-मयी रसोई तैयार की और इतने प्रकार के व्यंजन बनाये कि जिनकी गणना नही की जा सकती।

उसने अनेक प्रकार के पशुओ का मांस पकाया और उसमे उस दुष्ट ने ब्रह्मणो का मास मिला दिया। राजा भानुप्रताप ने सब ब्राह्मणो को भोजन के लिए बुलाया और चरण धोकर आदर-सहित बैठाया।

जब राजा परोसने लगा तब (कालकेतु कृत) आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मणो! तुम उठ-उठ कर अपने घर चले जाओ, यह अन्न मत खाओ, इसके खाने मे बडी हानि है, रसोई मे ब्राह्मण मांस पका है।

इस आकाशवाणी को विश्वसनीय (प्रमाण) मानकर सब ब्राह्मण उठ खडे हुए। राजा की बुद्धि मोह मे भूली हुई थी, अत वह बहुत व्याकुल था होनहार-वश उसके मुख से एक बात भी न निकली।

तब ब्राह्मणो ने कुछ भी विचार न करके क्रोध-पूर्वक कहा—हे मूर्ख राजा! तू अपने कुटुम्ब सहित राक्षस हो जा।

विशेष – (i) छ रस—खट्टा, मीठा, कड़ुवा, कषायल, चरपरा, नमकीन।

(ii) चार प्रकार के भोजन—तला हुआ, राधा हुआ, भूना हुआ और बिना पका (फल आदि)।

मूल—छत्र बंधु तैं बिप्र बुलाई। घालै लिए सहित समुदाई।
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा॥
संबत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ॥
नृप सुनि श्राप बिकल अति त्रासा। भै बहोरि बर गिरा अकासा॥
बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥
चकित बिप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी॥
तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥
सब प्रसंग महिसुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनीं अकुलाई॥
दोहा—भूपति भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूषन तोर।
किएँ अन्यथा होइ नहिं, बिप्र श्राप अति घोर॥१७४॥

शब्दार्थ—छत्रबन्धु = नीच क्षत्रिय। तैं = तूने। घालै लिए = नष्ट करना चाहा। जैहसि = नष्ट होगा। त्रासा = भय। भै = हुई। गिराअकासा = आकाशवाणी। भोजन खानी = रसोई। असन = भोजन। सुआरा = रसोइया। फिरेउ = लौट आया। त्रसित = भयभीत। अवनी = पृथ्वी।

भावार्थ—(ब्राह्मण राजा को शाप दे रहे हैं—तू परिवार सहित राक्षस हो जा) रे नीच क्षत्रिय! तूने ब्राह्मणो को सकुटुम्ब बुलाकर नष्ट करना चाहा, किन्तु ईश्वर ने हमारे धर्म की रक्षा की। अब तू परिवार सहित नष्ट होगा।

एक वर्ष के भीतर ही तेरा नाश हो, तेरे वंश मे कोई जल देने वाला भी न रहे। शाप सुनकर राजा भय के मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया। फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई।

'हे ब्राह्मणो! तुमने विचार कर शाप नही दिया। राजा ने कुछ भी अपराध नही किया'। इस आकाशवाणी को सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गये। तब राजा वहा गया जहाँ रसोई बनी थी।

वहा जाकर देखा तो वहा न भोजन था और न रसोइया ब्राह्मण ही। राजा मन म बहुत सोच करता हुआ लौट आया। उसने आकर ब्राह्मणो को पिछला सब वृत्तान्त कह सुनाया और वह बड़ा ही भयभीत और व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

(तब ब्राह्मणों ने कहा) हे राजन् ! यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणों का शाप बहुत ही भयानक होता है—यह कभी झूठा नहीं हो सकता।

मूल – अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुर लोगन्ह पाए॥
सोचहिं दूषन दैवहि देहीं। बिरचत हंस काग किय जेहीं॥
उपरोहितहि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई॥
तेहिं खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब धाए॥
घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बन्धु समेत परेउ नृप धरनी॥
सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा। बिप्र श्राप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निज पुर गवने जय जसु पाई॥
दोहा—भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम॥ १७५॥

शब्दार्थ—सिधाए = चले गये। जेहीं = जिसने। निसान = नगाड़ा, डंका। जूझे = लड़कर मर गये। बाँचा = बचा। बाम = विपरीत। जम = यमराज। ब्याल = साँप। दाम = रस्सी।

भावार्थ—ऐसा कह कर सब ब्राह्मण तो चले गये, किन्तु जब नगरवासियों को यह सब समाचार मिला, तब वे चिन्तातुर विधाता को दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते कौआ कर दिया। (ऐसे पुण्यात्मा राजा को राक्षस बना दिया)।

(कालकेतु ने यह सब कृत्य करके) पुरोहित को उसके घर पहुँचा दिया और अपने सम्बन्धी मित्र को सब बातों से अवगत करा दिया। उस दुष्ट राजा ने जहाँ तहाँ पत्र भेजे, जिनसे सब शत्रु राजा अपनी-अपनी सेना सजाकर दौड़ पड़े।

याज्ञवल्क्य ने कहा—हे भरद्वाज ! सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होता है, तब उसके लिए धूल सुमेरु के समान (भारी), पिता यमराज के समान (कालरूप) और रस्सी साँप के समान (काटने वाली) हो जाती है।

विशेष—अनुप्रास तथा उपमा अलंकार।

मूल—काल पाइ मुनि सुनि सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नु भगत बिग्यान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥
कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका॥
कृपा रहित हिंसक सब पापी। बरनि न जाहिं बिस्व परितापी॥

दोहा—उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस, भए सकल अघरूप॥१७६॥

शब्दार्थ—बरिबंडा = प्रचण्ड। अनुज = छोटा भाई। बिमात्रबंधु = सौतेला भाई। घोर = प्रचंड, भयानक। कामरूप = मनमाना रूप धारण करने वाले। जिनस = जाति या प्रकार। बिस्व परितापी = संसार भर को दुःख देने वाले। महीसुर = ब्राह्मण। अघरूप = पापरूप।

भावार्थ—हे मुनि ! सुनो, समय पाकर वही राजा अपने परिवार सहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजायें थी तथा वह बहुत ही प्रचण्ड शूरवीर था।

राजा का छोटा भाई जिसका नाम अरिमर्दन था, वह महा बलवान कुम्भकर्ण हुआ और जो उसका मंत्री धर्मरुचि था, वह विमाता से उसका छोटा भाई हुआ।

हिंसक थे तथा जगत को ऐसा दुःख देने वाले थे कि उसका वर्णन नही हो सकता।

यद्यपि वे पुलस्त्य मुनि के पवित्र, निर्मल और उपमारहित कुल मे उत्पन्न हुए थे, तो भी ब्राह्मणो के शाप से वे सभी पापरूप हुए।

मूल--कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई । परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता । मागहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥
करि बिनती गहि पद दससीसा । बोलेउ बचन सुनहुँ जगदीसा ॥
हम काहू के मरहिं न मारें । बानर मनुज जाति दुइ बारें ॥
एवमस्तु तुम्ह बड तप कीन्हा । मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ । तेहि बिलोकि मन बिसमय भयऊ ॥
जौं एहिं खल नित करब अहारू । होइहि सब उजारि संसारू ॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी । मागेसि नींद मास षट केरी ॥

दोहा--गए बिभीषन पास पुनि, कहेउ पुत्र बर मागु ।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥१७७॥

शब्दार्थ--उग्र = कठिन, प्रचंड। बारें = छोड कर, बचाकर। पहिं = पास। एहिं = यह। करब = करेगा। सारद प्रेरि = सरस्वती की प्रेरणा करके।

भावार्थ--तीनो भाइयो ने अनेक प्रकार की तपस्या की--ऐसी प्रचंड जिसका वर्णन नही हो सकता। उनके तप को देख कर ब्रह्मा जी उनके पास गये और बोले--हे तात! मैं प्रसन्न हूं, वर मागो।

रावण ने विनय करके चरण पकड लिये और बोला--हे जगदीश्वर! सुनिए, वानर और मनुष्य इन दो जातियो को छोड कर हम और किसी के मारे न मरें।

(शिवजी पार्वती से कहते हैं कि) मैंने और ब्रह्मा ने मिल कर उसे वर दिया कि ऐसा ही हो, तुमने बडा तप किया है। फिर ब्रह्मा कुंभकर्ण के पास गये। उसे देख कर उसके मन मे बडा भारी आश्चर्य हुआ। उन्होंने विचार किया--यदि यह दुष्ट नित्य आहार करेगा तो सारा ससार ही उजाड हो जायगा। ऐसा सोच कर ब्रह्मा ने सरस्वती को प्रेरणा दी और उसने उसकी बुद्धि फेर दी, जिससे उसने छः महीने की नींद मागी।

इसके बाद ब्रह्मा जी विभीषण के पास गये और बोले—हे पुत्र ! वर मांगो। उसने भगवान् के चरण कमलों में निष्काम और अनन्य प्रेम मांगा।

विशेष—'पद कमल' में निरंग रूपक अलंकार।

मूल—तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुंदरी नारि ललामा॥
सोइ मयँ दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥
गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥
सोइ मय दानवँ बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा॥
भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्र निवासा॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका॥

दोहा—खाईं सिंधु गभीर अति, चारिहुँ दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव॥१७८॥ (क)

हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ, जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दल समेत बस सोइ॥१७८॥ (ख)

शब्दार्थ—सिधाए = चले गये। मय तनुजा = मय दानव की पुत्री (मंदोदरी)। नारि ललामा = स्त्रियों में शिरोमणि। जातुधान पति = राक्षसों का राजा। बिआहेसि = विवाह कर दिया। मझारी = में। सँवारा = सजा दिया। बासा = रहना। सक्र निवासा = इन्द्र के रहने की। खचित = जड़ा हुआ।

अमरावती से भी यह नगरी अधिक सुन्दर और बाँकी थी और ससार मे जो लका के नाम से विख्यात हुई।

उसके (लका के) चारो ओर समुद्र की अत्यत ऊहरी खाई थी और मजबूत मणियो से जड़े हुए इसके परकोटे थे, जिसकी कारीगरी का वर्णन नहीं किया जा सकता।

भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प मे जो राक्षसो का राजा होता है, वह बड़ा शूरवीर, प्रतापी और अतुलित बली होता है और अपनी सेना सहित वहा (उस पुरी मे) बसता है।

विशेष—अनुप्रास और व्यतिरेक अलकार।

मूल—रहे तहां निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर सघारे॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥
दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ घेरेसि जाई॥
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥
फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेषा॥
सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥
जेहि जस जोग बाटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जाति लै आवा॥
दोहा—कौतुकहीं कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल, चला बहुत सुख पाइ॥१८९॥

भावार्थ—वहाँ बड़े-बड़े भारी राक्षस योद्धा रहते थे, जिन्हे लड़ाई मे देवताओ ने मार डाला था। अब वहा इन्द्र की प्रेरणा से कुबेर के एक करोड रक्षक रहते है।

रावण ने कही से यह खबर पाकर और सेना सजाकर लका के किले को जा घेरा। उस बड़े विकट योद्धा और उसकी विशाल सेना को देखकर, यक्ष अपने-अपने प्राण लेकर भाग गये।

रावण ने सारे नगर को घूम-फिरकर भली प्रकार देखा। इससे उसकी चिन्ता मिट गयी और उसे परम हर्ष हुआ। उस पुरी को स्वाभाविक ही

सुन्दर और बाहर वालों के लिए दुर्गम अनुमान करके रावण ने वहाँ अपनी राजधानी बनाई।

जो जिसके लायक था उसे वैसा ही घर देकर रावण ने सभी राक्षसों को सुखी किया। एक बार उसने कुबेर पर चढ़ाई की और उसका पुष्पक विमान जीतकर ले आया।

फिर एक बार खिलवाड़ में ही जाकर उसने कैलाश पर्वत को उठा लिया मानो अपनी भुजाओं का बल तौलकर और बहुत सुख पाकर वह वहाँ से चल दिया।

मूल--सुख सम्पति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बड़ाई॥
नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई॥
अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहिं प्रतिभट जग जाता॥
करइ पान सोवइ षट मासा। जागत होइ तिहुँ पुर त्रासा॥
जौं दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई॥
समरधीर नहिं जाइ बखाना। तेहिसम अमित बीर बलवाना॥
बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई॥

दोहा--कुमुख अकम्पन कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय॥१८०॥

शब्दार्थ—सहाइ = सहायक। बाढ़त जाई = बढ़ते जाते थे। प्रतिभट = जोड़ का योद्धा। जाता = उत्पन्न हुआ। पान करइ = मदिरा पीता था। त्रासा = भय, तहलका। जौं = यदि। बारिदनाद = मेघनाद। लीक = नम्बर, गणना। परावन = भगदड़। कुमुख = दुर्मुख। कुलिसरद = वज्रदंत। निकाय = समूह।

भावार्थ--(रावण एवं उसके परिवार का वर्णन किया जा रहा है) सुख, सम्पत्ति, पुत्र, सेना, सहायक, जय, प्रताप, बल, बुद्धि और बड़ाई— सब रावण के नित्य नये इस प्रकार बढ़ते जाते थे, जिस प्रकार प्रत्येक लाभ पर लोभ बढ़ता है। अत्यन्त बलवान् कुंभकर्ण के समान उसका भाई था, जिसके जोड़ का योद्धा संसार में पैदा नहीं हुआ। वह (कुंभकर्ण के) मदिरा

पीकर छ. महीने सोया करता था। जब वह जगता था, तब तीनो लोको मे तहलका मच जाता था। यदि वह प्रतिदिन आहार लेता भोजन करता) तो सम्पूर्ण विश्व शीघ्र ही चौपट हो जाता। वह समर भूमि मे इतना धीर था कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। उसके (कुंभकर्ण के) समान लका मे असख्य बलवान् वीर थे।

रावण का बडा लडका मेघनाद था, जिसका ससार के योद्धाओ मे प्रथम स्थान था। युद्ध मे उसका सामना करने वाला कोई न था। स्वर्ग मे तो उसके भय के मारे प्रतिदिन भगदड मची रहती थी।

इनके अतिरिक्त दुर्मुख, अकम्पन, वज्रदत, धूमकेतु, अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा थे जो अकेले ही सारे जगत् को जीत सकते थे।

विशेष – वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश अलकार।

मूल—कामरूप जानहिं सब माया। सपनेहुँ जिन्ह के धरम न दाया।।
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा। देखि अमित आपना परिवारा।।
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती।।
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी।।
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा।।
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई।।
तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई।।
द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम्ह बाधा।।

दोहा—छुधाछीन बलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाडिहउँ भली भाँति अपनाइ ।।१८१।।

शब्दार्थ—कामरूप = मनमाना रूप धारण करने वाले। दाया = करुणा। जन = सेवक। परिजन = कुटुम्बी। जूथा = दल। बिबुध बरूथा = = देवताओ का समूह। बुझाइ = समझाकर। मख = यज्ञ। सराधा = श्राद्ध। अपनाई अपने आधीन करके।

भावार्थ—सभी राक्षस इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले एव आसुरी माया जानने वाले थे। स्वप्न मे भी वे धर्म या दया को न जानते थे। एक बार सभा मे बैठे हुए रावण ने अपने अगणित परिवार को देखा—ढेर-

सारे पुत्र, पौत्र, कुटुम्बी और सेवक थे। राक्षसों की इतनी जातियाँ थीं कि उन्हें कौन गिन सकता था। अपनी सेना को देखकर स्वभाव से ही अभिमानी रावण क्रोध और गर्व से सनी हुई वाणी बोला--हे राक्षसो ! तुम सब लोग सुनो, देवतागण हमारे शत्रु हैं। वे सामने आकर तो युद्ध करते नहीं ! बलवान शत्रु को देखकर वे भाग जाते हैं। उनके मरने का एक ही उपाय है, उसे मैं तुम्हें समझा कर कहता हूँ, तुम सब ध्यान से सुनो। उनके बल को बढ़ाने वाले ब्राह्मण भोजन, यज्ञ, हवन और श्राद्ध हैं--तुम इन सब में जाकर विघ्न खड़ा करो।

जब देवता भूख से क्षीण (दुबले पतले) और बलहीन हो जायेंगे, तब वे सहज ही में आकर मुझ से मिलेंगे। तब मैं उनको मार डालूंगा, या उनको अच्छी तरह से अपने वश में कर के छोड़ दूंगा।

मूल--मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख बलु बयरु बढ़ावा॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह कें लरिबे कर अभिमाना॥
तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥
एहि बिधि सब ही अग्या दीन्ही। आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही॥
चलत दसानन डोलति अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥
दिगपालन्ह के लोक सिधाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि पुनि सिंघनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥
रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहिं लागा॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नरनारी॥
आयसु करहिं सकल भयभीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥

दोहा--भुजबल बिस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र॥१८२॥ (क)
देव जच्छ गंधर्ब नर, किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहु बल, बहु सुन्दर बर नारि॥१८२॥ (ख)

शब्दार्थ—हँकरावा = बुलवाया। बयरु = शत्रुता। बाँधी आनेसु = बाँध लाना। अनुसासन काँधी = आज्ञा को शिरोधार्य किया। अवनी = पृथ्वी। स्रवहिं = गिर जाते हैं। सुर रवनी = देव-रमणियाँ। सक्रोहा = क्रोध-सहित। खोहा = गुफा। पचारी = ललकार कर। पथहिं लागा = पीछे पड गया। बसवर्ती = अधीन। आयसु करहिं = आज्ञा का पालन करते थे। राखेसि = रखा। निज मन = अपनी इच्छा के अनुसार। जच्छ = पक्ष। बरो = व्याह लिया। वर = उत्तम, सुन्दर।

भावार्थ—फिर रावण ने मेघनाद को बुलवाया। उसने उसको शिक्षाएँ देकर उसका बल बढाया तथा देवताओ के प्रति वैरभाव की उत्तेजना दी। (तदन्तर उसने कहा)-हे पुत्र ! जो देवता युद्ध मे वीर और बलवान हैं और जिन्हें लडने का अभिमान है, उन सबको तुम युद्ध मे जीतकर बाध लाना। उठकर पुत्र ने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। इसी तरह रावण ने सब आज्ञा दी और वह स्वय भी हाथ में गदा लेकर चल दिया।

रावण के चलने मे पृथ्वी डगमगाने लगी और उसकी घोर गर्जना को सुनकर देवरमणियो के गर्भ गिर गये। क्रुद्ध रावण को आते हुए सुनकर देवताओ ने सुमेरु पर्वत की गुफाओ मे जा छिप कर आश्रय लिया।

जब रावण दिक्पालो के लोको मे गया, तब उसने उन्हें सूना पाया। वह बार-बार भारी सिंह गर्जना करके देवताओ को ललकार-ललकार कर गालियाँ देने लगा।

रण-मद मे मतवाला होकर रावण अपनी जोडी का योद्धा खोजता हुआ ससार मे दौडता फिरा, किन्तु उसे खोजने पर भी अपनी जोडी का योद्धा न मिला। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि काल और यम आदि सब अधिकारी, किन्नर, सिद्ध, मनुष्य, देवता और नाग--वह सभी के पीछे हठ पूर्वक पड गया अर्थात् उसने इनको कभी शाति से नही बैठने दिया। ब्रह्मा की रची सृष्टि मे जितने शरीरधारी थे, वे सब नर-नारी रावण के अधीन हो गये। डर के मारे सभी उसकी आज्ञा का पालन करते थे और प्रतिदिन आकर उसके चरणो पर विनय-पूर्वक झुकते थे।

रावण ने अपने भुज-बल से सारे विश्व को अपने वश मे कर लिया, उसने किसी को भी स्वतन्त्र नही रहने दिया। इस प्रकार वह मडलीक राजाओं

का निरोभाग बनकर सार्वभौम सम्राट् के रूप में अपनी इच्छा के अनुसार राज्य करने लगा।

देवता, यक्ष गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर और नागों की कन्याओं तथ बहुत-सी अन्य सुन्दरियों को उसने अपनी भुजाओं के बल से जीतकर ब्या लिया।

विशेष—अनुप्रास और पुनरुक्ति-प्रकाश अलंकार। रावण के बल औ प्रताप का कवि ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है।

मूल—इन्द्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहिं करि रहेऊ॥
प्रथमहिं जिन्ह कहुं आयसु दीन्हा। तिन्हकर चरित सुनहु जो कीन्हा॥
देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुं सुनिअ न बेद पुराना॥

छिगनी—

जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ, रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना॥
तेहि बहु बिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥

सोरठा—

मेघनाथ से उसने जो कहा वह सब मानो उसने पहले से ही कर रक्खा था (अर्थात् रावण के कहने भर की देर थी, मेघनाथ उसे इतनी शीघ्रता से करता था मानो वह कार्य पहले से ही कर रक्खा हो)। रावण ने (मेघनाथ से) पहले ही जिन्हे आज्ञा दी थी, उनकी करतूत सुनो कि उन्होने क्या किया ?

सब राक्षसो के झुण्ड देखने मे बड़े भयानक, पापी और देवताओ को दु.ख देने वाले थे। वे सब असुरो के समूह उपद्रव करते और माया करके भाँति-भाँति के रूप धरते थे।

वे सब वेद के प्रतिकूल ऐसे कर्म करते थे, जिनसे धर्म का जड से नाश हो। वे जिस-जिस देश मे गौ और ब्राह्मण पाते थे उसी शहर, गाँव और पुर मे आग लगा देते थे।

(उनके डर से) कही भी शुभ कर्म नही होते थे। देवता, ब्राह्मण और गुरु को कोई नही मानता था। न तो भगवान् की भक्ति थी और न ही यज्ञ, तप और ज्ञान था। वेद और पुराण तो स्वप्न मे भी सुनाई नही देते थे।

रावण जहा कही कानो से जप, योग, वैराग्य, तप और यज्ञ कर्म होने के विषय मे सुनता, तो स्वय उठ दौड़ता था। कुछ भी रहने नही देता था और खिसियाना हो सब विध्वंस कर डालता था। ससार मे ऐसा भ्रष्ट आचरण फैल गया कि धर्म तो कानो से भी सुनाई नही देता था। जो कोई वेद और पुराण कहता उसे वह बहुत तरह से दुःख दे-देकर देश से निकाल देता था।

राक्षस जो घोर अनीति करते, उसका वर्णन नही हो सकता। जिनकी हिंसा पर बहुत प्रीति हो, उनके पापो की क्या सीमा हो सकती है ?

मूल—बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥
सकल धर्म देखइ बिपरीता। कहि न सकइ रावन भयभीता॥
धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥

छन्द—सुर मुनि गंधर्बा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥

सोरठा—धरनि धरहि मन धीर, कह बिरंचि हरि पद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजिहि दारुन बिपति॥१८४॥

शब्दार्थ—बाढ़े = बढ़ गये। जुआरा = जुआरी। लंपट = मन चलाने वाले। मानेहु = समझो। गरुअ = भारी। झारी = झुंड, समूह। बिरंचि के लोका = ब्रह्म लोक। बसाई = वश चलना। जा करि = जिसकी। सहाइ = सहायक। धरनि = पृथ्वी। दारुण = कठिन।

भावार्थ—बहुत से दुष्ट, चोर और जुआरी बढ़ गये जो पराये धन पर मन चलाने वाले थे। लोग माता पिता और देवताओं को नहीं मानते थे और साधुओं से सेवा करवाते थे।

(शिवजी कहते हैं) हे पार्वती! जिनका ऐसा आचरण है उन सब प्राणियों को राक्षस ही जानो। धर्म के प्रति मनुष्यों के हृदय में भारी अनास्था देखकर पृथ्वी बहुत ही भयभीत एवं व्याकुल हो गयी।

(और मन में सोचने लगी) पहाड़, नदी और समुद्र का बोझ मुझे इतना भारी नहीं जान पड़ता, जितना भारी बोझ एक परद्रोही का लगता है। सभी धर्म को विपरीत हुआ देखते हैं, पर रावण के डर के मारे कह नहीं सकते।

हृदय में सोच-विचारकर पृथ्वी गौ का रूप धारण कर वहाँ गयी जहाँ सब देवता और मुनि थे। पृथ्वी ने रोकर उन्हें अपना दुःख सुनाया, पर किसी से कुछ काम न बना।

देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्मलोक को गये। उनके साथ भय और शोक से व्याकुल बेचारी पृथ्वी भी गौ का रूप धरे चली। ब्रह्माजी ने सब जानकर मन में अनुमान किया कि इसमें मेरा कुछ वश नहीं चल सकता। (तब उन्होंने पृथ्वी से कहा) जिसकी तू दासी है, वही अविनाशी भगवान् हमारे और तेरे सहायक हैं।

ब्रह्माजी ने भगवान् के चरणों का स्मरण करके कहा—हे पृथ्वी!

मन मे धैर्य धारण करो। प्रभु भक्तो की पीडा को जानते हैं। वे ही हमारी कठिन विपत्ति का नाश करेंगे।

विशेष—अनुप्रास अलकार।

मूल—बैठे सुर सब करहिं विचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥
जाके हृदय भगति जसि प्रीति। प्रभु तहं प्रगट सदा तेहिं रीती॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊं। अवसर पाइ बचन एक कहेऊ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देसकाल दिसि बिदिसिहु मांहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥
दोहा—सुनि बिरचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मति धीर॥ १८५॥

शब्दार्थ—पयनिधि=क्षीर-सागर। जसि=जैसी। रहेऊं=था। अग=जो गमन न कर सके, अचर। जग=जो चल फिर सके, चर। अग जगमय=चराचर मे व्याप्त।

भावार्थ;—सब देवता बैठकर विचार करने करने लगे कि भगवान् को कहाँ पावें ताकि उनके सामने पुकार करें। कोई वैकुण्ठपुरी मे जाने को कहता था और कोई कहता था कि वे प्रभु क्षीरसागर मे रहते हैं।

जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति है, भगवान् वहाँ सदा उसी रीति से प्रकट होते है। (शिवजी कहते हैं कि) हे पार्वती! उस समाज मे मैं भी था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही—

भगवान् तो सब जगह समान रूप से व्यापक है और प्रेम से प्रकट हो जाते हैं, इस बात को मैं जानता हूँ। देश, काल, दिशाओ और विदिशाओ मे, कहो ऐसी जगह कहाँ है, जहाँ प्रभु नही है।

प्रभु इस अग और जग (चर अचर) मे व्याप्त होते हुए भी सबसे रहित और विरक्त हैं। भगवान् प्रेम से ऐसे प्रकट हो जाते हैं जैसे अग्नि (अग्नि अव्यक्त रूप से सर्वत्र व्याप्त है, परन्तु साधन करने पर वह प्रकट हो जाती है, वैसे ही प्रभु भी सर्वत्र व्याप्त हैं, लेकिन प्रेम से प्रकट हो जाते हैं)। मेरी बात सभी को प्रिय लगी और ब्रह्माजी ने साधु-साधु कहकर मेरी प्रशसा की।

मेरी बात सुनकर ब्रह्माजी के मन में हर्ष हुआ, शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से आँसू बहने लगे। तब वे धीरबुद्धि ब्रह्माजी सावधान होकर हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति करने लगे।

भगवान् चराचरमय है, सब जगह व्याप्त होते हुए भी वे सबसे दूर हैं और उनको कहीं आसक्ति नहीं है। जैसे अग्नि सब जगह अव्यक्त रूप से व्याप्त है, किन्तु अरणिमथनादि साधन किये जाने पर वह वहाँ प्रकट हो जाती है, उसी तरह भगवान् भी, जो सर्वत्र व्याप्त हैं, प्रेम से प्रकट होते हैं। मेरी बात सब देवताओं को पसन्द आई। ब्रह्माजी ने 'साधु, साधु' कह कर मेरी प्रशंसा की।

मेरी बात सुनकर ब्रह्माजी के मन में बड़ा हर्ष हुआ। उनका शरीर रोमांचित हो गया और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे। इसके बाद धीर-बुद्धि वाले ब्रह्माजी ने सावधान होकर हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति वहीं पर इस प्रकार की।

मूल—जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनत—पाल भगवन्ता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कन्ता॥
पालन सुर धरनी अदभुत करनी मरम न जानइ कोई॥
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥

शब्दार्थ—प्रणतपाल = शरणागत की रक्षा करने वाले। सिंधु-सुता = लक्ष्मी। कंता = स्वामी, पति। सोई = वेही। अनुग्रह = कृपा।

भावार्थ—ब्रह्माजी भगवान् की स्तुति कर रहे हैं—हे देवताओं के स्वामी! हे सेवकों को सुख देने वाले! हे शरणागतपालक भगवन्! आपकी जय हो, जय हो।

हे गौ ब्राह्मणों का हित करने वाले! हे असुरों का विनाश करने वाले! हे लक्ष्मी के प्रिय स्वामी! आपकी जय हो। हे देवताओं और पृथ्वी का पालन करने वाले! आपकी करनी बड़ी अद्भुत है, इसका भेद कोई नहीं जानता।

जो प्रभु स्वभाव से ही कृपालु और दीनों पर दया करने वाले हैं, वे ही हम पर कृपा करें।

विशेष—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार।

मूल—जय जय अविनासी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा ।
अविगत गोतीतं चरित पुनीत माया रहित मुकुन्दा ॥
जेहि लागि विरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृन्दा ।
निसि बासर ध्यावहिं गन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥

शब्दार्थ—परमानन्द=परम आनन्द स्वरूप । अविगत=अज्ञेय । गोतीत=इन्द्रियों के ज्ञान से परे । पुनीत=पवित्र । मुकुन्दा=मोक्षदाता । विरागी=विभक्त । बासर=दिन । सच्चिदानन्दा=सत् चित् और आनन्द रूप ।

भावार्थ—हे अविनाशी ! हे सबके हृदय में निवास करने वाले अर्थात् अन्तर्यामी ! हे सर्वव्यापक और परम आनन्द स्वरूप ! हे अज्ञेय ! हे इन्द्रियों के ज्ञान से परे ! हे पवित्र चरित्र वाले ! हे माया से रहित एवं मुक्तिदाता ! आपकी जय हो ! जय हो !

जिन भगवान् को संसार से विरक्त एवं मोह से सर्वथा दूर ज्ञानी मुनि प्रेम के साथ दिन-रात ध्याते हैं और उनके गुणों का गान करते हैं, उन सच्चिदानन्द की जय हो ।

मूल—जेहिं सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा ।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा ॥

शब्दार्थ—उपाई=उत्पन्न कर उपादान कारण बन कर । त्रिविध=त्रिगुण रूप, त्रिगुणात्मक । अघारी=(अघ+अरि) पापों का नाश करने वाले । चिंत=चिंता । रंजन=प्रसन्न करने वाले । बरूथा=झुंड समूह । गंजन=नाश करने वाले । सयानी=चतुराई । सुरजूथा=देवताओं का समूह ।

भावार्थ—बिना किसी दूसरे संगी या सहायक के जिसने अकेले ही तीन प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की (स्वयं अपने को ब्रह्मा, विष्णु, शिव रूप बनाकर त्रिगुणात्मक सृष्टि की रचना की) । वही भगवान्, जो पापों को नाश करने वाला है, हमारी चिन्ता को दूर करेगा, क्योंकि हम न पूजा विधि जानते हैं और न भक्ति । जो संसार के भयों को नष्ट करने वाला, मुनियों के मनको

आनन्द देने वाला और विपत्तियों के समूह को नष्ट करने वाला है। मन, वचन, कर्म और वाणी की चतुराई छोड़कर सब देवता जिनकी शरण में आये हैं।

मूल—शारद श्रुति शेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहि जाना।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना॥
भव बारिधि मंदर सब विधि सुन्दर गुन मंदिर सुखपुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥

शब्दार्थ—शारद = सरस्वती। असेषा – सम्पूर्ण। द्रवउ = दया करे। भव बारिधि मन्दर – संसार रूपी समुद्र को मथने के लिए मंदराचल पर्वत। सुखपुंजा = सुखों की राशि। पद कंजा = चरण कमल।

भावार्थ—उस (भगवान्) को सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी नहीं जानता। जिसको दीन लोग प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकार कर कहते हैं, वही भगवान् हम पर कृपा करें। हे संसार रूपी समुद्र के मथने के लिए मंदराचल रूप, सब प्रकार से सुन्दर गुणों के धाम और सुखों राशि नाथ! आपके चरण-कमलों में मुनि, सिद्ध और सारे देवता भय से अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं।

विशेष—'भव बारिधि मंदर' में परम्परित रूपक अलंकार।

दोहा—जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ, हरनि सोक संदेह॥ १८६॥

भावार्थ—देवताओं और पृथ्वी को भयातुर जानकर तथा उनके प्रेम-परिपूर्ण वचनों को सुनकर शोक और संदेह को मिटाने वाली-आकाश से गंभीर वाणी हुई।

विशेष—अनुप्रास अलंकार।

मूल—जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्हा कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रगट नर भूपा॥
तिन्ह के गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ। परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥

गगन ब्रह्मवानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना।।
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझाया। अभय भई भरोस जियँ आवा।।
दोहा – निज लोकहि बिरंचि गे, देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरि धरि महि, हरि पद सेवहु जाइ।। १८७।।

शब्दार्थ – लागि = लिए, खातिर। सुरेसा = देवताओं के स्वामियों। लेहउँ – लूँगा। दिनकर = सूर्य। पूरब – पहले ही। परमशक्ति = लक्ष्मी, आद्या शक्ति। गरु आई = भार। ब्रह्मबानी = भगवान् की वाणी। जुड़ावा = शीतल हो गया। धरनिहि = पृथ्वी को। इहइ = यह।

भावार्थ – हे मुनि सिद्ध और श्रेष्ठ देवताओ ! तुम डरो मत, मै तुम्हारे लिए मनुष्य का रूप धारण करूंगा और पवित्र सूर्यवंश मे अपने अंशो सहित मनुष्य का अवतार लूँगा।

कश्यप और अदिति ने महान् तप किया था और उन्हें मैं पहले ही वरदान दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौशल्या के रूप मे मनुष्यों के राजा होकर अयोध्यापुरी मे प्रकट हुए हैं।

मैं उन्ही के घर जाकर रघुकुल मे श्रेष्ठ चार भाइयो के रूप मे अवतार लूँगा। मैं नारद जी के सब वचन सत्य करूंगा और परम शक्ति सहित अवतार लूँगा।

मैं भूमि का सब भार हरूँगा। हे देववृन्द ! तुम निडर हो जाओ। अपने कानो से आकाश मे ब्रह्मवाणी सुनकर सब देवता तुरन्त लौट गये और उनका हृदय शीतल हो गया। फिर ब्रह्माजी ने पृथ्वी को समझाया। वह निर्भय हुई और उसके जी में भरोसा आ गया।

ब्रह्माजी देवताओं को यह समझाकर अपने लोक को चले गये कि तुम जाकर पृथ्वी पर बन्दरो का शरीर धारण कर भगवान् के चरणों की सेवा करो।

प्रश्न २—गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हिन्दी-साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस कथन पर अपने विचार प्रकट करते हुए गोस्वामीजी के जीवन वृत्त पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

अथवा

गोस्वामीजी जन्म के समय की परिस्थितियों का वर्णन करते हुए उनके जीवन की घटनाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदासजी के जन्म के समय की परिस्थितियों का सुन्दर वर्णन डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने किया है। उनका इस सम्बन्ध में कथन है कि "जिस युग में तुलसी का जन्म हुआ था, उस युग के समाज के सामने कोई ऊँचा आदर्श नहीं था। समाज के उच्च स्तर के लोग विलासिता के पंक में उसी तरह मग्न थे जिस प्रकार कुछ वर्ष पूर्व सूरदास ने देखा था। निम्न स्तर के लोग दरिद्र, अशिक्षित और रोग ग्रस्त थे। वैराग्य धारण करना एक साधारण सी बात थी। घर की सम्पत्ति नष्ट होने पर अथवा स्त्री की मृत्यु हो जाने पर संसार में कोई आकर्षण न होने के कारण सन्यास धारण कर लिया जाता था। 'अलख' की आवाज गर्म थी, यद्यपि वे अलख लखने वाले कुछ लख नहीं सकते थे। निम्न स्तर की जातियों में कुछ पहुँचे हुए महात्मा हो गये थे, जिनमें आत्म-विश्वास का संचार तो था परन्तु शिक्षा और संस्कृति के अभाव में इसी आत्म-विश्वास ने गर्व का रूप धारण कर लिया। समाज में मन की मर्यादा घट रही थी। पण्डितों और ज्ञानियों के

भार अपने ऊपर लेकर उसको यथोचित मार्ग का प्रदर्शन कराता है। इसी प्रकार जन समाज का बेड़ा भी भवसागर मे किसी विशेष व्यक्ति के आविर्भाव द्वारा ही प्रचण्ड परिस्थितियो के ग्रास मे पड़कर भी सुरक्षित रहता है।" गोस्वामी जी ऐसे ही लगर के समान थे जिन्होने भारतीय समाज की सुरक्षा की।

उन्होने 'रामचरितमानस' द्वारा भारतीय जनता को कर्तव्य का पाठ पढ़ाकर निराशा के समुद्र मे डूबने से बचाया। समाज मे नई चेतना व आदर्शों का सचार हुआ। धर्म, समाज और राजनीति का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत कर उन्होने भारतीय सस्कृति की रक्षा की। अपनी समन्वय भावना के बल पर उन्होने सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, साहित्यिक आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे समन्वय कर जनता का पथ-प्रदर्शन किया। इसीलिए वे लोकनायक भी कहलाये। इस प्रकार उनका आविर्भाव हिन्दी साहित्य मे एक महत्वपूर्ण घटना हो गई।

जीवन वृत्त—तुलसीदास 'स्वान्त सुखाय' रचना के पक्ष मे थे और यशोलिप्सु नहीं थे। अपने विषय मे कुछ कहना उन्हे पसन्द न था। इसी कारण उनके जीवन की घटनाओ का पूर्णरूप से (सत्य) पता नहीं लग सका है। ऐसी स्थिति मे उनके जीवन चरित के लिए हमे दो प्रकार की सामग्री पर निर्भर रहना पड़ता है।

अन्त साक्ष्य व बाह्यसाक्ष्य—गोस्वामीजी ने स्वरचित ग्रन्थो मे अपने सम्बन्ध मे प्रसगवश जो सकेत दिये हैं वे अन्त साक्ष्य हैं और बाह्यसाक्ष्य मे वे बाते आती हैं जो वेणीमाधवदास के गोसाई-चरित्र, नाभादास के भक्तमाल आदि ग्रन्थो मे उनके विषय मे लिखी हैं। रहीम टोडर आदि उनके सम कालीन कवियो और लेखको की रचनाओ मे कवि सम्बन्धी बाते और किंव-दन्तियाँ भी बाह्यसाक्ष्य मे ही गिनी जायेंगी। इन्ही दोनो प्रकार की सामग्रियो को लेकर हमे उनके जीवन चरित्र पर विचार करना है।

जन्म सवत—गोसाई चरित के अनुसार उनका जन्म सवत १५५४ विक्रमी श्रावण शुक्ला सप्तमी माना जाता है। जार्ज ग्रियर्सन और प्रसिद्ध रामायणी पण्डित रामगुलाम द्विवेदी उनके जन्म सवत १५८९ विक्रमी मानते हैं गोसाई चरित के अनुसार उनकी उम्र १२६ वर्ष और इन विद्वानो के अनुसार ९१ वर्ष ठहरती है। गोसाई चरित वाली बात मान लेने पर गोस्वामी और

मीराबाई के पत्र व्यवहार की यथार्थता सिद्ध हो जाती है क्योंकि मीरा की मृत्यु स० १६०३ वि० मे हुई थी। यदि गोस्वामीजी का जन्म स० १५८९ मे माने तो वे १४ वर्ष के बच्चे ठहरते हैं और पत्र लिखने में असमर्थ भी। परन्तु १५५४ जन्म सवत मान लेने पर वे ४० वर्ष के ठहरते हैं जिसमे पत्र लिखा जाना सम्भव भी है लेकिन गोसाई चरित्र की अप्रामाणिकता भी सिद्ध हो चुकी है जिससे १२६ वर्ष की आयु मानने का आधार ही नष्ट हो जाता है। फिर १५५४ जन्म सवत मानने पर रामचरित मानस का लिखा जाना ७७ वर्ष की आयु मे ठहरता है जो शारीरिक और मानसिक शैथिल्य की अवस्था है। ऐसे अमर ग्रन्थ के इतनी बडी उम्र मे लिखे जाने मे विश्वास करने मे कल्पना को कुछ अधिक कष्ट देना पडता है। विषय विवादास्पद है और कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता।

जन्म स्थान—जन्म सवत की भाँति गोस्वामी के जन्म स्थान के सम्बन्ध मे दो मत हैं। ला० सीताराम और प० रामगनेश त्रिपाठी उन्हे सोरो का सनाढ्य ब्राह्मण बताते है। इसका आधार गोस्वामी गोकुलनाथ का दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता है। दूसरे मत के अनुसार वे राजापुर के सरयू पारी ब्राह्मण ठहरते हैं। यही गौंडा से जिले का सूकर क्षेत्र जहा गोस्वामीजी अपने गुरु से मानस का श्रवण किया था पास है (मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सुसूकर खेत) कुछ लोग सोरो (एटा) को ही सूकर क्षेत्र मानते हैं। यद्यपि अभी तक अधिकाश उन्हे राजापुर का ही मानते हैं तथापि अब कुछ विद्वान इधर भी झुके हैं।

नाम और वश परिचय—इनका नाम रामबोला था (रामको गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम) तुलसी चरित मे उन्हे तुलाराम भी लिखा है। इनकी माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम दुबे था। अशुभ नक्षत्र मे पैदा होने के कारण उन्हे बचपन ही मे माता पिता का वियोग सहना पडा। कवितावली और विनय पत्रिका के मात पिता जग जाइ तज्यो। और तज्यो मातपिता हू, जनक जननि तज्यो जनामि आदि से स्पष्ट है।

शिक्षा—नरहरिदास जी इनके गुरु कहे जाते हैं उस समय के प्रसिद्ध विद्वान शेष सनातन से भी गोस्वामीजी ने शास्त्रों का अध्ययन किया था।

अपनी प्रतिभा से थोड़े समय मे ही इन्होंने सब शास्त्रो का ज्ञान कर लिया था।

विवाह-कुछ लोग 'व्याह न वरेखी जाति-पाँति न चहत हों' के आधार पर कहते हैं कि ग स्वामीजी अविवाहित थे। लेकिन यह ठीक नहीं। उनका विवाह हुआ था उनकी स्त्री का नाम रत्नावली था, बुद्धिमती था। स्त्री की ही 'लाज न लागत' वाली प्रेमभरी फटकार ने उन्हे विरक्त बनाकर सर्वश्रेष्ठ कवि बनाया था।

वैराग्य—स्त्री की फटकार से विरक्त होकर वे काशी आकर रहने लगे। उनके बाद जगन्नाथपुरी बद्रीआश्रम, रामेश्वर, द्वारिका आदि सब तीर्थो मे भ्रमण करते रहे। अयोध्या मे तो उन्होंने अपने जीवन का बहुत सा समय बिताया। उन्हे सबसे अधिक ममता चित्रकूट पर थी। अपने भ्रमणकाल मे सत्सग से उन्होंने बड़ा ज्ञान प्राप्त किया था।

साहित्य सेवा—इन्होने रामलला नहछू जानकी मङ्गल, रामाज्ञा प्रश्न, वैराग्य सन्दीपनी, रामचरितमानस, पार्वती मङ्गल, गीतावाली, कृष्ण गीतावली, विनय-पत्रिका, बरवै रामायण, दोहावली और कवितावली ये १२ ग्रथ लिखे। उनमे रामचरितमानस, कवितावली, विनयपत्रिका, गीतावली आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

अन्तिम समय और मृत्यु—बचपन की भांति अन्तिम समय मे भी गोस्वामीजी को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। कलियुग से दुखी होकर इन्होंने विनय-पत्रिका लिखी। उनकी प्रसिद्धि से विरोधी बड़े जलते थे। विशेषकर इसलिए कि उन्होंने सस्कृत छोड भाषा (हिन्दी) मे रामायण क्यो लिखा? उन्होंने भगवान् के भरोसे सब प्रकार के विरोधो का मुकाबला किया। उनको बहु पीडा से भी अत्यन्त कष्ट सहना पडा। उनके प्लेग की गिल्टी भी निकली थी। कवितावली के उत्तर काड मे उन्होंने अपने इन दुर्दिनो का बड़ा करुण वर्णन किया है। उनकी मृत्यु के विषय मे निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है।

सम्वत सोलह सौ असो, असी गग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यो शरीर।

कुछ दिन पहले तक 'श्रावण श्यामा तीज सनि' के स्थान पर 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' पाठ चला आता था। परन्तु अब उसकी निस्सारता सिद्ध हो

गई है। दोहे वाली 'श्रावण शीत सनि' तिथि ही ठीक है क्योंकि उनके मित्र टोडर के वशज इसी तिथि को उनके नाम का सीधा अब तक देते हैं।

उपसंहार—इस प्रकार तुलसी के जीवन सम्बन्धी तीन साक्ष्य उपस्थित होते हैं—अन्तःसाक्ष्य बहिःसाक्ष्य और जनश्रुति। इन सबसे अधिक प्रामाणिक अन्तःसाक्ष्य के प्रमाणों में भी नकाबें उत्पन्न करदी हैं। परन्तु जनश्रुति की अप्रमाणिकता व परिवर्तनशीलता और बाह्यसाक्ष्य की अपेक्षा अन्तसाक्ष्य ही अधिक प्रामाणिक है। अब तक जितनी सामग्री उपलब्ध होती है उसके परीक्षण से विद्वानों ने तुलसी की जन्मभूमि का निर्धारण तो सोरो के पक्ष में ही किया है। जब तक गवेषणापूर्ण कार्यों का अंतिम परिणाम उपलब्ध नहीं होता तब तक अन्तःसाक्ष्य की सामग्री को ही प्रामाणिक मानना उचित है।

प्रश्न ७—तुलसीदास के काव्य-ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनकी काव्य-कला की समीक्षा कीजिये।

अथवा

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं का संक्षेप परिचय दीजिये।

उत्तर—महाकवि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित काव्य-ग्रन्थों के विषय में भी उनके जीवन की भांति ही कुछ मतभेद प्रचलित हैं। इस मतभेद का कारण तुलसी की रचनाओं में अंत साक्ष्य का अभाव है। क्योंकि तुलसी राम-भक्त थे और उन्हें सांसारिक यश आदि काव्य के प्रयोजनों में कोई प्रयोजन नहीं था और उन्होंने अपने सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ की रचना भी "स्वान्तः सुखाय" ही की थी, अतः ऐसे ग्रन्थों में अन्त साक्ष्य का अभाव आवश्यक था। इस कारण यह मतभेद संख्या व रचनाकाल दोनों की दृष्टियों से है। उनकी कुछ रचनाओं में तो पाठभेद और क्षेपक की समस्यायें भी प्रस्तुत हो जाती हैं।

काव्य-ग्रन्थों की संख्या—काव्यग्रन्थों की संख्या की दृष्टि से कुछ विद्वानों के मतानुसार तुलसी द्वारा रचित अठारह ग्रंथ हैं और कुछ के मतानुसार पच्चीस ग्रन्थ। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के मतानुसार तुलसी ने सैंतीस ग्रन्थ लिखे परन्तु इनमें से बारह ग्रन्थ ही पं० रामचन्द्रशुक्ल, लाला सीताराम आदि अधिकांश विद्वानों ने प्रामाणिक स्वीकार किये हैं। प्रामाणिक ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(१) रामचरितमानस (२) वैराग्य सदीपनी (३) राम लला नहछू (४) बरवैरामायण (५) पार्वतीमगल (६) जानकीमगल (७) रामआज्ञा प्रश्न (८) दोहावली (९) कवितावली (कविता रामायण) (१०) गीतावली (११) कृष्ण गीतावली (१२) विनय पत्रिका।

रचना-काल—की दृष्टि से तुलसी के काव्य ग्रन्थो के सम्बन्ध मे डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० माताप्रसाद गुप्ता, प० रामनरेश त्रिपाठी आदि विद्वानो ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये है। परन्तु ठोस प्रमाणो के अभाव मे इन ग्रन्थो के निश्चित कार्य-क्रम का निर्णय करना कठिन है। इतना होते हुए भी उपर्युक्त बारह ग्रन्थो की प्रामाणिकता अधिकाश विद्वानो ने स्वीकार की है, चाहे उनका रचना-काल अनिश्चित ही क्यों न हो।

संदिग्ध-ग्रन्थ—इनकी सदिग्ध रचनाओ मे अकावली, वजरगवाण, भरतमिलाप, हनुमान चालीसा, हनुमान पचक, हनुमान बाहुक, गीता भाषा, छप्पयरामायण, तुलसी सतसई, कुण्डलिया रामायण आदि हैं। नागरी प्रचारिणी सभा ने भी अपनी रिपोर्ट मे यह स्पष्ट किया है कि तुलसी नामधारी अनेक व्यक्तियो ने भी ग्रन्थों की रचना की है न कि गोस्वामी तुलसीदास ने।

है। भक्तिभाव की प्रचुरता तथा आदर्शों की महानता के सहयोग से यह ग्रन्थ धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि सभी दृष्टियों से तुलसी की अलौकिक कृति प्रतीत होता है। इसका रचना काल संवत् १६ १ माना जाता है।

२ वैराग्य संदीपनी—बासठ छन्दों के इस छोटे से ग्रन्थ का रचना काल संवत् १६३६ माना जाता है। इसमें दोहा, चौपाई तथा सोरठा छन्द में साधु-सन्तों के लक्षण, स्वभाव और उनकी महिमा का वर्णन है। भाषा ठेठ अवधी है और रस शान्त।

३ रामलला नहछू—बीस सोहर छन्दों की इस रचना का समय संवत् १६४३ माना जाता है। इसमें राम के विवाह के समय का नहछू वर्णन है। सोहर-छन्द आनन्दोत्सव या विवाह के अवसरों पर स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। शैली में प्रवाह है तथा कोमल-कान्त पदावली है। यह प्रबन्धात्मक काव्य है परन्तु काव्य की दृष्टि से साधारण है। कथा-भाग में मृत्याओं का रूप वर्णन और दशरथ की शृंगार-प्रधान परिहास-प्रियता कुछ खल जान पड़ती है, परन्तु यह सब लोक जीवन के माध्यम से रामचरित को देखने का प्रयास मात्र था। नहछू का अर्थ है—नह (नाखून) छू अर्थात् छूना, पूर्वी प्रान्तों में यह प्रचलन है कि बरात के पूर्व, चौक पर बैठने के समय नाइन नाखून छूती है या महावर लगाती है।

४ बरवै रामायण—ऐसा कहा जाता है कि गोस्वामी ने इसकी रचना संवत् १६३६ में अपने मित्र अब्दुल रहीम खानखाना के अनुरोध पर की थी। ६९ बरवै नामक छन्दों में सात काण्डों में रामचरित का वर्णन है। अलंकारों का उत्तम प्रयोग है। भाषा अवधी है। आलोचकों की अधिकता से कुछ इसे तुलसी-रचित मानने में सन्देह करते हैं।

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनींदे नैन॥

५ पार्वतीमंगल—पार्वती मगल 'कल्यान काज उछाह् व्याह' मे 'स्नेह सहित' गाने के लिए सवत् १६४३ की रचना माना जाता है। इसमे १६४ अरुण और हरिगीतिका छन्दो मे शिव-पार्वती के विवाह की कथा का वर्णन पूर्वी अवधी भाषा मे किया गया है। इसमे मगल-विधान की पूर्ण सामग्री है और भावो की व्यजना अत्यन्त कोमल ढग से हुई है तथा उक्ति वैचित्र्य भी विशेष सुन्दरता युक्त है। दृश्य-वर्णन की ओर कवि का पूरा ध्यान है और अलकृत पदावली का स्वाभाविक व विलक्षण प्रयोग हुआ है।

६. जानकी मंगल–सवत १६४३ मे रचित इस ग्र थ मे २१६ सोहर छन्द हैं। जानकी–राम का विवाह प्रधान विषय है और कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है। कथा मे हृदयग्राही प्रसगो की भरमार है। विवाह के निमित्त किये गये आयोजन के समय लोगो के जो विचार हो सकते हैं उनका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इसमें है। अलकारो का सफल प्रयोग है। अनुप्रास का प्रवाह व सौन्दर्य तो तुलसी की लेखनी से लिपटा पड़ा है। जैसे–जैसे कवि की लेखनी चलती है वैसे–वैसे ही उसके पीछे अनुप्रास का मनोहर प्रवाह है। इसकी रचना अवधी मे हुई है।

७. रामाज्ञा प्रश्न – इसकी रचना गोस्वामी जी के मित्र पडित गगाराम ज्योतिषी के आग्रह पर हुई। सवत् १६६६ के लगभग रचित इस ग्रथ मे सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग मे ४६ दोहे हैं। वाल्मीकीय रामायण से प्रभावित राम–कथा का ब्रज मिश्रित अवधी भाषा मे वर्णन है।

८. दोहावली – सवत १६४० के लगभग रचित इस ग्रथ मे ५७३ स्फुट दोहे हैं। भगवद्भक्ति व उपदेशपरक दोहो का प्राधान्य है। इसमे कुछ दोहे ऐसे हैं जो रामचरितमानस और रामाज्ञा प्रश्न मे भी आये हैं। अत यह ग्रथ स्वतत्र न होकर गोस्वामी जी की विभिन्न रचनाओ से लिये गये दोहो का सग्रह है।

९ कवितावली – इसका दूसरा नाम कवित्त रामायण है इसमें तुलसी ने राम के ऐश्वर्य को प्रधान स्थान दिया है। गोस्वामी जी की सहृदयता और मर्मज्ञता जैसा सुन्दर परिचय इसमे मिलता है वैसा ही उनकी वर्णन कुशलता भी दर्शनीय है। एक ओर इसमे राम के बाल रूप की माधुरी और वन–गमन का मार्मिक चित्रण है तो दूसरी ओर लका–दहन के समय तथा युद्धक्षेत्र मे

प्रदर्शित हनुमान के रणकौशल और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन है। कवित्त, सवैया घनाक्षरी, छप्पय और झूलना छन्दो की इसमें ३४५ सख्या है। रचना शैली उत्कृष्ट भाव परिमार्जित और साहित्यिक हैं। गीतावली में छोड़ी हुई पौरुप घटनाओ की पूर्ति तथा रामचरित मानस मे सक्षेप वर्णित प्रसगो का इनमे विशद वर्णन हुआ है।

१० गीतावली – सवत् १६२७ मे रचित इस ग्रथ मे विभिन्न राग-रागिनियो का समावेश है। अष्टछाप के कवियो की गीत शैली है और कथा-प्रसग कुछ अन्तर के साथ रामायण से मिलता है। सात काण्डो मे वर्णित इस ग्रथ के ३३० छन्दो मे शृ गार, करुण और वात्सल्य आदि कोमल भावनाओ का प्राचुर्य है।

११ श्रीकृष्ण गीतावली – सवत् १६२३ मे रचित ६१ पदो के इस ग्रथ मे कृष्ण-कथा का वर्णन है। इसके कुछ पद सूर के भ्रमर गीत से मिलते हैं। भाषा व्रज है।

१२ विनय पत्रिका – पाण्डित्य और सस्कृत गर्भित व्रजभाषा में रचित यह ग्रथ भक्तो के हृदय का सर्वस्व है और भक्ति की पूर्ण पद्धति इसमें वर्णित है। तुलसी ने कलिकाल के विरुद्ध श्री राम के दरवार में अर्जी पेश की है जिसमें दरवारी शिष्टाचार का बहुत ध्यान रखा गया है। भावनाओं की अभिव्यक्ति की दृष्टि से निस्सन्देह यह उच्चकोटि का ग्रथ। शान्त रस की प्रधानता है।

१. अन्त. साक्ष्य के अभाव में मत भेद।

२ कवि ग्रन्थो की सख्या व मतभेद तथा प्रामाणिक बारह ग्रंथ।

३ रचना काल सम्बन्धी मतभेद।

४ सदिग्ध ग्रन्थ।

५ प्रामाणिक बारह ग्रथो का परिचय व काव्यकाल।

प्रश्न ३—भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके। बुद्धदेव समन्वयकारी थे, गीता मे समन्वय की चेष्टा है और तुलसी भी समन्वयकारी थे।" तुलसी की इस समन्वय कला पर प्रकाश डालिये।

अथवा

तुलसीदास हिन्दी के समन्वयकारी प्रतिनिधि कवि हैं। इस कथन का स्पष्टी करण कीजिये।

अथवा

"तुलसीदासजी ने काव्य मे प्रचलित सभी शैलियों तथा ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं मे रचना की है और तत्कालीन समाज मे समन्वय का प्रयास किया है।" उपर्युक्त कथन पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर—भारतवर्ष मे नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी सस्कृतियाँ, साधनायें, विचार और धर्मसिद्धात प्रचलित रहते हैं। तुलसी ने इन सामाजिक क्षेत्रो के साथ ही साथ साहित्यिक क्षेत्र मे भी अपनी समन्वय भावना का परिचय दिया है—अत वे लोकनायक माने जाते हैं। डॉ० ग्रियर्सन इन्हे बुद्ध के बाद भारत का सबसे बडा लोकनायक और स्मिथ मुगलकाल का महानतम व्यक्ति मानते हैं। इसका कारण यह है कि तुलसी ने लगभग १२०० वर्षो से चली आ रही धार्मिक व सामाजिक विषमाताओ का परिष्कार किया और समाज को ऐसे आदर्श मर्यादा के बधन मे बांध दिया जो समन्वय की भावना पर आधारित था। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र मे समन्वय करने के अतिरिक्त उन्होने साहित्यिक क्षेत्र मे भी समन्वय-भावना को अपनाया।

समन्वय से तात्पर्य विरोधी तथा विपरीत भावो, पदार्थों व्यक्तियों तथा तत्वो के समीकरण तथा एक हो जाने से है। हमारा समाज सब दिन से उदार तथा समझौता वादी रहा है। अति वादियो को वह कभी मान नहीं देसका है। स्थूल दृष्टि से देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धदेव का लोकनायकत्व उनके समन्वयात्मक क्रिया-कलापो पर आधारित न होकर उनके विद्रोहात्मक कार्यो पर निर्भर हैं। उन्होंने सनातन रूढियो के विरुद्ध विद्रोह किया परम्परागत धार्मिक विश्वासो को खण्ड-खण्ड कर नवीन धर्म की स्थापना की, जाति-पांति स्पृश्या-स्पृश्य के भेद भावों को चुनौती दी वर्णाश्रम को भग किया हिंसा पूर्ण यज्ञादि पूजा पाठ तीर्थ व्रत जैसे लोक समादृत प्रथाओं पर प्रहार कर तत्कालीन लोक पालों को आश्रय दिया और इस प्रकार उनका सारा आचरण समन्वय की—सिद्धि मे नहीं वरन् समाज के विरुद्ध क्रान्ति की पूर्ति में नियोजित हुआ। पर हमे भूलना नहीं चाहिये कि 'महात्मा बुद्ध' का

मार्ग "मध्यम मार्ग" के नाम से विभूषित है। "मध्यम मार्ग" की प्राप्ति की सीढ़ी समन्वय होती है। महात्मा बुद्ध ने "अति" पर पहुँचे हुए तत्कालीन समाज को समन्वय की ओर झुकाने का प्रयत्न किया और अपनी सफलता द्वारा इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा गया।

बुद्ध और तुलसी के बीच भारत की विभूतियाँ—

अशोक—बुद्ध के पश्चात् और तुलसी के पूर्व भारत में कई विभूतियाँ पैदा हुई। सम्राटों में अशोक जैसा सम्राट् इसी बीच हुआ जो विश्व के "महान्" उपाधि-धारी थोड़े से सम्राटों में से एक है और जिसकी प्रशस्ति में एक विदेशी इतिहासकार एच० जी० वेल्स ने अपने 'विश्व इतिहास की रूपरेखा" में लिखा है—" इतिहास के पृष्ठों पर भीड़ करने वाले सहस्रों राजाओं की नामावली तथा अनेक ठाठ बाट और दान पुण्यों के बीच अशोक का नाम एक नक्षत्र की भाँति चमकता है कान्स्टेन्टाइन या शार्लमेन के नाम जितने लोगों ने सुने हैं उनसे कहीं अधिक मनुष्य अशोक की स्मृति की पूजा करते हैं।" अशोक की यह ख्याति उनकी व्यक्तिगत महानता के कारण भी हो सकती है, पर हम जानते हैं कि इसका प्रधान कारण महात्मा बुद्ध के उपदेशों का उसके द्वारा ईमानदारी से प्रचार व प्रसार है। उसके द्वारा कोई समन्वय संघटित नहीं हुआ।

था। कहते हैं उसने सभी धर्मो का समन्वय करना चाहा और इसी उद्देश्य से " दीन-इलाही " चलाया पर इतिहास साक्षी है कि उसका यह प्रयत्न उन्मुक्त हृदय के नही हुआ था और उसकी कूटनीति का छदम-आवरण ही हुआ। अकबर को लोकनायक किसी ने नहीं माना। कर्नल स्मिथ ने अपने इतिहास में कही लिखा है कि सम्राट अकबर के समय मे यही समझा जाता रहा होगा कि तुलसीदास अकबर के युग मे हुए है। पर उस समय किसी को क्या पता रहा होगा कि ज्यो-ज्यो वर्ष दशक व शताब्दियाँ बीतती जायेंगी लोग यह कहते पाये जायेंगे कि अकबर तुलसीदास के युग मे हुआ था। अकबर अपने समय का सम्राट भले ही रहा हो पर उस समय का लोकनायक कवि था तो वह महात्मा तुलसीदास ही थे। वह युग तुलसी का था अकबर का नही।

समन्वयकारी लोकनायक—तुलसी दासजी के इस लोक नायकत्व का रहस्य सचमुच उनकी समन्वयात्मक प्रतिभा मे निहीत है। समन्वय के इस महान् उद्देश्य मे तुलसीदास जानबूझ कर प्रवृत्त हुए थे। उनमे सामाजिक चेतना उत्प्रेरक का कार्य कर रही थी। वह नितान्त एकान्त सेवी भक्त नहीं थे। उन्होंने अपने समाज की राजनीतिक सामाजिक एव धार्मिक भावनाओ की तीन अवस्था का अनुभव किया और उसमे परिवर्तन लाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। राजनीतिक अधिकार उस समय यवनो के हाथ मे था। तुलसी दास ने अपनी आलकारिक भाषा मे स्थान स्थान पर रावण राज्य के अत्याचारो के व्याज मे तत्कालीन राजनीतिक दशा का वर्णन किया। पर उन्होंने कहीं भी मुसलमानो से हिन्दुओ के समन्वय का स्पष्ट उपदेश नही किया। यवन राज्य ने असहयोग उनकी नीति थी। कोई आलोचक चाहे तो तुलसी दास के समन्वयात्मक 'मिशन' मे यह त्रुटि इगितकर सकता है उनका समन्वय का उद्देश्य हिन्दु समाज की परिधि तक सीमित था। हिन्दु समाज के विभिन्न मतों दार्शनिक विचार धाराओ देवी देवताओ अवतारो और मान्यताओ के बीच उन्होंने समन्वय स्थापित किया। पक्षपात उन्होंने किसी के प्रति नहीं दिखाया पर अत्याचार अनाचार, अनीति पाखड का उन्होने खुलकर विरोध किया। तुलसीदास ने विरोधी मतो, सम्प्रदायों विचार धाराओं को मिलाने का प्रयत्न सत हृदय से किया। वह हिन्दू समाज के सच्चे उपकारक थे, उसे सगठित सयुक्त व दृढ स्थाई देखना चाहते थे। प्रत्युपकार की इच्छा उनमें

नहीं थी। क्योंकि वह ससार-त्यागी महात्मा थे। पर ससार अपने उपकारी को भी नहीं भूल सकता। यही कारण है कि तीन सौ वर्ष बीत जाने पर भी हम तुल्सी के महत्त्व को भुला नहीं सके हैं और अपने समय के तो ये लोक-नायक थे ही।

सर्वदेव समन्वय—यहा महात्मा तुलसीदास की रचनाओं से उनकी समन्वय कारिणी प्रवृत्ति के प्रतिपादन में कुछ उदाहरण देना आवश्यक है। यह सर्व विदित है कि तुलसीदास राम के अनन्य भक्त थे पर उन्होंने सभी देवी देवताओ के प्रति सम्मान प्रकट किया है। यथा—

(१) गाई ये नरपति जगवन्दन, शकर सुवन भवानी-नन्दन।

(२) दीन दयालु दिवाकर देवा, कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा॥

(३) जय जय जननि, सुर नर मुनि असुर सेवि।
भक्ति मुक्ति दायक भय हरणि कालि का।

(४) जय जय सुरसरी जग दाखिल-पावनी।

यह अवश्य है कि सबके प्रति विनय-भाव प्रकट करते हुए भी तुलसी दास अपनी राम-भक्ति की अन्यनता को अक्षुण्य रखते हैं। वह देवी-देवताओं से राम-भक्ति की याचना करते हैं।

चरण वन्दि विनयो सब काहू।
देहु राम पद नेह निबाहु॥

शिव विष्णु समन्वय—तुलसीदास का युग शैवो और वैष्णवो के परस्पर विग्रह के लिए कुख्यात था। तुलसी वैष्णव थे पर उन्होंने शिव के प्रति जो नीति अपनाई उसमे उस युग की एक बड़ी समस्या के समाधान में मदद मिली। और छिन्न भिन्न हिन्दू समाज एकता के पाश में आ गया शिव के औढर दानीपन की सराहना करते हुए महाकवि की उक्ति है।

को जाचिय शम्भु तजि आन।

राम और शिव की एकता उन्होंने अनोखे ढग से स्थापित की राम से शिव की स्तुति करवाई और शिव से राम की। राम कहते हैं—

शिवद्रोही मम दास कहावै।
सो नर सपनेहु मोहि न भावै॥

शिव गिरिजा को रामभक्ति का उपदेश देते हुए करते हैं।

ते सिर कटु तु वरि समतूला। जे न नमत हरि गुरपद मूला ॥
न्हि हरि भगति हृदय नहीं आनि। जीवत सव समान तेही प्रानी ॥

वास्तव मे शिव और राम की एकता स्थापना कार्य तुलसी की समन्वय भावना की सबसे बडी विजय थी। यह उस समय के हिन्दू समाज की सबसे बडी आवश्यकता थी।

भक्ति, ज्ञान, कर्म समन्वय—तुलसी प्रथमत. भक्त थे पर उन्होंने मार्गियो का विरोध नही किया, उनका कथन है कि।

ज्ञान हि भक्ति हि नहि कछु भेदा।
उभय हरहि भव सभव खेदा ॥

साथ ही कर्मवाद का समर्थन वह यह कह कर करते हैं।

करम प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा ॥

इस प्रकार तुलसीदास मे भक्तियोग, ज्ञानयोग-और कर्म-योग का समन्वय मिलता है।

निर्गुण सगुण समन्वय—निर्गुण और सगुण का विवाद भी उसी समय खूब ही चल रहा था। भक्तो का समाज इस प्रश्न को लेकर कई दलो मे विभक्त था। गोस्वामी जी ने सबको मिलाने का प्रयत्न किया।

जिनका मत था कि—

"सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेरा, गावहि मुनि पुरान बुधवेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई, भगत प्रेम वश सगुन सो होई ॥
जो गुनरहित सगुन सोई कैसे, जलुहिम उपल बिलगु नहि जैसे ॥

(बालका. चौ ११६)—

ब्रह्म-माया समन्वय—शंकराचार्य ने जिस माया के सिद्धान्त से जगत् को भ्रम मे डाल दिया था गोस्वामी तुलसी ने उसका समन्वय जगत् जननी जानकी से कर उस भ्रम को मिटा दिया।

श्रुति सेतु पालक राम, जगदीश तुम,माया जानकी।
जो सृजति जग पालति, हरति रुख पाय कृपानिधान की ॥

भक्ति क्षेत्र में समन्वय—सामाजिक जीवन में तुलसीदास का वर्णाश्रम का समर्थक होना सभी को विदित है। पर भक्ति के क्षेत्र में सारी असमानताएं मिट जाती है और राम भक्ति का समान अधिकार सुर, नर मुनि, राक्षस, वानर, सभी को गोस्वामी जी प्रदान कर देते हैं। फल स्वरूप मोक्ष का द्वार भी सभी के लिए समान रूप से खुला । कुम्भकर्ण की मुक्ति सभी को अचम्भे में डाल देती है—

ता सुतेज प्रभु वदन समाना।
सुर नर मुनि सबहि अचभा माना॥

शबरी की मुक्ति की कथा कम आश्चर्य जनक नहीं है—

जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्ति कीन्ह असनारि॥

जटायु को अपने लोक भेजने की कथा भी सभी जानते हैं।

कौन नहीं जानता की "राम ब्रह्मपरमारथ रूपा" है? पर वही राम कहते हैं।

"अ जन सहित मनुज अवतारा, लैंहो दिनकर बंश उदारा"
(बाल चौ० १८७)

यहा ब्रह्मत्व व नरत्व का समन्वय दिखाना उद्देश्य है?

'असुभ होई जिनके सुमिरेते वानर, रीछ विकारी'

ऐसे वानर व रीछो को भी अपना सेवक मानकर राम ने मानो देवत्व व पशुत्व के समन्वय का आदर्श उपस्थित किया है।

सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक और मानवेतर क्षेत्रों में तुलसी दास ने जिस प्रकार समन्वय स्थापन का प्रयत्न किया है उसे दिखाने के लिए इतना विवेचन पर्याप्त है।

साहित्यिक समन्वय —साहित्यिक क्षेत्र में भी गोस्वामी जी इसी समन्वय भावना से ओत-प्रोत थे। उन्होंने तत्कालीन दोनों भाषाओं–अवधी व ब्रज–को अपनी रचना का माध्यम बताया। समान के लिए अवधि को अपना कर गीतावली कवितावली विनय पत्रिका का निर्माण उन्होंने ब्रज में किया तुलसीदास के पूर्व काव्य रचना की दोहा–चौपाई, छप्य, मन हरण आदि की जिनकी शैलियां प्रचलित थी उन सबका समन्वय हम महा कवि में पाते हैं।

उपसंहार—उपसंहार में हम कह सकते हैं कि तुलसीदास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय के सिद्धान्त को अपना मार्ग प्रदर्शक बनाकर चले। अतिवाद का सहारा उन्होंने कभी नहीं लिया यही कारण है कि वे विशाल भारतीय जन समाज के इतने निकट पहुँच सके। तुलसी के लोकनायकत्व का रहस्य उनकी समन्वय भावना में है। निस्सदेह अपने समय के वे सबसे बड़े लोकनायक थे।

स्मरण-संकेत

(१) बुद्ध ने समन्वय-भावना के आधार पर "मध्यम मार्ग" को अपनाया।

(२) बुद्ध और तुलसीदास के बीच में अशोक, शंकराचार्य, अकबर जैसी महान् विभूतियाँ हुईं—पर समन्वय भावना के अभाव में वे लोकनायक नहीं बन सके।

(३) समन्वय-प्रतिभा के बल पर बुद्ध के पश्चात् तुलसी ही लोकनायक हुये।

(४) तात्कालिक युग की आवश्यकताओं को समझकर तुलसी ने जीवन के विविध क्षेत्रों में समन्वय किया।

(५) सर्वदेव, विष्णु-शिव, भक्ति-ज्ञान-कर्म, निर्गुण-सगुण, माया-ब्रह्म, साहित्यिक आदि अनेक प्रकार का समन्वय तुलसी ने किया।

(६) समन्वय भावना के बल पर लोकनायक बन सके।

प्रश्न-४- 'राम अनन्त गुन अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन के विमल विचार॥'

—बालकाण्ड की उक्ति के आधार पर राम-जन्म के विविध कारणों पर प्रकाश डालिये।

अथवा

"राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी। सर्व रहित सब उर पुर वासी।
माया घरेउ नरतनु केहि हेतु। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतु॥"

बालकाण्ड में पार्वती के इस प्रश्न का जो उत्तर शिव जी ने दिया उस पर प्रकाश डालिये।

अथवा

राम भगवान हैं परन्तु मनुष्य शरीर धारण करते हैं। राम के अवतार लेने के कारणो पर बालकाण्ड के माध्यम मे विचार कीजिये।

उत्तर—'रामचरित्र मानस' तुलसी के हृदय से निसृत भक्ति की वह पतित पावनी सुरसरिता है जिसमे अवगाहन करने से त्रिविध तापो से सतप्त प्राणी को अलौकिक सुख प्राप्त होता है। इसमे तुलसी ने राम के अनन्त रूपों और 'नेति नेति' के आधार पर अपना गुणो के साथ ही राम–कथा के अमित विस्तार की ओर सकेत किया है। उन्होंने बाल काण्ड मे इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि—

"रामकथा कै मिति जग नाही।
अति प्रतीति तिन्ह के मन माही॥
नाना भाति राम अवतारा।
रामायन सत कोटि अपारा॥ (बाल का चौ ३२)

श्रोता व वक्ता के आधार से रामकथा के इन कल्प-जनित भेदो का वास्तव में वारापार नहीं है। राम-कथा अनन्त है परन्तु राम चरित्र मे माता पार्वती राम के ईश्वरत्व मे श्रद्धा रखती हुई भी शिवजी से प्रश्न करती हैं—

"राम ब्रह्म चिनमय अविनासी।
सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू।
मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू॥ (बाल का. चौ. १२०)

इसके उत्तर मे शिव जी कहते हैं कि भगवान् के अवतार-लेने के अपना कारण हैं उनका इदमित्थ नहीं है—

"हरि अवतार हेतु जेहि होई।
इदमित्थ कहि जाइ न सोई॥" (बाल का चौ १२१)

परन्तु फिर भी सतो, मुनियो, वेदो पुरानों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार इन हेतुओ की परिकल्पना की है। इन कारणो को दो विभागो मे

विभक्त किया जा सकता है। प्रथम सामान्य कारण और द्वितीय विशेष कारण।

सामान्य कारण— राम-जन्म का सामान्य हेतु ठीक वही है जिसे भगवान् कृष्ण ने गीता मे कहा है कि जब जब धर्म की हानि होती है तब तब धर्म अभ्युत्थान के लिये, साधुओ के परित्राण के लिये और दुष्टात्माओ के विनाश के लिये मैं अवतार लिया करतार हूँ—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्ययुत्थान धर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥
परित्राण साधूना, विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ॥

रामचरित्र मानस के बालकाण्ड मे भी शिव ने पार्वती से राम के जन्म के इस हेतु का वर्णन इस प्रकार किया है –

" जब जब होइ धरम कै हानी ।
बाढहिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी ।
सदिहिं विप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा ।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥" (बालका चौ. १२१)

विशेष कारण— रामचरित्र मानस के बालकाण्ड मे भगवान् के अवतार लेने के अन्य विशेष कारणों का भी उल्लेख है। इन कारणो मे जय-विजय बराहावतार, जलन्धर, नारद शाप, मनु-शतरूपा, सत्केतु आदि की कथा मे आधार हैं।

प्रथम कारण—प्रथम कथा है कि विष्णु के जय विजय नामक दो द्वारपाल थे। उनको एक ब्राह्मण ने शाप दे दिया कि वे राक्षस हो जावें और तीन जन्मो मे उनकी मुक्ति हो। भगवान् ने हिरण्याक्ष को वराह रूप धर कर तथा हिरण्यकश्यप को नरसिंह रूप धर कर मारा। वे ही कुम्भकरण और रावण हुए। तब मनु और शतरूपा ने दशरथ-कौशल्या के रूप मे जन्म लिया और वहाँ राम ने अवतार लिया। (बालका. चौ १२२)

द्वितीय कथा-जलन्धर--- एक कल्प मे जलन्धर नामक राक्षस से समस्त देवता हार गये यहा तक कि शिव जी भी उने नही मार सके, क्योकि जलन्धर की पत्नी वृन्दा महान् सती थी । भगवान् ने छल कर के वृन्दा के सतीत्व को डिगाया और जलन्धर मारा गया। इस सती के शाप से मुक्त होने के लिये भगवान् ने राम का रूप धारण किया और जलन्धर ही रावण बना। (बाल १२४)

नारद शाप-हेतु – ऋषि नारद ने बहुत तपस्या की। इन्द्र का आसन चलायमान हुआ उसने कामदेव को भेजा । परन्तु उसका कोई वश नारद पर नही चला। नारद के मन मे कामदेव को जीतने का अहकार आगया । उन्होने आपबीती कथा शिव जी को सुनाई। तब शिव जी ने कहा कि हे नारदजी आप यह कथा भगवान् विष्णु से न कहे। परन्तु अभिमान वश नारद जी ने ब्रह्मा से तो कह ही दिया, इसके उपरान्त विष्णु को भी यह कथा सुना दी। फिर क्या था ? हरि-लीला से प्रेरित एक सुन्दर नगरी मे राजा की कन्या विश्वमोहिनी का स्वयवर होते देख नारद भी उस कन्या पर आसक्त होगये। उन्होने भगवान् से उनका रूप मागा भगवान ने रूप दे दिया नारद स्वयम्वर मे पहुँच गये। वहा कन्या ने इनके गले मे वरमाला न डाल कर राजा का रूप धारण किये हुये भगवान् के गले मे माला डाल दी। तब नारद को क्रोध आया। उस अवसर पर शिव जी के दो गण (सेवक) वहा उपस्थित थे। उन्होने नारद से अपना मुह बन्दर (हरि) का सा नजर आया तो उनका क्रोध बढ गया और उन्होने शिव के दोनो सेवकों को राक्षस होने का शाप दे दिया। साथ ही भगवान् को भी शाप देते हुए कहा—

"बचेहु मोहि जवनि-धरि देहा ।
सोइ तनु धरहु श्राप मम ऐहा ॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी ।
करि हहि कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम भारी ॥
नारि बिरहँ तुम होब दुखारी ॥" (बाल. १३७)

प्रभु ने नारद शाप को स्वीकार कर राम रूप मे उससे मुक्ति पाई।

मनु-शतरूपा — राम जन्म का एक विशेष कारण मनु व शतरूपा की तपस्या भी है। मनु और उनकी पत्नी शतरूपा ने भगवान् की भक्ति के लिए कठिन तपस्या की। तपस्या के परिणाम स्वरूप उन्होने भगवान् को सदेह देखने की इच्छा व्यक्त की। उनकी इच्छा पूर्ण हुई और भगवान् ने राम-सीता के रूप में उनको दर्शन दे दिये और वरदान माँगने को कहा। मनु-शतरूपा ने यह वरदान माँगा कि आप पर हमारी भक्ति ऐसी हो जैसी पिता और माता की होती है। साथ ही मेरा (मनु) शरीर आपके देखे बिना न रह सके। इस वरदान के कारण भगवान् ने राम रूप मे जन्म लिया और मनु-शतरूपा क्रमश; दशरथ-कौशल्या बने।

(बालक. चौ १४२ से ..१५२)

सत्यकेतु-प्रतापभानु हेतु—राम जन्म का एक कारण यह कथा भी है कि कैकय देश के राजा सत्यकेतु के दो पुत्र थे। एक था प्रतापभानु और दूसरा अरिमर्दन। जब प्रतापभानु राजा हुआ तो उसने अपने धर्मरुचि नामक मंत्री की सहायता से दिग्विजय की। इस विजय मे उसने जिस राजओ को हराया था उनमे से एक कलक के भय से साधु बन गया। एक बार जगल मे शिकार खेलने गये हुए प्रतापभानु को प्यास लगी। वह एक सूअर का पीछा करते करते उसी साधु के पास पहुँच गया। साधु का मित्र एक राक्षस था। जिसने सूअर रूप धारण किया था। साधु ने राजा को पहचान लिया और उसे अपनी बातों मे फँसा लिया तथा साथ ही इस बात पर राजी कर लिया कि यदि वह इस साधु के हाथ का बनाया भोजन ब्राह्मणों को करावे तो उसका राज्य चिर-काल तक रह सकता है। राजा राजी हो गया। राक्षस ने राजा को घोडे के साथ महल मे पहुचा दिया। निश्चित दिन उपरोहित के रूप मे साधु वहाँ पहुच गया और उसने भोजन मे माँस के साथ ब्राह्मणो का माँस भी मिला दिया। जब राजा ब्राह्मणो को भोजन परसा तब आकाशवाणी हुई और ब्राह्मणो ने राजा को शाप दिया कि तुम्हारे कुल का नाश होगा। देखते-देखते साधु व राक्षस के साथी राजाओ ने प्रतापभानु को सपरिवार मार दिया। यह प्रताप भानु रावण, उसका छोटा भाई अरिमर्दन कुम्भकरण व मत्री धर्मरुचि विभीषण बने। रावण के अत्याचारो से घबरा कर पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया और भगवान् से उद्धार की प्रार्थना की तब भगवान् ने राम के रूप मे जन्म लेकर रावण का सहार किया।

इस प्रकार रामचरित मानस राम के जन्म सम्बन्धी सामान्य व विशेष हेतुओं पर प्रकाश डाला गया है। सामान्य हेतु सासारिक धर्म पर आधारित है और विशेष हेतु में अनेक पौराणिक आख्यानों को आधार बनाया गया है। अन्त में उपसंहार स्वरूप रामचरित मानस की निम्नलिखित पंक्तियाँ ही उद्धरण स्वरूप दी जाती हैं—

"एहि विधि जनम करम हरि केरे।
सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहिं।
चारु चरित नाना विधि करहिं॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई।
परम पुनीत प्रबन्ध बनाई॥
विविध प्रसग अनूप बखाने।
करहिं न सुनि आचरजु सयाने॥
हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।
कहहिं सुनहि बहुविधि सब संता॥

(बालकाण्ड चौपाई-१४०)

प्रश्न ५—तुलसीदास जी के 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में आये हुए 'मानसरूपक' को अपने शब्दों में लिखकर 'मानस रूपक' के महत्व पर प्रकाश डालिये।

(रा० वि० १९६६)

अथवा

'रामचरितमानस' के नामकरण के औचित्य पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—कवि-कुल-कमल-दिवाकर गोस्वामी तुलसी दास ने, हिन्दी साहित्य-वाटिका में अनेक ग्रंथ-पुष्पों का उत्पादन करके भक्त-भ्रमरों और साहित्य में अपनी अमर वाणी के द्वारा शीतल शशि का स्थान प्राप्त किया। परन्तु इस अमर कवि की साहित्य-वाटिका सार्वधिक सुन्दर, मधुर और सुगंधित पुष्पराज 'रामचरितमानस' ही है। इस मानस शब्द का अर्थ मानसरोवर लेकर तुलसीदास ने इसके प्रथम सर्ग बालकाण्ड में मानस रूपक की रचना की है। यह रूपक बहुत लम्बा, परन्तु सुन्दर है और साग-रूपक का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण

है। कवि ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के बल पर रामचरित की उत्पत्ति, भक्ति और समस्त प्रमुख घटनाओ अर्थात 'रामचरितमानस' शीर्षक पुस्तक-रत्न के समस्त अनुभवो पर अरोप मान सरोवर का आरोप किया है।

रूपक की परिभाषा—लक्षणो के अनुसार 'रोपारोपनुरूपकम्' अर्थात अभेद आरोप को रूपक कहा जाता है। तुलसी ने रामचरितमानस के समस्त अ गो पर मानसरोवर का अभेद आरोप किया है जिससे यह सागरूपक सिद्ध हुआ है।

रूपक स्पष्टीकरण—रामचरितमानस वास्तव मे मानसरोवर है जिसमे साधु रूपी मेघ राम के यश रूपी निर्मल जल की वर्षा करते हैं। वह पवित्र जल बुद्धि रूपी पृथ्वी पर गिर कर कान के मार्ग से प्रवाहित होकर मानस (हृदय) रूपी श्रेष्ठ स्थान मे भरकर वही स्थिर हो गया।

घाट—इस कथा मे भुशुण्डि-गरुड, शिव-पर्वती याज्ञवल्क्य-भरद्वाज और तुलसीदास-सतो के चारो सवाद सरोवर के चार मनोहर घाट हैं।

"सुठि सुन्दर सवाद बर बिरचे बुद्धि विचारी।
ते एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥" (बा० दो० ३६)

सीढ़ियाँ व जल की गहराई—रामचरित मानस के सात काण्ड मानस रूपी सरोवर की सात सीढियाँ हैं और राम की महिमा का वर्णन इस जल की अथाह गहराई है।

"सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना।
ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा।
बरनब सोई बर वारि अगाधा॥

जल की लहरें, कमलिनी व सीपियाँ—मान सरोवर के जल की लहरों के रूप मे मानस मे उपमाये हैं, कमलिनियो के रूप मे सुन्दर चौपाइयां हैं और कविता का मुक्तियाँ सीपियाँ हैं।

उपमा बीच विलास मनोरमा।
पुरइन सघन चारु चौपाई॥
जुगति मजु मनि सीप सुहाई।
जुगुति मजु मनि सीप सुहाई॥

कमल, मकरन्द, भ्रमर, हंस व मछली – रामचरितमानस के दोहे सोरठे आदि छन्द बहुरंगे कमल हैं, सुन्दर भावों का मकरन्द है, सत्कर्म भौंरे हैं, विचार हंस हैं और कविता के गुण मछलियाँ हैं –

"छन्द सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग, मकरन्द, सुवासा ॥
सुकृतपुंज मंजुल अलिमाला । ग्यान विराग विचार मराला ॥
धुनि अवरेक कवित गुन जाती । मीन मनोहर ते बहु भाँति ॥"

जलचर-जीव, पक्षी, बसन्त—धर्म अर्थ, मोक्ष नामक चारों पुरुषार्थों का विचारपूर्वक कथन, नौ रस, जप, तप, वैराग्य आदि के प्रसंग इस मानस के जलचर जीव हैं और पुण्यात्मा, साधुओं व राम का गुणगान जलपक्षी हैं तथा संतों की सभा चारों ओर की अमराइयाँ हैं एवं श्रद्धा ही वसन्त ऋतु है।

लता, फूल फल, रस आदि – इस मानस में वर्णित अनेक प्रकार की भक्ति व मानवीय गुण लताओं के मण्डप हैं। यम और नियम उनके फूल हैं, ज्ञान फल है और भगवत्प्रेम इस फल का रस है।

तोते, कोयल, वाटिका, माली – मानस के अन्य कथा प्रसंग बहुरंगी तोते और कोयलें हैं तथा पुलक रूपी वाटिका है और निर्मल मन ही माली है।

"औरउ कथा अनेक प्रसंगा ।
तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा ॥

सिंचाई व रक्षा—इस रामचरित रूपी मानसरोवर का माली प्रेम रूपी जल से सुन्दर नेत्रों द्वारा वाटिका को सींचता है और इसको सावधानी से गाने वाले सरोवर के चतुर रखवाले हैं।

"जे गावहिं यह चरित सँभारे ।
तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ॥"(बाल. दो ३८)

विशेषता – महाकवि तुलसीदास ने इस सांगरूपक को और भी सौंदर्य प्रदान करने के लिए आगे यह कहा है कि इस 'मानस' में बगुले, मेंढक, घोंघे आदि नहीं हैं। इसका मार्ग बीहड़ है और जिसके पास श्रद्धा रूपी राह ने नर्चे

नहीं है, सन्तों का साथ नही है और भगवत्प्रेम नहीं है उसके लिए यह मानस अगम है –

"जे श्रद्धा सबल रहित नहि सन्तन्ह कर साथ ।
तिन्ह कहु मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ ॥
(बाल दो ३८)

श्रद्धा, सत्सगति और रामभक्ति से सम्पन्न व्यक्ति ही इस सरोवर मे स्नान कर सकते हैं, अन्य नही । इस सम्बन्ध मे तुलसी ने स्पष्ट कहा है –

"जो नहाइ चह एहिं सर भाई ।
सो सत्संग करउ मन लाई ॥

मानस-रूपक का महत्व – इस मानस-रूपक का महत्व अत्यन्त विशद है । साहित्यिक दृष्टि से यह रूपक पूर्ण, सुन्दर व अद्वितीय है, साथ ही रामचरित के साथ मानस शब्द जोडकर इस ग्रन्थ को 'रामचरितमानस' के नाम से अभिहित करने मे तुलसी के प्रयोजन व प्रतिभा का परिचायक है । तुलसी उच्चतम व्यजना द्वारा यह ध्वजित कर देते हैं कि वे परमभक्त थे उन्होने श्रद्धा, सत्सगति व रामप्रेम के बल पर ऐसे मानस-सरोवर को हृदय के नेत्रो से देखा, जिससे उनकी बुद्धि निर्मल हो गई और उनके हृदय का प्रेम, आनन्द और उल्लास कविता रूपिणी सरयू नदी के माध्यम से बह निकला । कवि ने मानस से सरयू को प्रवाहित कर रामकथा के प्रधान पात्रो और घटनाओं का बडे कौशल से उल्लेख कर दिया, जिसे महाकाव्य मे नाटकीय सन्धियो की प्रतिष्ठापना हो जाती है । धार्मिक व लौकिक दृष्टि से इनका महत्व यह है कि तीनो तापो का इससे शमन होता है एव जीवन का सार – भगवत्प्रेम प्राप्त होता है ।

नामकरण – तुलसी ने इस रामकथा अर्थात् रामचरित का नामकरण 'मानस' शब्द के योग से 'राम चरित मानस' किया है । उपर्युक्त मानस-रूपक इसका एक कारण है । जिस कथा मे मानस अर्थात् मानसरोवर का पूर्ण रूपारोपण व गुणसाम्य उपलब्ध हो वह 'मानस' कहलाने की अधिकारिणी क्यो नहीं हो सकती है ?

औचित्य— आदि कवि वाल्मीकि की रामायण से लेकर आज तक राम-कथा अनेक भाषाओ के कवियो द्वारा कही गई है । केशव ने अपनी राम-

ग्रन्थ का नाम राम चन्द्रिका रखा. गुप्त जी ने साकेत और किसी ने राम चरित चिंतामणि परन्तु तुलसी ने इसका नाम 'रामचरित मानस' रखा जो सर्वथा उचित व सार्थक है । तुलसी भक्त थे और भक्त सांसारिक विषय भोगों से दूर रहता है अतः वे इसे 'स्वान्तः सुखाय' रचना चाहते थे। जब मन रूपी हाथी विषय रूपी दावानल मे जल रहा हो तो उसे चन्द्रिका या चिंतामणि की आवश्यकता न हो कर 'मानस' की आवश्यकता होती है— इसलिये तुलसी ने इसे मानस नाम दिया। इसके अतिरिक्त यह श्रुतिमधुर भी है —

"रामचरित मानस एहि नामा ।
सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा ॥
मन करि विषय अनल बन जरई ।
होइ सुखी जो एहि सर परई ॥"

(बाल. चौ. ३५)

अन्य— इसके नामकरण का एक अन्य कारण भी तुलसीदास ने दिया है, यह उनकी समन्वयात्मक प्रतिभा का कौशल है। वे स्पष्ट कहते हैं कि श्री महादेव जी इसे रचकर अपने मानस मे रखा और सुअवसर पाकर पार्वती जी से कहा। इसी से शिव जी ने इसे अपने हृदय में देखकर और प्रसन्न होकर सुन्दर 'रामचरित मानस' नाम दिया —

प्रश्न—"मोरे मत बड़ नाम दुहू तें।"—तुलसी के इस कथन के आधार पर सिद्ध कीजिये कि राम नाम सगुण व निर्गुण ब्रह्म से बड़ा है।

अथवा

बालकाण्ड के आधार पर "राम नाम व उसकी महिमा" पर एक निबंध लिखिये।

उत्तर—तुलसीदास भक्त कवि थे। उन्होने समन्वय भावना का आश्रय लेकर राम चरितमानस की रचना की थी। उस समय एक ओर निर्गुण धारा के अनेक संत 'अलख' अर्थात निर्गुण ब्रह्म की आवाज को बुलन्द कर रहे थे और कुछ प्रेममार्गी सूफी संत भारतवर्ष मे प्रचलित आख्यानो के आधार पर सूफी मत के सिद्धातो का प्रतिपादन कर रहे थे। सूर ने तो इस निर्गुण को अग्रह्य बता कर सगुण उपासना का आश्रय लिया था। इस प्रकार धार्मिक व वैचारिक क्षेत्र मे तनातनी बढ रही थी। उस समय तुलसी ने राम नाम रुपी जहाज का सबल भवसागर पार करने को लिया। राम नाम के सम्बन्ध मे उन्होने जो बुद्धि सम्मत तर्क रामचरित मानस के बाल-काण्ड मे दिये हैं वे स्तुत्य हैं।

१ **कविता का प्राण**—राम नाम की वन्दना करते हुए तुलसी ने कहा है कि राम नाम कविता का प्राण है। बिना राम नाम के अच्छे कवियो की वाणी का आदर नही होता है और राम-नाम से युक्त गुण रहित कविता भी प्रशसा के योग्य हो जाती है—

"भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ।
राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥"

× × × ×

"सब गुन रहित कुकवि कृत बानी।
राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहि बुध ताही।
मधुकर सरिस संत गुण ग्राही॥"

२ **शिव द्वारा राम-नाम-स्मरण**—राम का नाम वेद-शास्त्रो का सार है, मगलदायक व अमगल विनाशक है और शिव-पार्वती इसका निरन्तर जप करते हैं—

"एहि महँ रघुपति नाम उदारा ।
अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मंगल भवन अमंगल हारी ।
उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥"

३ प्रभावशाली महामन्त्र—राम का नाम अत्यन्त प्रभावशाली है। केवल शिव-पार्वती ही नहीं, अन्य देवता भी इसके प्रभाव से परिचित हैं। यह वह महामन्त्र है, जिसके जपने से शिवजी काशी मे मरने वाले को मुक्ति प्रदान करने मे समर्थ हुये हैं और गणेश सर्वप्रथम पूजनीय बन गये हैं। इसका उलटा जप 'मरा' करने पर भी वाल्मीकि आदि कवि बन गये। पार्वती इसके जप से स्त्रियो में शिरोमणि हो गई और शिव द्वारा पीया गया जहर भी अमृत बन गया। वास्तव में यह ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप है।

"विधि हरि हर मय वेद प्रान सो ।
अगुन, अनूपम गुन निधान सो ॥

वर्णो मे महान-राम नाम के दोनो अक्षर मधुर और मनोहर हैं, वर्णमाला रूपी शरीर के नेत्र हैं। ये दोनो अक्षर बडी शोभा देते हैं, जिनमे से एक (रकार) छत्र रूप रत और दूसरा 'म' मुकुटमणि रूप से सब अक्षरो के ऊपर है—

"एक छत्रु एकु मुकुटमणि सब वरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुवर नाम के वरन विराजत दोउ ॥"

ब्रह्म के दो भेद—ब्रह्म के दो भेद हैं। प्रथम निर्गुण ब्रह्म और द्वितीय सगुण ब्रह्म। तुलसी के मत मे राम नाम निर्गुण व सगुण दोनो प्रकार के ब्रह्म से बडा है।

निर्गुण से बडा—राम नाम निर्गुण ब्रह्म से अधिक महान है। इसको जप कर योगी अनुपम, अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करते हैं। अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ये चारो प्रकार के भक्त राम-नाम का ही आधार लेकर चलते हैं। निर्गुण उस अग्नि के समान हैं जो काठ के अन्दर विद्यमान है परन्तु वह व्यापक होते हुए भी अर्थात समस्त प्राणियो के हृदय मे इसके विद्यमान रहने पर भी जगत के सब जीव दीन-दुखी हैं। नाम के यथार्थ स्वरूप

महिमा, रहस्य और प्रभाव को जानकर नाम का श्रद्धा पूर्वक जप करने से वही निर्गुण ब्रह्म ऐसे रत्न के जानने से उसका मूल्य–

"अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतन तें।
सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥"

इसीलिए तुलसी ने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि राम-नाम निर्गुण ब्रह्म से महान है–

"निरगुन तें एहि भाँति बड नाम प्रभाउ अपार।"

सगुण ब्रह्म से महान– राम नाम सगुण ब्रह्म से भी महान है। सगुण राम ने भक्तो के लिये मनुष्य शरीर धारण कर अनेक कष्ट सहन किये, परन्तु भक्त प्रेम के साथ नाम जप कर आनन्द और कल्याण के घर हो जाते हैं। सगुण राम ने एक तपस्वी की स्त्री अहिल्या का उद्धार किया, परन्तु नाम ने करोडो दुष्टो की बिगडी बुद्धि को सुधार दिया। राम ने स्वय शिव-धनुष तोडा जब कि उनका नाम ससार के समस्त भयो को दूर करने वाला है। राम ने तो शबरी, जटायु आदि उत्तम सेवको को ही मुक्ति दी, परन्तु नाम समस्त पापियो का उद्धार करने मे समर्थ है। राम ने बन्दरो व भालुओ की सहायता से समुद्र पार किया, जबकि नाम के स्मरण मात्र से ससार-समुद्र सूख जाता है। इसीलिए राम-नाम सगुण ब्रह्म से महान है।

"ब्रह्म राम तें नामु बड बर दायक बर दानि।
रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि॥"

कलिकाल मे महत्व– तुलसीदास ने यह और अधिक स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि चारो युगो में, तीनो कालों मे और तीनो लोको मे नाम को जप कर जीव शोक रहित हुए है परन्तु कलियुग मे तो सतयुग की भाँति ध्यान, त्रेता की भाँति यज्ञ और द्वापर की भाँति पूजन नही हो सकता इसलिए इस काल मे तो यह नाम कल्प वृक्ष है–

"नाम काम तरु काल कराला।"

कर्म भक्ति और ज्ञान के अभाव मे इस कलियुग मे रामनाम ही एक

आधार है। यह रामनाम नृसिंह है और कलियुग हिरण्यकश्यप और जप करने वाले प्रह्लाद के समान है।

समन्वय — तुलसी ने सगुण व निर्गुण ब्रह्म से राम-नाम को बड़ा बताया है और साथ ही यह भी कहा है कि निर्गुण और सगुण के बीच में नाम सुन्दर साक्षी है और दोनों का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है। इस प्रकार तुलसी ने समन्वय के माध्यम से राम नाम को आधार बना कर सगुण-निर्गुण में समन्वय स्थापित किया है —

"सगुन अगुन बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥"

उपसंहार — राम-नाम की महिमा अनन्त और अकथनीय है। इसका इसलिये, बुरे भाव से क्रोध से या आलस्य से किसी भी प्रकार स्मरण करने से दसों दिशाओं में कल्याण होता है —

"भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।"

इसीलिये तुलसी ने सांसारिक प्राणियों का उद्धार करने की दृष्टि से स्पष्ट कहा है —

प्रश्न—तुलसीदास ने 'बालकाण्ड' मे 'दुष्टों की प्रकृति' का जो चित्रण किया है उसको प्रकाश मे लाइये और यह भी लिखिये कि आप इस सम्बन्ध मे तुलसी से कहां तक सहमत या असहमत हैं । दोनो दशाओं मे अपने उत्तर की पुष्टि तुलसी कृत रामचरित मानस के बालकाण्ड से उद्धरण देकर कीजिये । (रा. वि १९६५ पूरक)

अथवा

बालकाण्ड के आधार पर संत-असंत के गुण-दोषों का विवेचन करते हुए 'सुधा सुरा सम साधु असाधु' को सोद्धरण स्पष्ट कीजिये ।

अथवा

बालकाण्ड के आधार पर सत्संगति के लाभों व कुसगति की हानियों का विवेचन कीजिये ।

उत्तर—गोस्वामी ने रामचरित मानस के प्रारम्भ मे गणेश, पार्वती, शिव, हनुमान, सीता, राम, ब्राह्मण, भक्त, कवि आदि अनेक देवी देवाताओ की वन्दना करते हुए उनसे 'राम-चरन-रति' की याचना की है और साथ ही परम्परानुसार सन्त वन्दना, दुष्ट वन्दना करते हुए इनकी सगति का प्रभाव भी स्पष्ट किया है ये समस्त वन्दना मे मगला चरण के अन्तर्गत आती हैं ।

संत-स्वभाव वर्णन–समस्त गुणो का भण्डार—सतो का समाज समस्त गुणो की खान है । उसको प्रणाम करते हुए तुलसी कहते हैं—

"सुजन समाज सकल गुन खानी ।
करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ।।"

तुलसी के मत मे सतो का चरित्र कपास के चरित्र के समान शुभ है, जिसके फल नीरस (विषयासक्ति), उज्ज्वल (अज्ञानान्धकार से रहित) गुणमय (गुणो का भण्डार) अर्थात तन्तु युक्त होते हैं । जिस प्रकार कपास का धागा सूई के छेद को अपना शरीर देकर ढक देता है या लोटे जाने, काते जाने और बुने जाने का कष्ट सहकर भी वस्त्रों के रुप मे दूसरों के गुप्त स्थानो को ढकता है, उसी प्रकार सत स्वय दु ख सह कर दूसरो के दोषों को ढकते हैं—

"जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा ।"

साक्षात तीर्थराज—सतो का समाज ससार मे चलता फिरता तीर्थराज

प्रयाग है और सब को हर्ष व मगल प्रदाता है इस में राम-भक्ति रूपी गंगा की धारा, ब्रह्मविचार रूपी सरस्वती, विधि निषेध युक्त कर्मों की कथा यमुना, भगवान् विष्णु और शिव की कथायें, त्रिवेणी हैं। धर्म मे अटल विश्वास अक्षय वट है और शुभ कर्मो का समाज तीर्थराज का समाज है। वह सगरीर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का दाता है—

"मुद मगलमय सत समाजू।

जो जग जगम तीरथ राजू ॥"

तात्कालिक फल प्रदाता—संतो का समाज तात्कालिक फल को देने वाला है। इससे कौवे कोयल बन जाते हैं और बगुले हसो का रूप धारण कर लेते हैं।

समता—संतो के पास हृदय मे समता-भाव होता है उनका न कोई मित्र होता है न शत्रु। वे तो शत्रु और मित्र के समान भाव से उपकारक होते हैं। सत सरल हृदय और ससार के हितैषी होते हैं।

"वंदउँ सत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।"

× × × ×

"सत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।"

विशाल हृदय और गुणग्राहक—सतो का स्वभाव समुद्र की भाँति होता है जो चन्द्रमा के पूर को देखकर उमड़ता है और साथ ही वे भौंरे की भाति गुणग्राहक होते हैं—

"सज्जन सकृत सिंधु सम कोई।

देखि पूर बिधु बाढइ जोई ॥" (बाल. चौ ८)

× × × ×

"मधुकर सरिस सत गुन ग्राही।" (बाल. चौ १०)

दुष्ट-स्वभाव-वर्णन

अहितकारी— तुलसीदास जी ने दुष्टों को भी प्रणाम किया है। बिना कारण भला करने वाले व्यक्ति का भी दुष्ट अहित करते हैं। दूसरो के हित मे बाधा डालना ही उनकी दृष्टि मे लाभ है-दूसरो का बुरा करने से उन्हें प्रसन्नता और दूसरों को लाभ पहुँचाने मे उन्हें दु:ख होता है। वे विष्णु और

महादेव के यशरूपी चन्द्रमा के लिये राहु की भाति होते हैं । वे अकारण दूसरो का अहित करते हैं—

"जे विनु काज दाहिनेहु वाए ।"

परनिन्दक व परछिद्र दर्शन—दुष्ट दूसरों की निन्दा करने में सहस्रबाहु के समान वीर होते हैं । वे दोषो को हजार आखो से देखते हैं । वे दूसरो को जलाने मे अग्नि और क्रोध मे यमराज के समान होते हैं । पाप और अवगुण रूपी धन मे जो कुवेर के समान धनवान हैं, उनकी वृद्धि सबके हित-नाश के लिये धूम्रकेतु के समान हैं और जिनका कुम्भकरण की भाति सोते रहना ही अच्छा है । ओलो की भाति वे दूसरों का काम विगाडने के लिये अपना शरीर तक त्याग देते हैं—

"पर अकाजु लगि तनु परिहरहिं ।
जिमि हिम उपल कृपी दली गरही ॥"

कठोर भाषी—दुष्ट कठोर भाषी होते हैं । वे शेषनाग के हजारो मुखो से दूसरो के दोषो का क्रोध पूर्वक वर्णन करते हैं । पृथु के दस हजार कानो से पर निन्दा सुनते हैं । उनको सुरा अच्छी लगती है, कठोर वचन रूपी वज्र उनका प्यारा है और वे हजार आखो से दूसरो के दोषो को देखते हैं—

"बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही ।
सतत सुरानीक हित जेही ॥
वचन वज्र जेहि सदा पियारा ।
सहस नयन पर दोष निहारा ॥"

द्वेष—दुष्ट का स्वभाव द्वेषी होता है । वह अपने शत्रुओ से तो द्वेष रखता ही है, परन्तु साथ ही मित्र और उदासीन व्यक्तियो के हित की बात सुनकर भी उसे कष्ट होता है—

"उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति ।"

सत्सगति व कुसगति—सत, साधु व सज्जनो की सगति सत्सगति है और दुष्टो की सगति कुसगति है । ब्रह्मा ने अच्छे और बुरे सब उत्पन्न किये है, पर गुण और दोषो का विचार करके वेदो ने उनको अलग-अलग कर दिया । सत्सगति से पर दु ख कातरता आती और कुसगति से अवगुण ।

मिट्टी हवा के साथ से आकाश में चढ़ जाती है और नीच जल की संगति से कीचड़ में मिल जाती है। साधु के घर के तोता मैना राम का स्मरण करते हैं और असाधु के राम को गालियां देते हैं। कुसंग से धुआं कालिख होता है और वही सुसंग से स्याही होकर पुराण लिखने के काम में आता है। वही धुआं जल, अग्नि और हवा के संग से बादल का रूप धारण करके जगत को जीवन देने वाला हो जाता है—

"धूम कुसंगति कारिख होई।
लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोई जल अनल अनिल संघाता।
होइ जलद जग जीवन दाता॥" -(चौ. ७)

कुसंग से हानी व सुसंग से लाभ—कुसंगती से हानी होतीहै और सुसंगती से लाभ। दुष्ट कभी-कभी सत्संगति पाकर भलाई करते हैं,परन्तु उनका अखण्ड मलिन स्वभाव नहीं मिटता है। ठगों को सुन्दर वेष में देखकर संसार उनको पूजता है, परन्तु अन्त में कालनेमि, रावण और राहु की भांति उनका कपट प्रकट हो जाता है। साधु व्यक्ति यदि असुन्दर वेष भी धारण करते हैं तो भी जामवन्त और हनुमान की भांति उनकी पूजा होती है। यह बात लोक और वेदों में प्रसिद्ध है कि कुसंगती से हानि होती है और सुसंगती से लाभ।

'उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥
किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवन्त हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेदबिदित सब काहू॥'

वास्तव में जिस प्रकार अमृत और मदिरा दोनों को उत्पन्न करने वाला पिता सागर ही है परन्तु साधु अमृत के समान उपकार और असाधु मदिरा की भांति अपकारक होते हैं—

"सुधा सुरा सम साधु असाधू॥"

प्रश्न—रामचरितमानस की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

"रामचरितमानस" उत्तरी भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रंथ है। इस कथन का प्रतिपादन कीजिये।

अथवा

ग्रंथरत्न रामचरितमानस के गुणों पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डालिये।

उत्तर—आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा में रामायण नामक महाकाव्य की रचना की जिसका अवतरण गोस्वामी तुलसीदास जी ने हिन्दी भाषा में किया और उस महाकाव्य का नाम रामचरितमानस रखा। रामचरित मानस में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का वर्णन किया गया है। गोस्वामी जी ने रामायण की रचना क्यों की इसका उत्तर हमें प्रथम सोपान में ही मिल जाता है—

" स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथ—
भाषा निबन्ध मति मंजुल मात नोति।"

लोक पक्ष व आत्म पक्ष का समन्वय—तुलसीदासजी ने रामायण की रचना स्वान्त. सुखाय तथा परिजन हिताय की है। वे अपनी तथा दूसरों की आत्मा को शान्ति प्रदान करना चाहते थे मध्य युग मे भारत की सभी जातियो का जीवन नैराश्यपूर्ण था। वर्णाश्रम धर्म मर्यादा आदि का भी लोप हुआ जा रहा था लोगो की आस्था किसी एक धर्म पर ही नही टिकती थी। समाज का सगठन अन्धविश्वासो तथा अस्थिर प्रवृत्ति के थपेडो के कारण चूर-चूर हुआ जा रहा था ऐसे समय मे तुलसीदासजी का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दू समाज तथा आर्य संस्कृति व धर्म की दुर्धर्ष दुर्दशा का चरित्र देखकर गोस्वामी जी का हृदय चित्कार उठा वे अपने पर नियन्त्रण नही रख सके तथा हिन्दु संस्कृति को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए उन्होंने रामायण की रचना की चुनौती स्वीकार की। अत रामायण की रचना का मुख्य उद्देश्य हिन्दू धर्म समाज आर्य संस्कृति को अध पतन के गर्त मे जाने से रोकना था। हिन्दू जाति को अवनति व नैराश्य के अधकूप मे से निकालकर उसको सन्मार्ग पर प्रेरित करना था। अब हमें यह देखना है कि रामायण अपने उद्देश्य मे कहाँ तक सफल हुई है!

लोक प्रियता के कारण—हिन्दुजाति व आर्य धर्म की रक्षा के लिए ही गोस्वामीजी ने रामायण की रचना की। आज भारत के कोने-कोने से रामायण की लोकप्रियता टपकती मिलती है। रामायण प्रत्येक हिन्दु के घर में पाई जाती है। इसी से हम रामायण की लोकप्रियता का अनुमान कर सकते हैं।

रामायण हिन्दु जनता का इतना सर्व प्रियग्रन्थ है कि वे इसकी पूजा करते हैं। इस लोकप्रियता के कुछ कारण है प्रथमतः तुलसीदासजी ने भक्त कवि होने के नाते अपने ग्रन्थ मे भी भक्ति का परिचय दिया है अतः मध्य कालीन धर्मावलम्बियो को एक सहारा मिल गया है। यह सहारा मर्यादा पुरषोत्तम राम थे जिनका प्रभाव हिन्दु जनता पर पुनः स्थापित हुआ। लोक प्रियता का दूसरा कारण यह है की रामायण की रचना सस्कृत के बजाय हिन्दी (अवधी) व जायसी की शैली दोहा–चोपाई मे की थी अतः शैली व भाषा सरल व सरस होने की वजह से इसने साधारण लोगों के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया है। वास्तव मे अभिव्यक्ति मे जितनी सरलता होती है उद्देश्य मे उतनी ही पूर्णता आ जाती है। तुलसी की समन्वय शक्ती बहुत बडी चटी थी। उसी के बल पर रामचरित मानस लोक प्रिय हुई है।

लोकप्रियता का तीसरा कारण यह था कि तुलसीदास जी ने शैवों शाक्तो वैष्णवों आदि के झगडो को मिटाकर शुद्ध वैष्णव मत का प्रतिपादन किया तथा सामाजिक व राजनैतिक शिक्षाएँ दी इन सभी बातों के होने से रामायण की लोकप्रियता दिनोदिन बढती ही चली गई।

शिक्षा व संस्कृति का आधार—रामायण ने हमें अनेक शिक्षाएँ मिलती हैं। रामायण ने हिन्दू समाज की उजडी हुई व्यवस्था को पुनः स्थापित किया। रामायण ने समाज के लिए वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार किया। समाज में चारोवर्ग–ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, और शूद्र होने आवश्यक हैं तथा चारों आश्रमो, ब्रह्मचर्य ग्रहस्थ व वानप्रस्थ, व सन्यास से ही समाज की स्थिति व नींव मजबूत रह सकती है। समाज में स्त्रियों को पुरुषो के अधीन रहकर ग्रहस्थी चलाने की तथा शूद्रो के लिए अन्यवर्गो की सेवा करने कार्य रामायण मे मिलता है। समाज मे बडो के आदर सम्मान भ्रातृत्व प्रेम वात्सल्य, वीरोचित श्रद्धा व पारस्परिक एकता की शिक्षा हमें रामायण से ही मिलती है। जिस प्रकार पुत्री का पिता पुत्री के घर भोजन नही करता उसी प्रकार जनक भी चित्रकूट मे रामचन्द्र के यहाँ भोजन करना उचित नही समझते। इससे हमें आदर्श सामाजिकता की शिक्षा मिलती है।

आर्य धर्म का उद्घोष—

धर्म सम्बन्धी शिक्षा तो रामायण में खूब दी गई है रामायण के

प्रादुर्भाव के समय भारत मे मुसलमानों का आधिपत्य पूर्णरूप से स्थापित हो जाने पर हिन्दुओं के हृदय मे गौरव और आत्म स्वाभीमान के भाव नही रह गये थे। कट्टर और धार्मिक असहिष्णु मुसलमान हिन्दूधर्म पर आपेक्षा करते थे और अत्याचार करते थे और पराधीन हिन्दू दीन बने हुए सब कुछ सहन कर लेते थे। हिन्दू लोग हर समय आठ-आठ आसू रोते रहते थे। उनके आसुओ को पोछने वाला व हिन्दू रूपी गजका मुसलमान रूपी ग्राह से उद्धार करने वाला विष्णु कोई प्रकट नही हो रहा था एसे समय मे तुलसीदासजी ने जन्म लिया व रामायण की रचना कर के हिन्दुधर्म के पैर मजबूत किये। शैवो शाक्तो व वैष्णवो मे फैले धार्मिक कटुता के अड्डो को समाप्त किया तथा सूफी कवियो नाथ पथियो तथा निर्गुण विचार धाराओ वाले व्यक्तियो के धार्मिक उपदेशो का खण्डन करके सगुण भक्ति की तरफ आकर्षित किया। रामायण में आर्य धर्म की सर्वोच्चता को प्रदर्शित किया और उनके त्राता को राम के रूप मे ला खड़ा किया। यही कारण है कि हमें आज राम नाम का बोलवाला सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। यहा तक की हम अभिवादन प्रणाली मे भी राम नाम का उच्चारण करते हैं।

राजा- प्रजा-सम्बन्ध—रामायण हमे राजनैतिक शिक्षा प्रदान करती है। एक राजा का अपनी प्रजा के प्रति क्या कर्त्तव्य होना चाहिये-इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमे रामायण मे देखने को मिलता है। किस प्रकार एक राजा अपनी प्रजा की रक्षा, सुरक्षा व सुख समृद्धि का खयाल रखता है। एव स्वय वीतराग सन्यासियो (वसिष्ठादि) द्वारा नियन्त्रित होता है तथा राजा सच्चरित्र प्रजा-पालक हो-इसकी शिक्षा हमे रामायण से मिलती है। सचिव-सेवक, राज्यकर्मचारी आदि का सेवा भाव विभीषण की राजनीति दूत को दंड नही देना आदि शिक्षाएँ हमे रामायण से ही मिलती हैं।

आदर्श महापुरुष – चरित्र नायक – गोस्वामी जी ने अपने महाकाव्य मे जनता को आचरण नीति व मर्यादा का पाठ पढाया है गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को अपने महाकाव्य का नायक माना है जो कृपा, सुशीलता, नम्रता, उदारता, कृतज्ञता, सत्यता, धीरता व गम्भीरता के आधार थे। गोस्वामी जी ने साधारण जनता के हृदयो के कलुषो को राम के स्वच्छ व निर्मल चरित्र द्वारा धुलवाया है। राम ने सुग्रीव पर कृपा की, परशुराम जी के सामने नम्र वचन कहे। मर्यादा के अनुसार सीता की अग्नि परीक्षा ली व

रावण के गृह निवास का झूठा दोषारोपण किया। बालिवध-सीता वनवास, साधुसेवा शिवजी का काकभुशुण्डि को शाप, सीता के वियोग में धैर्य रखना समुद्र से रास्ता देने की अनुनय विनय करना उनकी गम्भीरता व धीरता के परिचायक हैं। किस प्रकार राम जी ने वन के दुखो को सहा, अपनी वीरता से पापी राजाओं का वध किया, केवट, अहिल्या आदि को भव-सागर से पार किया, शुद्र भीलो को अपनाया, व पवन सुत के प्रति कृतज्ञता स्वीकार की और विभीषण पर कृपा कर उनको अपनाया आदि उनके धीरता वीरता, नम्रता के उदाहरण हैं। भाई लक्ष्मण शत्रुघ्न और भरत के साथ व्यवहार, माता-पिता का आज्ञापालन आदि देखने लायक हैं। राम की पत्नी सीता प्रति व्रत-धर्म की रक्षिका हैं तो पिता दशरथ सत्यव्रत-धर्म की साक्षात् प्रति मूर्ति।

उपसहार—उपर्युक्त विवेचन के पढने से यह परिलक्षित होता है कि रामायण ने हिन्दु जाति को नैतिक धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आदि सभी क्षत्रो मे शिक्षाएँ दी हैं उसने अपने आदर्शो का प्रतिपादन करके हिन्दु जाति की सब तरह से रक्षा की है। उसके पढने से न मालूम कितने ही व्यक्ति सुधर कर सन्मार्ग चलने लगे हैं। कितने व्यक्तियो ने आदर्श जीवन को अपनालिया है और कितने ही वितरागों से अपने वास्तविक आधार को प्राप्त कर लिया है इस प्रकार आज हम देखते है कि रामायण की लोकप्रियता न केवल हिन्दुओ मे ही बल्कि देश-विदेश में भी बढ़ी है। आज इस धर्म ग्रंथ के कारण भारत का नाम गर्व से लिया जाता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि रामायण भारत की बाईबिल है जिसने हिन्दू सस्कृति का उद्धार किया है किसी ने ठीक ही कहा है—

" भारी भवसागर – उतारतो कवन पार
जोपे यह रामायण तुलसी न गावतो।"

संकेत

(१) कथा का नानापुराण निगमागम सम्मत होना।
(२) लोकपक्ष व आत्म पक्ष का समन्वय।
(३) लोक प्रियता के कारण–(१) भक्ति ग्रंथ (२) सरल भाषा (३) शिक्षाप्रद।

(४) शिक्षायें – (क) सामाजिक (ख) धार्मिक (ग) राजनीतिक (घ) आचरण व नीति सम्बधी ।

(५) आदर्श पुरुष – शक्ति, शील, सौन्दर्य सम्पन्न महापुरुष का चरित्र, समन्वय शक्ति ।

प्रश्न—'बालकाण्ड' के आधार पर तुलसी काव्य-कौशल की विशेषताओ का उल्लेख कीजिये । (रा० वि० १९६९ पूरक)

अथवा

बालकाण्ड के भावपक्ष और कालपक्ष पर विचार कीजिये ।

अथवा

"तुलसीदास रससिद्ध कवीश्वर थे ।"—इस कथन का समर्थन बाल काण्ड के उदाहरणों द्वारा कीजिये ।

अथवा

'बालकाण्ड' की काव्य-कला का विवेचन कीजिये ।

उत्तर—

काव्य का भावपक्ष—काव्य मानव भावनाओ की सरस व सुन्दर अभिव्यक्ति है । भावनाओ की सरसता अपनी प्रभविष्णुता से काव्य मे रस-रूप धारण कर लेती हैं और जब स्थायीभाव विभाव अनुभाव और सचारी भावो के सयोग से अभिव्यक्त होते हैं, तब इसकी निष्पत्ति होती है । यही भाव जब इस दशा तक पहुँच जाते हैं, तब काव्य मे आनन्द प्रदायिनी शक्ति का समावेश हो जाता है । काव्य का यही भावपक्ष होता है ।

कलापक्ष—

काव्य के कला पक्ष के अन्तर्गत भावो की सुन्दर रूप से अभिव्यक्ति होती है अर्थात् अभिव्यक्ति पक्ष को ही कलापक्ष कहा जाता है । इसमे भाषा, शैली, अलकार, छद, प्रकृति चित्रणा व अन्य काव्यागो के निरूपण से काव्य की सुन्दरता बढती है ।

काव्य के दो पक्ष है—(१) भाव पक्ष (२) कलापक्ष । भावपक्ष और कला पक्ष की पूर्णता ही किसी कवि को 'रस-सिद्ध' अभिधा देने का आधार है । यही वह आधार है जो कवि के काव्य-कौशल या उसकी काव्य-कला से

सम्बधित है। तुलसीदास रस सिद्ध कवीश्वर थे। उनका भावपक्ष व कलापक्ष व दोनो पर समान अधिकार था।

बालकाण्ड का भावपक्ष—

भक्ति रस—तुलसी भक्त कवि थे। उनके हृदय मे राम भक्ति का अथाह सागर लहराता था। उसी सागर की लहरो की प्रचण्डता ने रामचरित मानस का निर्माण किया। रामचरित मानस मे सम्पूर्ण रसों की आनन्ददायिनी धारायें प्रवाहित हैं। सहृदय रसिक किसी भी धारा मे डुबकी लगाकर रसास्वादन कर सकते हैं। 'बालकाण्ड' इसका प्रथम सर्ग है जिसमे मंगलाचरण, सगुण निर्गुण भेद, राम-नाम महिमा, राम कथा महात्म्य एव अवतार के अनेक हेतुओ पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु इसके अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है उनकी समस्त मनोवृत्तिया रामाभिमुख होकर मुखर हो गई और उन्होंने यह रूप धारण कर लिया। बालकाण्ड मे भक्ति की प्रधानता है परतु बीच-बीच में हास्य, करुण, भयानक आदि रसो के प्रसग भी आ गये हैं।

कविता-सौन्दर्य—तुलसीदास ने यद्यपि "स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबधमति-मञ्जुलमातनोति" कहा है परतु फिर भी उनकी दृष्टि मे सफल काव्य सुर-सरिता की भाँति सबका हितसाधन करता है और कवि हृदय से निकल कर उसकी भावधारा सहृदय पाठको को आनन्दित करती है—

"मणि माणिक मुकुता-छवि जैसी।
अहि-गिरि-गज सिर सोहत तैसी॥
नृप किरीट तरुनी-तन पाइ।
लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं।
उपजहिं अनत छवि लहहिं॥"

रस-समन्वय—बालकाण्ड की कविता-गगा भक्तिरस से प्रारम्भ होकर शृंगार, वात्सल्य, वीर, रौद्र, अद्भुतहास्य आदि विभिन्न धाराओ से समन्वित होकर अलौकिक आल्हाद दामिनी हो गई है। शिव-विवाह प्रसग और नारदमोह प्रसग मे हस्य और अदभुत रस की सुन्दर निस्पत्ति हुई है—

"देखि सिवहिं सुर-त्रिय मुसकाहीं।
बर लायक दुलहि नि जग नाहीं ॥"

× × × ×

मन हि मन महेस मुसकाहीं।
हरि के ब्यंग बचन नहीं जाहीं ॥"

कलापक्ष—

भाषा—तुलसी का कलापक्ष भी भावपक्ष की भाँति ही समुन्नत और महान् है। भावाभिव्यक्ति को सरलता और सफलता के उद्देश्य से संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होते हुये भी तुलसी दास ने देव वाणी की ममता को त्याग कर लोक भाषा को अपनाया। इसीलिए राजा से रंक तक उनके ग्रंथ-रत्न को समझ सके। उन्होंने लोक भाषा अवधी को परिमार्जित कर उसे साहित्यिक रूप प्रदान किया और साथ ही संस्कृत की कोमल कान्त पदावली का समावेश कर उसमे माधुर्य का आदान कर दिया। श्री गुलाबराय जी ने तुलसी की भाषा के सम्बन्ध मे कहा है–"तुलसी ने भाषा की शक्तियों का पूर्ण उपयोग कर उसमे गति और शक्ति दोनो उत्पन्न कर दी है। वह हमारे हृदय को स्पर्श कर उनका संदेश हम तक पहुँचाने में समर्थ होती है"।—वास्तव मे तुलसी की भाषा मधुर, प्रवाह पूर्ण, शक्ति पूर्ण और प्रभावशाली है, वह प्रसंग व रस का अनुवर्तन करती है।

शैली व छन्द –तुलसीदास जी ने उस समय की प्रचलित समस्त शैलियों मे रचना की थी। बालकाण्ड मे संस्कृत के वर्ण-वृत्तों से लेकर दोहा, चौपाई, सोरठा, छन्द, आदि छन्दो का सुन्दर प्रयोग है। तुलसी ने जिस शैली को अपनाया उसे ही उन्होंने अपने पारस-स्पर्श से चमका दिया। सरलता, स्वाभाविकता व विदग्धता आदि शैली के गुण हैं।

अलंकार—तुलसीदास केशव की भाँति "भूषण बिनुन राजही, कविता वनिता वित्त"—को स्वीकार नहीं करते थे। उनकी रचनाओं में अलंकारों की भरमार है, परन्तु उसने कविता-कामिनी का सौन्दर्य निखरा ही है, क्योंकि उनके अलंकार प्रयत्न प्रसूत न होकर स्वभाविक हैं। वर्णन की विदग्धता ने उनकी मूर्द्धन्य प्रतिभा मे अलंकारों के स्वाभाविक व सफल प्रयोग

ने सहायता दी है। प० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के अनुसार उनकी उपमाओ की श्रेष्ठता देखिये—

"रामचरित मानस की कोई चौपाई भले ही विना उपमा की मिल जाय, किन्तु उनका कोई पृष्ठ कठिनता से ऐसा मिलेगा, जिसमे किसी सुन्दर उपमा का प्रयोग न हो। उपमाएँ भी अमूल्य रत्न राशि हैं।"

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक, लाटानुप्रास, श्लेष, वक्रोक्ति, निदर्शना, यथाक्रम आदि अनेक अलकारो को उन्होने एक कुशल कलाकार की भाँति सरलता से उठाकर काव्य मे रख दिये हैं। उनका रत्नना नन्ददास के जड़ने से कितना ही श्रेष्ठ है। जिस प्रकार तुलसीदास भावो के शुष्क मनोवैज्ञानिक विश्लेषक ही न थे, वरन उन्होंने हलके और गहरे रूपो को एक दूसरे के साथ संश्लिष्टावस्था मे देखा था। उसी प्रकार वे अलंकारों के काव्यशास्त्रीय अध्ययन तक ही सीमित न रह कर, परम्परा से मुक्त अनेक नवीन उपमानो को उद्भावना करने मे समर्थ हुए हैं जिससे रसनिष्पति मे सहायता पहुँची है।

प्रबंध पटुता व अन्य—तुलसीदास की रामचरित मानस एक सफल प्रबंध काव्य है। आचार्य राम शुक्ला के अनुसार तुलसी सफल प्रबंधकार हैं क्यों कि प्रबधकार की पूर्ण भावुकता इसी मे है कि वह कथा के मार्मिक स्थलो की पहचान करे और उनका विशद वर्णन करे। तुलसी मे यह प्रतिभा थी। साथ ही तुलसी ने प्रकृति का आलम्बन, उद्दीपन तथा शिक्षाप्रद रूप में चित्रण किया है। चित्रात्मक वर्णन के तो वे धनी थे। कथा मे होने वाले गुण जैसे—सम्बन्ध निर्वाह, भावी सूचना, नाटकीय संधियां आदि बालकाण्ड मे विद्यमान हैं।

इस प्रकार यह कहा जासकता है कि बालकाण्ड में तुलसी काव्य-कला के दोनो पक्षो के मूर्द्धन्य स्थान पर आसीन हैं। उनके काव्य मे भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है। अनुभूति प्रवणता, भावुकता, रस परिपाक, भाषा सौन्दर्य, अलकार योजना, प्रबध-पटुता, वर्णन कौशल, अद्भुत चरित्र-चित्रण क्षमता आदि सभी साहित्यिक दृष्टि कोणो से यह का चरम उत्कर्ष पर पहुच गया है। उद्देश्य की महानता ने तो इसे जन-जन के गले का हार बना दिया है जिसे देखकर हरिऔधजी ने कहा था—

कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।"

अवश्य ही तुलसी जैसी कलात्मक प्रतिमा का धनी पाकर कविता हुलसी होगी। ऐसे तुलसी की सर्वश्रेष्ठ रचना रामचरित मानस का आदि काण्ड बाल काण्ड है—

"बालकाण्ड का आदि, अयोध्या काण्ड का मध्य और उत्तर काण्ड का अन्त—इसको जो भली भांति समझे, सो संत" परन्तु इस कथन के अनुसार बालकाण्ड का आदि-भाग विशेष प्रशंसनीय है। अयोध्याकाण्ड तो मानस का मेरुदण्ड है और उत्तरकाण्ड दर्शनिक विचारो से परिपूर्ण है, परन्तु 'बालकाण्ड' राम-चरित-मानस लिखने व राम के अवतार लेने के हेतुओ पर प्रकाश डालता है और साथ ही संत-असंत वर्णन, राम कथा महत्व, सगुण-निर्गुण भेद व दोनो से राम-नाम की महानता के प्रतिपादन से रामचरित मानस की आधार शिला है। 'मानस रूपक' के कारण इसके नाम का औचित्य सिद्ध होता है और शिव-विष्णु समन्वय व शैली समन्वय से इसके दृष्टिकोण की उदारता प्रकट होती है। वास्तव मे, बालकाण्ड का काव्य-सौन्दर्य पाठको को अभिभूत कर अलौकिक आनन्द प्रदान करने मे पूर्ण समर्थ है।

प्रश्न—प्रबंध काव्य की दृष्टि से 'रामचरित मानस' और 'रामचन्द्रिका' की तुलना कीजिये।

अथवा

"पूर्ण भावुक वही है जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्म स्पर्शी अगं अंग का साक्षात्कार कर सके श्रोता या पाठक के समक्ष अपनी शब्द-शक्ति से प्रत्यक्ष कर सके। हिन्दी के कवियों मे ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामी जी मे ही है।"—इस कथन की व्याख्या कीजिये।

अथवा

प्रबंधकवि की दृष्टि से तुलसी और केशव की तुलनात्मक आलोचना कीजिये।

अथवा

"तुलसी ने जीवन की विविध परिस्थितियों का जैसा वर्णन किया

है, वैसा केशव ने नहीं। उनके द्वारा वर्णित जीवन में जीवन की बहुत थोड़ी दशाओं का समावेश हुआ है।" – इस कथन के अनुसार तुलसी और केशव की तुलना कीजिये।

उत्तर – तुलसी और केशव ने क्रमश: 'रामचरित मानस' और 'रामचन्द्रिका' नामक प्रबंध काव्यों की रचना की है। प्रबंध काव्य के तत्वों में वस्तु, नेता, रस, मार्मिक स्थलों की पहचान, प्रबन्धत्व व स्थानगत दृश्यों की विशेषता आदि प्रधान हैं। प्रबंध काव्य के इन तत्वों की दृष्टि से जब हम रामचरित मानस और रामचन्द्रिका की प्रबन्ध कल्पना पर विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन समकालीन दोनों कवियों की काव्य–साधना में महान् अन्तर है। परिस्थितियाँ, दृष्टिकोण एवं उद्देश्य आदि भिन्नता ही इनकी काव्य–साधना की भिन्नता के हेतु हैं।

कथावस्तु – 'रामचरित मानस' व 'रामचन्द्रिका' दोनों की कथावस्तु मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण है। परन्तु तुलसी पहले भक्त थे और फिर कवि तथा केशव दरबारी व चमत्कार प्रिय कवि थे। इसीलिए कथा प्रसंगों में अन्तर आगया है। तुलसी ने मर्यादा की रक्षा के लिये परशुराम का आगमन शिव धनुष टूटने के तत्काल पश्चात् ही बताया है परन्तु केशव ने बरात रवाना होने के बाद मार्ग में। तुलसी ने ग्रंथ की रचना के प्रारम्भ में अपना उद्देश्य "स्वान्तः सुखाय" बताया है जबकि केशव ने "रामचंद्र की चन्द्रिका बरनत हौं बहुछन्द" कहकर रामकथा को गौण कर दिया एवं बहुत से छन्दों के निरूपण को प्रधान लक्ष्य बना लिया।

नेता व रस – दोनों काव्यों के नेता 'राम' ही हैं, परन्तु दोनों के रूपों में महान अन्तर है। राम का ईश्वरीय अवतार केशव में गौण हो गया। तुलसी ने नौ रसों की सम्यक् व्यंजना की है। उनके काव्य में रस–सृष्टि स्वतः हो जाती है जबकि केशव उसके लिए प्रयत्नशील से जान पड़ते हैं। केशव क्योंकि सब रसों का पर्यवसान शृंगार में ही मानते थे और उनकी प्रकृति भी शृंगार प्रिय थी, उन्होंने शृंगार को ही अधिक महत्व दिया। परन्तु तुलसी ने सब रसों को अपना कर उनको यथा स्थान चित्रित किया। रस–व्यंजना में भी केशव चमत्कार प्रियता का त्याग न कर सके, इससे रचनाओं में कहीं–कहीं 'रसाभास' होने लगता है।

मार्मिक स्थलों का वर्णन – प्रबंधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता इस बात से चलता है कि वह कथा के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान पाता है या नही। रामकथा मे कई मर्मस्थल हैं, जिनमे से निम्नलिखित हैं –

(१) राम का अयोध्या त्याग।
(२) पथिक रूप में राम–सीता–लक्ष्मण का वन गमन।
(३) चित्रकूट मे राम–भरत मिलन।
(४) शबरी का आतिथ्य।
(५) लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम–विलाप।
(६) भरत की प्रतीक्षा

इन सभी प्रसगो का बड़े विस्तार एव हृदय द्रावक रूप मे तुलसी ने वर्णन किया है। परन्तु केशव इनमे से कई प्र सगो को चलता सा कर गये हैं। पथिक रूप मे राम सीता और लक्ष्मण का वन गमन कितना करुणा पूर्ण प्रसग है जिसके लिए तुलसी ने कई पृष्ठ रगे है, परन्तु केशव ने तो एक छन्द में ही इसकी इति श्री कर दी है। इसी प्रकार केशव द्वारा वर्णित लक्ष्मण मूर्च्छा प्रसग भी उतना भाव विभोर नही करता है जितना तुलसी द्वारा वर्णित प्रसग। केशव ने लिखा है –

"लक्ष्मण राम नही अवलोक्यो,
नैनन ते न रह्यो जल रोक्यो।
वारक लक्ष्मण मोहि विलोकी,
मोकहँ प्राण चले तजि रो की।
हौ सुमिरौ गुन केतिक तेरे,
सोदर पुत्र सहायक मेरे।
बोलि उठो प्रभु को पन पारो,
नातरु होत है मो मुख कारो॥'

इतना पढने पर भी वह करुणा पूर्ण स्थिति नही बनती है जो तुलसी के इन पक्तियो से व्यजित है –

"जैहो, अवध कौन मुख लाई।
नारि हेतु प्रिय बंधु गँवाई॥"

यह है भ्रातृत्व प्रेम, मर्यादा, विषाद, निराशा व आत्मग्लानि का सश्लिष्ट चित्रण।

जीवन की प्रत्येक स्थिति का चित्रण – मानव प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ हृदय का जैसा रागात्मक सामजस्य तुलसी मे दिखाई देता है, वह अन्य किसी मे नही। मानव सम्बधों की कोमलता पर तुलसी ने केशव से अधिक ध्यान दिया है। मुद्रिका प्रसग इसका प्रमाण है। आचार्य शुक्ल जी का यह कथन है –

"केशव को कवि का हृदय नही मिला था। उनमे वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिये। वे सस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पाडित्य और रचना कौशल की धाक जमाना चाहते थे पर इस कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिये भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हे प्राप्त न था।

अन्य – केशव का कला पक्ष के प्रति अधिक आकर्षण था। छन्द-योजना, अलकार-योजना, उक्ति वैचित्र्य, वाग्विदग्धता एव सवाद सौष्ठव मे वे तुलसी से कुछ आगे प्रतीत होते हैं। परन्तु साथ ही उनकी रचना में हृदय-हीनता है, भावुकता का अभाव है, तल्लीनता की स्थिति नही है अर्थात भावात्मक या अनुभूति पक्ष दुर्बल है, अतः उनका काव्य 'मानस' के समकक्ष नहीं है। वे तो 'कठिन काव्य के प्रेत थे चमत्कार और पाडित्य प्रदर्शन उनकी रुचि थी और साथ ही दरबारी कवि होने से आश्रयदाता के मुखापेक्षी थे। दूसरी ओर तुलसी भावुक भक्त थे, जीवन की विविध परिस्थितियो का उन्हें ज्ञान था, आदर्श प्रतिष्ठापन मे उनकी रुचि थी और मार्मिक प्रसगों की उन्हें पूरी पहचान थी। अत. प्रबधत्व की दृष्टि से रामचरित मानस दिवस निशा प्रकाशित रहने वाला सर्वोत्तम रत्न है जबकि रामचन्द्रिका कीटानुविद्ध रत्न है।

प्रश्न—"हमारा कवि मूल कथानक अध्यात्म रामायण और वाल्मीकि रामायण से लेकर उसकी रूपरेखा का अनुमान करते हुये उससे बहुत कम हटता है। फिर भी जब कभी और जहां कहीं वह हटता है वहाँ वह प्राय. कलात्मकता प्रदर्शित करता है।" —इस कथन की समीक्षा उदाहरण सहित कीजिये।

अथवा

रामचरित मानस' के कथानक के आधार ग्रंथ कौन कौन से हैं ? उनका मानस पर किस रूप में प्रभाव पड़ा ? स्पष्ट कीजिये ।

अथवा

"नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद् ।
रामायणे निगदितं क्वचिदन्य तोऽपि ।'

तुलसी की इस उक्ति पर प्रकाश डालिये ।

उत्तर—रामचरित मानस का कथानक सम्पूर्ण जीवन की विविध परिस्थितियो को अपने कलेवर मे समेटे हुए, उसके रचयिता को लोकनायक की पदवी से विभूषित करने मे समर्थ है । इस ग्रंथ रत्न की रचना मे तुलसी ने उस समय तक काव्यो और नाटकों मे प्रचलित रामकथा को आधार बनाया परन्तु उन्होंने उन आधारो का अधानुकरण नही किया वरन् अपनी समन्वयात्मक प्रतिभा के बल पर उनमे नवीन प्रसगो एव तथ्यो की उद्भावना कर इस ग्रंथ की लोकोपयोगिता में चार चाद लगा दिये । आदि कवि वाल्मीकि का हृदय-समुद्र जब क्रौंच मिथुन के वध को देख कर करुणा-रूप में उमडा था और उन्होंने रामायण की रचना की थी, तब से रामकथा का प्रारम्भ हुआ और बाद मे अनेक काव्यो व नाटको मे इस कथा को आधार बनाया गया । तुलसी तक पहुँचते-पहुँचते ये ग्रंथ सस्कृत भाषा की ममता को न छोड़ पाये थे । तुलसी ने इस ममता का त्याग कर रामचरित मानस की रचना अनेक पुराण, वेद, शास्त्र, वाल्मीकि रामायण व अन्य अर्थात प्रसन्नराघव, हनुमाननाटक, अध्यात्म रामायण, रघुवश, कुमार सम्भव, उत्तर रामचरित नाटक आदि को आधार बना कर की । परन्तु विशेषता यह है कि इन समस्त आधार ग्रंथो से मानस थोडा भिन्न है यही भिन्नता तुलसी की प्रतिभाजन्य शक्ति है; जिसके बल पर मानस सर्वथा नूतन ग्रंथप्रतीत होता है । केवल कथा के प्रसंगो तक ही यह भिन्नता समिति न होकर पात्रो के चरित्र तक विकसित हो गई है । स्वय तुलसी ने इसी लिए कहा है—

"नाना पुराण निगमागम सम्मत यद् ।
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि ॥
स्वात. सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा ।
भाषा निबध मति मजुल मातनोति ॥"

वाल्मीकि रामायण— महर्षि वाल्मीकि की रामायण में वर्णित कथानक ही मूल रूप में मानस के कथानक का आधार है । यद्यपि यत्र-तत्र कथा और उनके वर्णन क्रम में कुछ भेद आ गया है, फिर भी उनके मूल रूप में कोई अन्तर नहीं आ पाया है । तुलसीदास ने कथा भाग का रूप तो 'वाल्मीकि रामायण' के अनुसार ही रखा है । तुलसीदास की अहिल्या वाल्मीकि रामायण की अहिल्या के अनुसार ही पाषाण रूप है । कैकयी-वरदान के प्रसंग में भी वाल्मीकि रामायण और मानस में कुछ साम्य दीख पड़ता है । मानस की कथा वाल्मीकि रामायण की सामग्री से निर्मित होकर आदर्श समाज और आदर्श धर्म की रूप रेखा का निर्माण करती है ।

रघुवंश एवं कुमार सम्भव—तुलसी पर महाकवि कालिदास के 'रघुवंश एवं कुमारसम्भव' नामक महाकाव्यों का प्रभाव भी पड़ा है । कालिदास ने माता पार्वती को 'अपर्णा' शब्द से सम्बोधित किया है, उसी प्रकार तुलसी ने भी उन्हें 'अपर्णा' कहा है । कालिदास की सर्वश्रेष्ठ उपमा 'वागर्थ' का अनुकरण करते हुए तुलसी ने सीताराम का चित्रण इन शब्दों में किया है—

> 'गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न ।
> बंदउ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥ (बा.दो १८)

इसमें भी तुलसी ने 'जल बीचि' रूप मौलिकता का समावेश कर

पश्चात् देवताओं ने सरस्वती देवी से प्रार्थना की—हे देवि। यत्न पूर्वक तुम तुम भूलोक मे अयोध्या जाओ। राम के अभिषेक मे ब्रह्मा के वचन से विघ्न डालने का यत्न करो। पहले मथरा मे प्रवेश करो, बाद मे कैकयी मे। विघ्न उत्पन्न होने पर हे शुभे, तुम पुनः स्वर्ग लौट आना। यह सुनकर सरस्वती ने कहा ऐसा ही होगा, और उसने मथरा मे प्रवेश किया। तुलसी दास ने अपने 'मानस' में यह प्रसग 'अध्यात्म रामायण' से ही लिया है। तुलसी की मथरा और कैकयी सरस्वती के प्रभाव से अपनी सात्विक बुद्धि को खो बैठती है। तुलसी ने विशेष रूप से इसी प्रसग को इस कारण ग्रहण किया है, क्योंकि इस अलौकिक प्रभाव कैकयी के दोष का परिमार्जन सुगमता से हो जाता है। 'अध्यात्म रामायण' से थोडा सा सकेत पाकर कवि ने धनुर्भङ्ग राजसभा मे करवाया है। इसमे उसे विवेचनीय स्थल पर नाटकीय प्रभाव लाने मे सहायता मिली है।

इसके अतिरिक्त मानस पर अध्यात्म रामायण का प्रभाव राम के सगुण निर्गुण रूप के विवेचन त्रिवेदो की स्थिति, भक्ति और ज्ञान, सत्सग, मोक्ष, वैराग्य आदि प्रसगो पर पड़ा है। बालकाण्ड की अनेक अवान्तर कथाएं भी तुलसी ने इसी से ली हैं।

प्रसन्न राघव नाटक— प्रसन्न राघव नाटक का प्रभाव भी मानस पर पड़ा है। इसका अनुकरण करते हुए ही कवि ने राम-सीता दर्शन विवाह के पहले ही करा दिया है, जिसमें कवि को पूर्वानुराग का चित्रण करने का सुअवसर प्राप्त हो सका है। परन्तु यह राम-सीता मिलन एकान्त मे नहीं करवाया गया है वरन् समस्त प्रसग मे राम के साथ लक्ष्मण और सीता के साथ उनकी प्रिय सखियाँ हैं। सीता और राम का पुष्पवाटिका का मिलन प्रेम के स्वाभाविक किन्तु दिव्य वर्णन के लिए आदर्श है। 'प्रसन्न राघव' के आधार पर ही कवि ने धनुर्भङ्ग के पश्चात शीघ्र ही परशुराम को राजसभा मे बुलवा कर राम-परशुराम सवाद करवाया है परशुराम को प्रसंग मे लाकर कवि ने मनोवैज्ञानिक तथा नाटकीय परिस्थिति का अच्छा चित्रण किया है। प्रसन्न राघव का अनुकरण करते हुए कवि ने छद्मवेशी हनुमान के सम्मुख एक मे [illegible] सम्वाद करवाया है। इससे हनुमान को सीता के हृदय मे [illegible] राम-प्रेम की अग्नि का प्रत्यक्ष परिचय कराने और उन्हे इसका साक्षी बनाने मे कवि को यथेष्ट सहायता मिली है। इनके अतिरिक्त रावण-सीता-वार्तालाप, कठोर

वाटिका में मुद्रिका प्रसग आदि प्रसन्न राघव के प्रभाव स्वरूप चित्रित हुए हैं ।

हनुमान नाटक—मानस में अवान्तर कथा-भेद और प्रसग विस्तार इसी का प्रभाव है । जनक का प्राण, उनका निराशा-जन्य दुःख, लक्ष्मण का कठोर प्रत्युत्तर, जटायु की करुण मृत्यु पर राम का शोक प्रदर्शन, सुमित्रा का लक्ष्मण को उपदेश, केवट-प्रसग, अंगद के व्यंग्यपूर्ण वचन आदि हनुमान नाटक की प्रेरणा से ही चित्रित हुए हैं ।

राम के रूपों मे अन्तर—वाल्मीकि का राम नर-रूप लिए हुए हैं । यद्यपि उसमे अध्यात्मिकता का पुट है। तथापि उसमे नर कृतियों का विस्तार वर्णन है । और वाल्मीकि का राम मानव मात्र के लिए आत्मत्व का उपदेश देना प्रतीत होता है। परन्तु तुलसी का राम ऐसा नहीं । वह हमे भगवान् के रूप मे दिखाई पड़ता है यद्यपि तुलसी दास ने अपने मानस मे कही भी उनको भगवान के रूप में वर्णित करने की चेष्टा नही की तब भी हमारी श्रद्धा उन के प्रति राम राजा होने के साथ साथ भगवान राम के चरणो पर अर्पित करने में नही झिझकती । हमे उनका चित्र अलौकिक प्रति भाजित होने लगता है । हम उनकी मर्यादाओं पर मुग्ध हो उठते हैं और आत्म विभोर हो कर उनके भगवद् रूप के उपासक हो उठते हैं ।

यही विशेष अन्तर दोनो कवियों के राम में है । यद्यपि वाल्मीकि का राम ही अन्य कवियो के राम को जन्म देने वाला है परन्तु तुलसी की अलौकिक प्रतिभा-गभीर विवेचन शैली- और कल्पना शक्ति तथा वर्णन शैली ने तुलसी के राम को अन्य कवियों के राम से बहुत अधिक ऊँचा उठा दिया है और तुलसी का राम विश्व का नायक हो गया है । वह जनता जनार्दन का परिपालक, रक्षक सभी कुछ बन गया है । उसमें नीच से नीचतम और महान से महानतम व्यक्तित्व के एकीकरण की शक्ति आ गयी है उसके लिएं लघु-गुरु का कोई भेद नही । तुलसी का राम समाज-जाति राष्ट्र-देश का सेवक होने हुए भी अलौकिक शक्ति सम्पन्न है । जो कि प्रतिपल में अपनी शक्ति से भी सभी ओर माधुर्य-प्रेम-उदारता की किरणें प्रसृत कर रहा है ।

तुलसी के राम में हम मर्यादाओं का बन्धन पाते हैं । परन्तु मर्यादाएँ केवल मानवधर्म वक्ता के लिये हैं । उन मर्यादाओं से लोकहित होगा इसी ।८७ से उन्हें राम अपनाए बैठे हैं । इन सभी विषद विचारों का अध्ययन

स्पष्ट करता है कि राम का लोकहित स्वरूप तुलसी अन्य कवियो से कहीं अधिक श्रेष्ठ कर पाये हैं।

वाल्मीकि रामायण मे राम महापुरुष है और अध्यात्म रामायण मे वे सम्पूर्णता ईश्वर है। तुलसी ने अधिकतर अध्यात्म का ही आदर्श अपने सामने रखा है। यद्यपि उन्होने उसमे अपनी मौलिकता को भी स्थान दिया है। जहाँ कही कवि ने कथा-प्रवाह मे परिवर्तन किया है वहाँ दुरुहता के स्थान मे कलात्मकता और कवित्व शक्ति का परिचय मिलता है। तुलसीदास ने राम के लौकिक रूप वाल्मीकि से और अलौकिक रूप अध्यात्म रामायण से लिये हैं कवि 'अध्यात्म रामायण' और वाल्मीकि रामायण की रूप रेखा का अनुसरण करते हुए अपनी मौलिकता का प्रकाश भी विकीर्ण करता जाता है। जहाँ कही और जब कभी भी वह उपर्युक्त ग्रन्थो से कुछ दूर हटता है वहा कलात्मकता प्रदर्शित करता है।

प्रश्न—'बालकाण्ड' की 'अलंकार-योजना' पर टिप्पणी लिखिये।

अथवा

'गोस्वामी जी के अलंकार प्रयत्न-प्रसूत नहीं हैं—इस कथन पर प्रकाश डालते हुए 'बाल काण्ड' के अलंकारों का विवेचन कीजिए।

उत्तर— काव्य की शोभा बढ़ाने वाले उपकरण अलकार कहलाते हैं— "काव्य शोभा करान् धर्मान् अलकारान् प्रचक्षते अथवा जो अलकृत करता है वह अलकार होता है। जिस प्रकार कोई सुन्दर रमणी अलकारो के यथास्थान धारण से अधिक सुन्दर दिखाई देती है उसी प्रकार कविता का सौन्दर्य भी अलंकारो के समुचित प्रयोग से निखरता है परन्तु जब ये अलंकार प्रयत्न प्रसूत होने लगते हैं या कवि चमत्कार या पाडित्य प्रदर्शन के फेर मे पडकर इनका अधिक प्रयोग करने लगता है अब कविता का स्वाभाविक सौन्दर्य दब जाता है और ये अलकार भाव के पोषक होने के स्थान पर उसके विरोधी तथा वाधक बन कर रस के अपकर्ष के हेतु बन जाते हैं। जब कोई कामिनी अपनी प्राकृत और स्वाभाविक शोभा के भार से दबी जा रही हो और अपने पाँवों को पृथ्वी पर सीधे डालने मे असमर्थ हो तब उसे किसी भी अलकार के भार से लाद देना उचित नही है। ऐसा करने से तो उसका सौन्दर्य दब कर निस्प्राण हो जावेगा। अत कविता मे अलकारो का समुचित व यथा स्थान प्रयोग कर[illegible] के उत्कर्ष [illegible] है।

गोस्वामी तुलसीदास के बालकाण्ड मे अलकारो का प्रयोग स्वाभाविकता और सौन्दर्य के साथ हुआ है। वे काव्य के सौन्दर्य व भाव का उत्कर्ष करते हैं और उनसे वर्ण्य विषय मे स्पष्टता तथा प्रभावशीलता आ गई है। उनके अलकार केशव की भांति प्रयत्न प्रसून न होकर सीधे हृदय से निकल कर पाठक के मर्म को छू लेते हैं। कथा के स्वच्छन्द प्रवाह मे वे कहीं बाधक नही हैं।

शब्दाकारो व अर्थालकारो का 'बालकण्ड' मे खूब प्रयोग हुआ। शब्दालकार अर्थात अनुप्रयास, नामक श्लेष आदि की छटा इसमे सर्वत्र बिखरी पड़ी है। अर्थालकारो मे भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यथाक्रम, निदर्शना आदि का यथास्थान प्रयोग दर्शनीय है।

अनुप्रास—बालकाण्ड मे अनुप्रासो की प्रचुरता है। छेकाप्रास, वृत्यानुप्रास व लाटानुप्रास का प्रयोग स्थान-स्थान पर काव्य के सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं—छेकानु प्राप्त देखिये—

"हरिहर पद रति मति न कुतरकी ।"

अन्त्यानुप्रास—

"मगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।'

वृत्यानुप्रास— 'काक कहहि कल कठ कठोरा"

× × × ×

"सुधा सुधाकर सुरसरि साधु।"

लाटानुप्रास—पूर्ण शब्द की एक ही अर्थ मे आवृत्ति और अन्वय भिन्न-भिन्न शब्दो के साथ हो, तब लाटानुप्रास अलकार होता है। बालकाण्ड मे स्थान-स्थान पर लाटानुप्रास के दर्शन होते हैं—

"साधु असाधु सुजाति कुजाति।" (चौ० ५)

× × × ×

"नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहि तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥"

(बा० दो० १४६)

यमक—यमक अलकार का भी बालकाण्ड मे कई स्थलो पर सफल प्रयोग हुआ है।

"अस मानस, मानस चख चाही।
भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही॥" (चौ० ३९)
× × ×
भजेउ राम आपु भव चापू।
भव भय भंजन नाप प्रतापू।" (चौ० २४)

श्लेष—अभंग श्लेष

"साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू॥" (चौ० २)

सभंग श्लेष— "बहुरि सक्र सम बिनवउँ ते ही।
सतत सुरानीक हित जे ही।"

इन शब्दालंकारों की भांति अर्थालंकारों का भी सफल प्रयोग बालकाण्ड में दर्शनीय है। यथाक्रम अलंकार का सौन्दर्य देखिये—

"बंदउ संत असज्जन चरना।
दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।
मिलत एक दुख दारुन देहीं।" (चौ० ५)
× × ×
"अरथ अनूप सुभाव सुभासा।
सोई पराग मकरन्द सुबासा।" (चौ० ३७)

निदर्शना—असम्भव वस्तुओं की उपमान रूप में कई स्थलों पर बालकाण्ड में हुई है।

"कहँ रघुपति के चरित अपारा।
कहँ मति मोरि निरत संसारा॥
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं।
कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥"

रूपक—बालकाण्ड रूपकों का अक्षय भंडार हैं। रूपक, सांग रूपक व परम्परित रूपक के अनेक उदाहरण इसमें उपलब्ध हैं। रामचरित मानस को मानसरोवर का रूपक तथा सन्त-समाज को तीर्थ राज प्रयाग का रूप बालकाण्ड में दिया गया है। यह सांगरूपक का श्रेष्ठ व सफल उदाहरण है। इतना लम्बा व सफल सांगरूपक अन्यत्र नहीं है। परम्परित रूपक का सुन्दर उदाहरण देखिये—

"बुध बिश्राम सकल जन रंजनि।
रामकथा कलि कलुष बिभंजनि ॥
रामकथा कलि पतंग भरनी।
पुनि विवेक पावक कहुं अरनी ॥" (चौ० ३१)

उत्प्रेक्षा— "हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए।
मानहुं अबहि भवन ते आए ॥"

उपमा—रूपक और उपमा का प्रयोग बालकाण्ड में खूब हुआ है। इन दोनों अलंकारों पर गोस्वामीजी का पूर्ण अधिकार था। पूर्णोपमा, लुप्तोपमा व मालोपमा व मालोहमा का सौन्दर्य दर्शनीय है। मालोपमा देखिये :—

"बंदउ नाम राम रघुवर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥
विधि हरि हरमय वेद प्रान सो।
अगुन अनुपम गुन निधान सो ॥ (चौ० १९)

एक अन्य सुन्दर उपमा का निम्नलिखित उदाहरण है—

"गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥"

प० अयोध्यासिंह 'हरिऔध' के अनुसार तुलसी की उपमाओं की श्रेष्ठता देखिये—

"रामचरित मानस की कोई चौपाई भले ही बिना उपमा की मिल जाय, किन्तु उसका कोई पृष्ठ कठिनता से ऐसा मिलेगा, जिसमें किसी सुन्दर उपमा का प्रयोग न हो। उपमायें भी अमूल्य रत्नराशि हैं।"

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि रससिद्ध कवीश्वर तुलसीदास ने बालकाण्ड में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का खूब प्रयोग किया है। ये अलंकार काव्य की शोभा-वर्द्धन करने वाले और कथा-वस्तु के विकास को गति प्रदान करने वाले हैं। तुलसी की अनुभूतियों को तीव्रता, स्पष्टता व प्रभावशीलता प्रदान करने वाले ये अलंकार नन्ददास के जड़ने से भी अधिक सुन्दर हैं